अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन
मध्यस्थ दर्शन
सह अस्तित्व वाद
के अभिव्यक्ति क्रम में

मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

प्रणेता
ए. नागराज
मध्यस्थ दर्शन
सह- अस्तित्ववाद
अमरकंटक

प्रकाशक:
जीवन विद्या प्रकाशन
श्री भजनाश्रम, श्री नर्मदांचल, अमरकंटक (अमरांकट)
जिला - शहडोल (म.प्र.)

लेखक :
ए. नागराज

संस्करण : प्रथम 1998
द्वितीय 2008

मुद्रण : 1998

सहयोग राशि - 120/- रुपए

मुद्रक :
जीवन विद्या संस्थान, अमरकंटक

ग्राफिक्स-डिजाइनिंग :
आकाश कम्प्यूटर, रायपुर

परिचय
''ए. नागराज - एक जीवित अस्तित्व दर्शन''

ए. नागराज एक ऐसा नाम है, जो अमरकंटक की वादियों में चुप चुप गूंजते रहता है । दुनिया में दो तरह के लोग होते हैं, एक वे जो अपना नाम लाउड स्पीकर लगाकर गली मुहल्ले में गुंजाते रहते हैं, दूसरे वे, जिनका नाम प्रकृति के हर स्पंदन के साथ झंकृत होते रहता है । प्रकृति ने जिसे अपनी धड़कनों में पिया हो ऐसा ही एक नाम है - '' ए. नागराज'' । इसका एक और भी अर्थ है - प्रकृति को भी श्री नागराज बाबा ने अपने अंतःकरण में पिया है, उन धड़कनों को जिया है, प्रकृति की अंतरात्मा का साक्षात्कार किया है - इस तरह तद्‌गत, तल्लीन हुए बिना, प्रकृति की अंतरात्मा को पहचाना नहीं जा सकता इसी तल्लीनता का असर है कि प्रकृति भी इस नाम को पीकर पुलकित होती है । एक शायर ने बहुत अच्छा लिखा है ।

'' हजारों साल नरगिस, अपनी बेनूरी पे रोती है ।
बड़ी मुश्किल से होता है, चमन में दीदावर पैदा ॥

शायद यह वही दीदावर है जो इस भारत के चमन में मुश्किल से पैदा हुआ है । इस बाबा में नरगिस का नूर (तेज) और सूरज की रौशनी, जैसे साथ साथ जीती है । सौंदर्य और सूरज जैसे, इस व्यक्ति में साथ साथ जीवित हो उठे हों ।

श्री नागराज बाबा का जन्म कर्नाटक प्रान्त के (उस समय के मैसूर राज्य) एक छोटे से गांव अग्रहार में 14 जनवरी सन् 1920 को, सूरज ढलने के बाद जब रात्रि देवी चुपचाप धरती पर उतर रही थी, तब रात्रि लगभग 6 से 8 बजे के बीच हुआ । यह स्थान वर्तमान में भी जिला - हासन है । बाबाजी के पिताश्री थे - श्री नरसिंह शर्मा माँ थी श्रीमती वेंकम्मा । गोत्र भारद्वाज । दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध वेदपाठी, शास्त्राभ्यासी, कट्टरपंथी, परिश्रमी घोर सेवाभावी, श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में आपका जन्म हुआ। हम लोग संस्कृत भाषा में एक सूक्ति पढ़ते हैं - ''ब्रह्म जानोति, ब्राह्मणः । अर्थात ईश्वर को जानने वाला ब्राह्मण होता है । आज तो यह सवाल सर्प की तरह सिर उठाने लगा है - कि क्या सचमुच ब्राह्मण लोग ब्रह्म को, ईश्वर को जानते है ? अगर ईश्वर को नहीं जानते तो किस बात के ब्राह्मण हैं ? ईश्वर के बारे में पढ़ने के लिए बहुत से ग्रंथ हैं, जिसमें वेदों का प्रचलन एवं सम्मान, सर्वाधिक है । बाबाजी का कुल वेदमय रहा - निरंतर वेद ध्वनि, वेद चर्चा होती रहती थी - जैसे घर के छप्पर से भी वेद की ऋचाएं फूट रही हों । परंपरानुसार बाबाजी ने भी अपने मामा चिन्नप्पा से जो इस देश के सुविख्यात प्रकांड पंडित थे - 11 उपनिषदों एवं वेदान्त दर्शन को पढ़ा । उन्होंने उस समय की गंभीर और प्रतिष्ठित श्री विद्या उपासना तंत्र विधि से पूर्णाभिषेक कृत्य को सम्पन्न किया ।

बाबा को 16-17 वर्ष की उम्र तक पढ़ने से विरक्ति रही, उसके बाद भी पढ़ने की बहुत प्रवृत्ति नहीं रही । परिवार सहज उपासना अभ्यास में प्रवृत्ति रही। परिवार के सम्मान को यथावत बनाए रखने का उद्देश्य बना रहा।

बाबाजी की मां को आयुर्वेद एवं ज्योतिष शास्त्र का बहुत अच्छा अभ्यास था । अतः बाबाजी ने आयुर्वेद एवं ज्योतिष का अध्ययन अपनी माताजी से ही किया । बाबाजी 3 भाई, 3 बहिनें थीं । बाबाजी अपने भाइयों में मंझले हैं ।

परिवर्तन संसार का नियम है । सोया हुआ आदमी भी करवट लेता है, तो जागने के लिए उत्सुक आदमी की जिंदगी में भी परिवर्तन स्वाभाविक था । बाबाजी ने गंभीर साधना के निमित्त पंपापति (हम्पी, आंध्र) में लगभग 1 माह एकान्तवास किया । वे श्री विद्या की उपासना में निमग्न रहे। शक्ति विद्या के मूल स्वरूप का नाम, 'श्री विद्या' है । उपासना के लिए श्री देवी को तीन अवस्थाओं में स्वीकारा गया है - बाला, त्रिपुर सुन्दरी, राज राजेश्वरी । परम्परा में यही तीन अवस्थाएं पाई जाती हैं । इन तीनों अवस्थाओं से इंगित स्वरूप, देवी का बाल्य, यौवन तथा वृद्धावस्था है। ऐसा

बताया गया है । बाबा के परिवार में श्री विद्या उपासना तंत्र की परम्परा थी ही । उपासना तंत्र अर्थात मंत्र से स्वयं अभिभूत होना, मंत्र, यंत्र, पूजा स्थली एवं पद्धति से अभिभूत होना । श्री विद्या का पंचाक्षरी, पंचदशी, राजराजेश्वरी षोडषी मंत्र से बाबा दीक्षित रहे । देवी देवताओं के रूप उन्हे ध्यान में दिखाई पड़ते थे, याने स्पष्ट होते थे । बाबा के अनुसार आदमी का मन ही ध्येय और ध्यान के दो स्वरूपों में काम कर देता है । देवी देवताओं की जीवित मुद्रा भंगिमा दिखाई पड़ती थी । यहां से बाबा कन्नड़ भाषा के लोकप्रिय कवि हो गए । अपनी कविता पाठ से हजारों हजार श्रोताओं को रात-रातभर वे मंत्र मुग्ध करते रहे । लगभक दो वर्षों तक उनका कवि जीवन प्रभावी रहा याने 22 से 24 वर्ष की उम्र तक । लेकिन जनता को रात-रातभर कविता सुनाने से क्या हुआ ? प्रयोजन कुछ दिखायी नहीं पड़ा इसलिए कविता करने से विरक्ति होती गई। उस समय के प्रचलन के अनुसार वे ज्यादातर भक्ति और विरक्तिवादी कविताएँ लिखते रहे । इस बीच वेदान्त दर्शन को समझने की इच्छा होने लगी तो विधिवत उन्होंने अपने मामा लोगों के सान्निध्य में वेदान्त का अध्ययन किया ।

बाबाजी ने अपने गुरू, श्रृंगेरी मठ के पीठाधीश्वर श्री चंद्रशेखर भारती के कहने पर सन् 1941-42 में भगवान शिव की मोक्षपुरी काशी में रहकर साधना की । वहां भी वे भिक्षा मांगकर नहीं, अपनी रोटी स्वंय कमाते, शेष धन को जरूरत मंदों में बांट देते तथा ध्यान जप करते रहे । दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध संत श्री रमण महर्षि के प्रति भी बाबाजी की बड़ी आस्था रही । बाबाजी ने रमण महर्षि के दर्शन कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया । पर समाधान नहीं मिला, तृप्ति नहीं मिली ।

काशी से लौटकर 22 वें वर्ष में सन् 1942 में बाबाजी का विवाह श्रवण बेलगुड़ा के श्री हिरगना हल्ली मंजैया की एक मात्र संतान सौ. नागरत्ना देवी के साथ सम्पन्न हुआ । श्री नागरत्ना देवी का जन्म आश्विन नवरात्रि में शुक्ल पक्ष चतुर्थी तिथि में याने 10-10-1926 को हुआ था । विवाह के पश्चात सन् 49 तक बाबाजी मैसूर, बैंगलोर, मद्रास में रहे । उन्होंने वहां पेंसिल बनाने का एक कारखाना लगाया । सन् 1939 से सन् 1949 तक इस तरह जीवकोपार्जन चलते रहा । सन् 1949 के बाद मन इस कार्य से उचटने लगा । आजादी के बाद संविधान को देखने पर उसमें राष्ट्रीय चरित्र का कोई स्वरूप नहीं मिला ।

राष्ट्रीय चरित्र अर्थात राष्ट्र के सभी मनुष्यों के आचरण की एकरूपता का कोई स्वरूप इसमें नहीं मिला । देश, समाज की दयनीय हालत और अपने भीतर उठे प्रश्नों से बेचैनी बढ़ती गई । फलस्वरूप इन सब मामलों में शोध अनुसंधान की जरूरत है ऐसा उन्हें लगते रहा । साथ ही इस धरती की मानव पंरपरा में **मैं भी एक जिम्मेदार व्यक्ति हूं** - मुझे ही यह शोध अनुसंधान में प्राण लगाना चाहिए - ऐसा गम्भीर भाव उन्हें मथता रहा ।

उस समय के सुप्रसिद्ध योगी अरविंद, महात्मा गांधी, महर्षि रमण, सभी से मिलकर बाबाजी, अपनी जिज्ञासा शान्त करने की आशा लगाए रहे, पर तृप्ति नहीं मिली । किसी को अपने प्रश्नों से निरुत्तर कर देना उनका आशय नहीं था, बल्कि वे अपने प्रश्नों का उत्तर चाहते थे अपने लिए तृप्ति । राष्ट्रीय आचार संहिता का स्वरूप क्या है, मनुष्य में बंधन और मोक्ष का स्वरूप क्या है ? यही मूलभूत प्रश्न थे उनके जीवन में । अपने प्रश्नों का उत्तर खोजना, इसके लिए अनुसंधान करना, उनकी जिम्मेंदारी थी। अतः उन्होने अपना घरबार, कारखाना, मित्र, परिजन सब छोड़ दिया । वन्दनीया माताजी (उनकी सहधर्मिणी) भी उनके साथ सर्वस्व त्यागकर, अमरकंटक की पुण्य भूमि में भगवती नर्मदा के उद्‌गम स्थल पर पहली बार आईं । उस दिन 31 दिसम्बर सन् 1949 की रात्रि थी । रात सन्नाटे में घिरी अमरकंटक की एकान्त पहाड़ियाँ । रात के सन्नाटे को चीरती मंदिर की टुनटुनाती हुई आरती की घंटियां । सब कुछ नया नया था और मन में वही दहकते सवालों की तपन थी । दूसरे दिन सन् 1950 का पहला दिन था **1 जनवरी सन् 1950** ।

ऊषा ने अंगड़ाई ली । जीवन ने भी करवट ली हो जैसे । विशाल फैले हुए वन, नर्मदा का शान्त उद्‌गम, सुबह से शाम तक सन्नाटा, थोड़े से लोग और प्रकृति, सन्नाटा, एकान्त के बीच जीता हुआ आदमी ? यह आदमी क्या है ? परमात्मा क्या है ? प्रकृति क्या है ? इनका आपस में कोई सम्बन्ध भी है ? सवाल ही सवाल फणीधर सर्प की तरह फुफकारते हुए सवाल ही सवाल - उत्तर कहीं नहीं । सर्पिल सवालों के बीच तनकर खड़ा एक अकेला आदमी, जैसे भगवान शिव के अंग अंग में नाग लिपटे होते हैं । सवाल डसते भी हैं और आदमी को अपनी फुफकार से जगाते भी हैं । यह सवालों की फुफकार से जागे हुए एक आदमी की अंतर्कथा है।

मैं महीनों इन पहाड़ियों में घूमते रहा हूँ - एक अजीब सी चुप उदासी के सिवा, इन पहाड़ों और जंगल की आत्मा का कुछ पता नहीं चलता है । इन गुमसुम पहाड़ियों में ब्रह्मगिरि पर्वत पर बाबा लगातार 19 वर्षों तक तरह-तरह की तपस्या में निमग्न रहे । तब इन पहाड़ियों ने अपना हृदय खोल दिया ? प्रकृति का अनुपम सौंदर्य उजागर हुआ । अस्तित्व सहज अंतरात्मा ने अपने बंद दरवाजे खोले - अस्तित्व का प्रयोजन स्पष्ट हुआ - मानव जीवन के साथ उसका संबंध - उजागर हुआ । प्रकृति और आदमी जिस सत्ता में संचालित उद्‌भासित हैं, वह ''व्यापक'' उद्‌भासित हुआ । साधना की सर्वोच्च अवस्था निर्विकल्प समाधि के अनुभव से वे एकाकार हुए। निर्विचार अवस्था - मनुष्य के लिए आश्चर्यजनक अनजाना। समाधि में प्रश्न खो जाते हैं, पूछने वाला गुम हो जाता हैं ।

पर वे जो चाहते थे, उसका उत्तर उन्हें समाधि में भी नहीं मिला । मौन और भक्ति-विरक्ति के बदले वे प्रयोजन को खोजते रहे । पातंजल योग सूत्र में लिखित, संयम नाम की एक स्थिति है । बाबा ने लगभग 6 माह तक आकाश में संयम किया । तब अचानक सृष्टि का संपूर्ण रहस्य, मानव जीवन का प्रयोजन, उसका स्वरूप, परमात्मा प्रकृति और परमात्मा की स्थिति - सब एकदम स्पष्ट हो गए । इससे उनको परम तृप्ति मिली, परम विश्राम को वे उपलब्ध हुए । जो उनको मिला मूल प्रश्न के उत्तर के रूप में बंधन, जीवनगत भ्रम के रूप में पीड़ित होने की घटना और जीवन ही जागृत होकर भ्रम मुक्ति का अनुभव करने की सुखद घटना स्पष्ट हुई जागृत मानव परम्परा में मानवीयतापूर्ण आचरण केन्द्रित सार्वभौम आचार संहिता रूपी संविधान मिला । उसे ही वे अपने मध्यस्थ दर्शन ''सह-अस्तित्ववाद'' में पिछले 26 वर्षों से लोगों को बताते जा रहे हैं । उसी की एक कड़ी है यह ''मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान ।''

एक आश्चर्य जनक, किन्तु अत्यंत साधारण से किसान दिखने वाले एक सद् गृहस्थ साधु के परम साक्षात्कार से निसृत परम ज्ञान, जीवन ज्ञान अस्तित्व दर्शन-मानवीयतापूर्ण आचरण की यह माला - आम आदमी को अर्पित है । उन्हें देखकर डर नहीं लगता बल्कि अपने में एक आत्म विश्वास जागता है कि बाबा जैसा एक साधारण व्यक्ति, जीवन के परम सत्य को जब पा सकता है, तो हम लोग भी क्यों नहीं पा सकते ? हम सत्य को उपलब्ध हो जाएं, इसमें क्या शंका है ।

अमरकंटक की पहाड़ियां इस व्यक्तित्व की सुगंध से भर गई हों जैसे उसी सुगंध की एक लहर है, एक फैलाव है यह प्रबंध - आपकी अपनी अस्मिता आपके अपने वैभव का संगीत, जो बाबा की चिंतन रूपी बांसुरी से - आनंद के आमंत्रण बिखेर रहा है आओ, अमृत के पुत्रों - तुम्हारा स्वागत है - इस ज्ञान के सुगंधित सागर में सराबोर होने - अपने 'स्व' को पहचान कर उसके वैभव में आल्हादित होने आमंत्रण है । आज ईसा के शब्द कितने सटीक हो गए हैं, ''मांगो, तुम्हें मिलेगा, खोजो तुम पाओगे, खटखटाओ तुम्हारे लिए खोल दिया जावेगा''

नंदिनी, **वही राजन**
जिला-दुर्ग (म.प्र.)

प्राक्कथन

मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

मैं इस मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान रूपी प्रबंध को मानव के समक्ष अर्पित करते हुए, परम प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ। कामोन्मादी मनोविज्ञान जो आज शिक्षा में प्रचलित है, (जिसमें कामुकता के आधार पर संपूर्ण वर्चस्व उभरने की बात कही गई है) इससे मैं सहमत नहीं हो पाया क्योंकि मैं सदा समाधान को चाहता हूँ सुखी होना चाहता हूँ, समृद्धि पूर्वक जीना चाहता हूँ। इसी के साथ यह भी मैंने स्वयं को मूल्यांकित किया कि प्रचलित मनोविज्ञान के स्थान पर क्या होना चाहिए। जो कुछ भी प्राप्त साहित्य आज तक है, इसके सहारे इसका उत्तर नहीं निकल पाया। फलस्वरूप गहन चिंतन किया। इसके परिणाम में यह मनोविज्ञान अपने आप स्फूर्त हुआ। कितनी भी विधाओं में मैंने अनुभव किया, जीकर देखा, उन्हीं तथ्यों को इसमें सत्यापित किया है। यद्यपि साहित्य, मनुष्य के एक छोटे से हिस्से के रूप में प्रस्तुत होता है। मेरा विश्वास इस संप्रेषणा में यही है कि कुछ भी पढ़कर प्रत्येक नर-नारी, उसके आशय को अपनी मानसिक विशालता के आधार पर स्वीकारने और परखने का कार्य किया ही करता है। इस ढंग से शब्द और वाक्य जैसे छोटे प्रकाशन भाग से, उसमें निहित विशालता को ग्रहण कर लेता है। यही मानव की सहज महिमा है।

मानव संचेतना का आशय यही है कि हर मानव कल्पनाशील, कर्म स्वतंत्र है ही। यह सबको विदित है। इसी क्रम में सकारने, नकारने की कार्य शीलता हर मनुष्य के मन में विचार और इच्छाओं में है, फलतः कार्य व्यवहार में प्रकाशित हो पाता है। इनके अतिरिक्त भी मनुष्य इंगित हुई वस्तुओं को, प्रयोजनों के अर्थ में जांचने का भी काम करता है। मैंने मानव के प्रयोजन को समाधान, समृद्धि, अभय तथा सह-अस्तित्व के रूप में पहचाना है। इसके साथ प्रयोजन को सार्थक परम्परा के रूप में प्रमाणित होने के उद्देश्य से ही, इस मनोविज्ञान शास्त्र को प्रस्तुत किया हूँ। मेरा निवेदन है कि, मानव हर निर्णय को, प्रयोजनों के अर्थ में ही, सुदृढ़ रूप में स्वीकारने, अनुप्राणित होने और चरितार्थ रूप देने की स्थिति में है, अतः उक्त मानव सहज उद्देश्य का सार्थक होना अवश्यम्भावी है। इसे हम एक ही शब्द से कहें कि सर्वमानव के सुखी होने के लिए, इस मनोविज्ञान को विचार शैली के रूप में मैंने प्रस्तुत किया है।

इस अभिव्यक्ति में यह भी आशय समाहित है कि हर मानव सच्चाई की तलाश में है। सच्चाई को प्रमाणित करना भी चाहता है। ये दो सामान्य आशय सामान्य व्यक्ति में सर्वेक्षण पूर्वक देखने को मिलता है। अतएव सच्चाई को तलाशने के क्रम में, मैं अपने को एक मानव की हैसियत से ही मूल्यांकित कर पाया। इसी आधार पर तलाश प्रारंभ हुई। मैंने अपने में यह पाया कि मुझमें समझने की अर्हता (क्षमता, योग्यता, पात्रता को प्रमाणित करने योग्य) समाई हुई है। चिंतनपूर्वक समझने के आधार पर उद्देश्य पूर्ति के लिए, अपनी इस विचार-शैली को पहचानने लगा। क्रमशः मैंने अपने जीवन में सह अस्तित्व को साक्षात्कार किया, अनुभव किया। उन्हीं क्रियाकलापों का नाम जीवन अथवा मानसिकता के रूप में - विचारशैली नाम दिया। ऐसी विचारशैली जो मानव लक्ष्य को सार्थक बनाने के लिए तत्पर है। ऐसे एक सौ बाइस (122) रूपों में आकलन किया, उसको क्रमशः संप्रेषित किया। इसमें मुख्य यही प्रणाली चरितार्थ होने के लिए मुझे मिली कि मानवीयतापूर्ण आचरण को मैं प्रमाणित कर पाया। मानवीयतापूर्ण आचरण अपने स्वरूप में - मूल्य, चरित्र, नैतिकता के संयुक्त रूप में मिला। इससे, इस मानवीयतापूर्ण आचरण सहित मेरा, बहुत से ज्ञात अज्ञात व्यक्तियों के साथ, विश्वास पूर्वक जीना संभव हो गया।

यह सर्व विदित तथ्य है कि विश्वास पूर्वक जीना बन जाता है, उसके फलन में व्यक्ति सुखी होता है, यह भी मुझे समझ में आया। विश्वास एवं सुख की अपेक्षा सभी मनुष्यों में विद्यमान है ही। अस्तु मानव कुल के लिए यह मनोविज्ञान साहित्य स्वयं विश्वास पूर्वक जीने, परिवार में जीने, समाज में जीने और व्यवस्था में जीने के लिए प्रेरक होगा। यही मेरी कामना है। मानव हैं तो मानवीयता है ही।

दिनांक - 5.9.98 **ए. नागराज**

मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान

क्र. विषय वस्तु **पृष्ठ सं.**

1. मानवीयता पूर्ण आचरण सहज व अनुसंधान क्यों ?

सम्पूर्ण मानव में किसी को पहचानने के लिए उसकी मानसिकता ही ध्रुव बिंदु है, चाहे पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था की कोई भी इकाई हो । जैसे अस्तित्व सहित गठित-संगठित आचरणों को पहचानना होता है, इसे विशेषकर परमाणु, अणु और अणु रचित पिण्डों में परीक्षण, निरीक्षण, सर्वेक्षण पूर्वक पहचानना सहज है ।

पदार्थावस्था में मृत, पाषाण, मणि, धातु के रूप में वैभव होना पाया जाता है । मिट्टी के आचरण को उर्वरक-संपन्नता और अनुर्वरकता के आधार पर पहचाना जाता है । मिट्टी विद्युतग्राही नहीं होती । पाषाणों को विभिन्न प्रजाति के रूप में उसमें संगठित सम्मिलित अणुओं के आधार पर पहचाना जाता है । ऐसे सभी पाषाण, विभिन्न अनुपातीय मिश्रण रूप में अस्तित्व में होते हैं । इसी के साथ इन में कठोरता भी है, जो भार या दबाव वहन के रूप में पाया जाता है । पाषाण विद्युत-ग्राही नहीं होते ।

पदार्थावस्था में मणि समुच्चय तात्विक गठन संगठन सहित पिण्ड के रूप में है । सभी मणियों के गठन में सर्वाधिक एक ही प्रजाति के परमाणुओं से संपन्न अणु का रहना देखा जाता है । इनमें भी कठोरता को नापना और रचना विधि को पहचानना संभव है । मणियों में कुछ मणियां विद्युत ग्राही होती हैं । सर्वाधिक मणियां विद्युत ग्राही नहीं होती । मणियों में सर्वाधिक मणियां किरण-ग्राही होती हैं, कुछ मणियां किरण स्रावी भी होती हैं।

सभी प्रजाति के धातु विद्युत ग्राही होते हैं और इनकी कठोरता के आधार पर इनके आचरणों को पहचाना जाता है । यही इनका प्रधान आचरण है । ऐसी धातुओं में से विकिरणात्मक धातुएं होना भी पहचाना जाता है जिसमें सम्पूर्ण परमाणु अपने परिवेशीय अंशों के गति सहित उष्मा (अग्नि) मध्यांशों में समाहित होता रहता है।

दूसरी भाषा से परिवेशीय अंशों की गति सहज अग्नि अंतर्नियोजित होता रहता है । यह विकिरण का स्रोत बना रहता है । ऐसे सभी परमाणु अजीर्ण परमाणु के रूप में व्याख्यायित हैं।

इस प्रकार पदार्थावस्था का स्वरूप और आचरण नित्य प्रकाशमान है । इस सबको मनुष्य ही समझने योग्य इकाई है । प्राणावस्था की सभी वनस्पतियों के अस्तित्व, पुष्टि सहित सारक-मारक आचरण को, मनुष्य किसी न किसी रूप में पहचानता है, पहचान सकता है।

मनुष्येतर जीवों को अस्तित्व, पुष्टि, आशा सहित वंशानुषंगीय आचरण के रूप में मानव ने देखा है और उक्त तीनों अवस्थाओं में पाये जाने वाले आचरण के प्रति मानव विश्वास करता है । इसी के साथ साथ यह भी निष्कर्ष मानव पाता है कि, मनुष्येतर सभी संसार अपने आचरण रूपी फलन तथा उसकी निरंतरता के प्रति आश्वस्त रहता है । **इसी क्रम में मानव, मानव सहज आचरण को पहचानने में, आदर्श को पहचानने में असमर्थ रहा ।**

सुदूर विगत से अब तक किए गए दो प्रकार के चिंतन भौतिकवादी चिंतन और आदर्शवादी चिंतन पर जितने भी प्रयत्न और प्रयोग मानव कर पाया, इसके फलन में निश्चय रूप में मानवीय आचरण, शिक्षा संस्कार और कार्य, न्याय विधान परम्परा में प्रमाणित नहीं हो पाया । **इसलिए मानवीय आचरण का अनुसंधान एक आवश्यकीय मुद्दा बना ही रहा ।** इसी क्रम में मानव सहज बहुआयामी अभिव्यक्ति सहज आचरण को मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में पहचानना, मानव कुल के लिए एक आवश्यकता रही ।

प्रत्येक मनुष्य का बहुआयामी, प्रवर्तनशील, कार्यशील, विचारशील और मूल्यांकनशील होना पाया जाता है । इतनी ही नहीं, कल्पनाशील, अध्ययनशील, विश्लेषण और तुलनशील होना पाया जाता है । इन सभी प्रवर्तन, विचार, व्यवहार, कार्यों में कोई उद्देश्य भी होता है । इस प्रकार मनुष्य की प्रवर्तनशीलता, उद्देश्यों के आधार पर सफलता-विफलताओं को आकलित करना, पुनः सफलता के लिए प्रयत्नशील होना, मानव कुल प्रतिष्ठा के रूप में वैभव देखने

को मिलता है। इस क्रम में मानव का निश्चित आचरण अथवा सार्वभौम आचरण (सभी स्वीकार सकें, ऐसा आचरण अथवा सभी में कोई आचरण समान रूप से वर्तता हो) को पहचानने का भी प्रयास रहा है । इन्हीं विधियों से, इन्हीं तमाम प्रवर्तनों को, भौतिकवादी विधि से, शरीर संवेदनाओं को आधार मानते हुए जब मानव में, मानसिकता का विश्लेषण किया गया, तब कामुकता आधार बना । कामुकता को सफल बनाने के लिए, बाकी सभी प्रवर्तनों को एक आवश्यकता माना गया, जिससे कामोन्मादिता प्रोत्साहित हुईं । इसे कुछ लोग गौरव सहित स्वीकारते भी रहे, कुछ लोग अस्वीकारते भी रहे । यह प्रतिपादन विशेषकर भौतिकवादी चिंतन के आधार पर रहा है ।

भौतिकवादी चिंतन ज्ञान ह्रास विधि का आकलन होने के कारण कामोन्मादी मनोविज्ञान भी, मानव कुल के लिए ह्रास का कारण बना जिसके परिणाम स्वरूप भोगोन्माद, लाभोन्माद-शोषण, द्रोह-विद्रोह और युद्ध मानसिकता बनते आया ।

ऐसे कामोन्मादी मनोविज्ञान को, लाभोन्माद के लिए बुद्धिजीवियों (केवल भाषा के आधार पर जीने की इच्छा रखने वालों) ने, विभिन्न प्रकार से प्रौद्योगिकीय व्यवस्था (इंडस्ट्रियल मैनेजमेंट) द्वारा अनेक प्रकार से प्रयास किया। सभी प्रयासों का अंतिम सार अभी तक यह निकला- (1) ज्यादा से ज्यादा उत्पादन, कम से कम आदमियों द्वारा (2) अधिक से अधिक लाभ, कम से कम खर्च (3) अच्छी से अच्छी गुणवत्ता, कम से कम निरर्थकता (वेस्टेज) । इन मुद्दों पर प्रौद्योगिकीय इकाईयों को प्रभावित किया। इसी के साथ-साथ लाभवादी तथ्यों को उभारने के लिए उद्योग में कार्यरत सभी व्यक्तियों की भागीदारी के मुद्दे पर भी चर्चा की गई है । इसे दो प्रकार से सोचा गया - (1) लाभ के आबंटन के आधार पर (2) उत्पादन, उसकी तादात और गुणवत्ता के आधार पर । इसमें से एक पक्ष उत्पादन पर बल देते रहा, दूसरा पक्ष लाभ के आबंटन पर बल देते आया । अंतिम बात यह है कि अभी तक भय और प्रलोभन के चक्र से प्रौद्योगिकीय व्यवस्था मुक्त नहीं हो पाई ।

प्रौद्योगिकीय कार्यक्रम के आरंभ होने के पहले से ही राज्य व्यवस्था शक्ति केन्द्रित शासन के रूप में, परिवार व्यवस्थाएं व्यक्ति केन्द्रित विधियों से भय और प्रलोभन का उपयोग करते हैं । इस प्रकार यह स्पष्ट है कि परिवार से राज्य तक और एक राज्य से सम्पूर्ण राज्यों तक प्रत्येक प्रौद्योगिकीय कार्यकलाप भय और प्रलोभन से प्रभावित रहा ।

रहस्यमय ईश्वर केन्द्रित चिंतन के आधार पर ईश्वरीय शासन को परम मानते आए हैं । इसीलिए ईश्वरीय भय, ईश्वर के प्रतिनिधि रूपी राजा का भय, शक्ति केन्द्रित शासन का भय रहा और इसके साथ साथ प्रलोभन जुड़ा ही रहता है । चूंकि कोई भी भय के साथ, सोच नहीं पाता, कर नहीं पाता, जी नहीं पाता, फिर भी मानव विचार करते आया, काम करते आया, जीते आया । भय के साथ प्रलोभन का सहारा बना रहा तथा आस्थाओं का सहारा बना रहा । आस्थाओं का ध्रुव तीन तरीके से परिलक्षित हुआ - (1) ईश्वर और ईश्वर तुल्य व्यक्तियों के प्रति (2) राजा और संविधानों के प्रति (3) गुरुजनों और विविध प्रकार के साधनाओं के प्रति आस्थाएं अर्पित होती रहीं। इन सभी के मूल में स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य की चर्चा, सभी धर्म कहलाने वाली परंपराओं में प्रतिपादित रही हैं । जिसमें से पाप और नरक के प्रति भय और पुण्य तथा स्वर्ग के प्रति प्रलोभन रहा, इन दोनों से मुक्ति ही सर्वश्रेष्ठ स्थिति बताई जाती है। प्राय: सभी प्रकार के धर्म ग्रंथों में इस प्रकार की मानसिकता को देखा जा सकता है ।

इस प्रकार **रहस्यमय ईश्वर केंद्रित चिंतन ज्ञान** लोक मानस पर, भय और प्रलोभन घृणा के रूप में अपना प्रभाव डालते आया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पहले से ही लाभ, द्वेष, संग्रह-शोषण की बात मानव मानस में बढ़ती आयी है ।

भौतिकवादी चिंतन के उपरांत जिस कामोन्मादी मनोविज्ञान का विश्लेषण अध्ययनगम्य हुआ, उससे पहले से रहा आया, भय तथा प्रलोभन और अधिक प्रभावशील हुआ - यह एक प्रक्रिया सहज परिणाम रहा। इन दोनों परिणामों में भोगोन्माद होना एक

अनिवार्य घटना रहा। यह घटना बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में अधिकांश लोगों को विदित हो चुकी है। इनके सम्मिलित प्रभावों के आधार पर अथवा अलग अलग प्रभाव पर मानव का आचरण सहज निश्चयन होना संभव नहीं हुआ । इसके विपरीत प्रकारान्तर से इसकी चाहत (मानवीयता पूर्ण आचरण की अपेक्षा) बनी ही रही । इस प्रकार मानव का पुनर्अध्ययन होना आवश्यकता बन गई । इस क्रम में रहस्यमय ईश्वरवादी चिंतन के आधार पर मनुष्य सहज जितनी भी परिकल्पनाएं हुई, वे विविध देश, विविध काल और भौगोलिक परिस्थितियों में मानव जीवन, जीवनी-क्रम और जीवन के कार्यक्रम को अध्ययन गम्य कराने में असफल रही हैं । भक्ति व विरक्ति विधि से भी सार्वभौम रूप में लोकव्यापीकरण प्रभावित नहीं हो पाया । इसी प्रकार अस्थिरता, अनिश्चयता मूलक वस्तु केन्द्रित चिंतन ज्ञान के आधार पर मानव-जीवन, जीवनी क्रम, जीवन के निश्चित कार्यक्रम का अध्ययन नहीं हुआ । **इसलिए निश्चयात्मक, मानवीयता पूर्ण आचरण की परिकल्पना, अध्ययन और प्रमाण तथा इसे व्यावहारिक प्रयोजन के साथ बोधगम्य करा देना ही ''मानव संचेतना वादी मनोविज्ञान'' का अभिप्रेत मुद्दा है।**

2. मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान का आधार

मानवीयता पूर्ण आचरण को पहचानने का आधार, अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान है । यह चिंतन अस्तित्व में, अनुभव मूलक विधि से सहज सुलभ हुआ है । **सहज का तात्पर्य,** प्रत्येक मनुष्य में, से, के लिए अध्ययन मूलक प्रणाली से बोधगम्य होने से और अनुभव मूलक प्रणाली सहित अभिव्यक्त होने से है । **सुलभ का तात्पर्य,** इसके लोक व्यापीकरण होने की संभावना, आवश्यकता और प्रयोजन से है । अस्तित्व ही नित्य वर्तमान है । इस रूप में, सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में सह-अस्तित्व होना प्रतिपादित एवं व्याख्यायित हुआ है । नित्य वर्तमान सहज सह-अस्तित्व में ही सम्पूर्ण भाव, क्रिया, स्थिति, गति और अस्तित्व सहज प्रयोजन (पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञानावस्था) निरंतर प्रमाण रूप में देखना मानव में, से, के लिए सहज है। जिसमें से मानव ज्ञानावस्था में,

मनुष्येतर सम्पूर्ण जीव जीवावस्था में; सम्पूर्ण अन्न वनस्पतियां प्राणावस्था में; और अन्य सभी वस्तुएं पदार्थावस्था में सूत्रित एवं व्याख्यायित हैं। व्याख्यायित होने का तात्पर्य प्रकाशित होने से है । अस्तित्व ही नित्य प्रकाशमान है, विद्यमान है । यह प्रधानतः चार अवस्थाओं में इस धरती पर प्रमाणित हैं । इस धरती में स्थित परम्परा सहज मानव, अध्ययन करने की इकाई है । इस विधि से मनुष्य ही अस्तित्व में अध्ययन करने वाली इकाई है, जिसके आधार पर वह कार्य व्यवहार करने वाला है । अध्ययन पूर्वक ही मानव समझदार होना होता है ।

अस्तित्व में प्रत्येक एक अपने ''त्व'' सहित व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदार है, यह समझ में आता है । समझने का तात्पर्य, जानने और मानने से है । अध्ययन में, से, के लिए मानव में से के लिए तीन मुद्दे देखने को मिलते है । देखने का तात्पर्य समझना है यह -

(1) अस्तित्व दर्शन (2) जीवन ज्ञान (3) मानवीयता पूर्ण आचरण ही है । ये तीन मुद्दे हैं । अस्तित्व सहज रूप में यह धरती अनन्त ब्रह्माण्डों अथवा अनंत सौर-व्यूहों में से एक सौर-व्यूह में स्थित है । यह धरती अपने आप समृद्ध होने के उपरान्त, मनुष्य से भी समृद्ध हुई है । इस धरती पर मनुष्य सहज अवस्थिति के अनंतर मानव, जो कुछ भी अपनी कल्पनाशीलता, कर्म-स्वतंत्रता के चलते, अभी तक भय, प्रलोभन, आस्थावादी परिकल्पना में उथल पुथल होना देखा गया, यह जागृति-क्रम घटना में गण्य है । ''जागृति सहज अभिलाषा सहित, जागृति क्रम का प्रमाण होना पाया जाता है।'' जागृत मानव के लिए ही, प्रमाणित होना वांछनीय है । प्रमाणित होने के क्रम में अभी तक सार्वभौम व्यवस्था, अखंड समाज की अपेक्षा बनी रही है, यह अभी भी अपेक्षित है।

भय, प्रलोभन, आस्था के अनंतर न्याय, समाधान और प्रामाणिकता, प्रकारान्तर से सभी मनुष्यों में अपेक्षित है । अपेक्षाएं मानव में कर्म स्वतंत्रता कल्पनाशीलता वश ही, बहती हुई देखने को मिलती हैं । यही मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान का अनुसंधान क्रम

सूत्र है ।

अस्तित्व में, से, के लिए ''स्थिति सत्य'', ''वस्तु स्थिति सत्य'' तथा ''वस्तुगत सत्य'' ही न्याय, समाधान, सत्य का अध्ययन है । ''स्थिति सत्य'' सम्पूर्ण अस्तित्व ही है । अस्तित्व स्वयं सत्ता में संपृक्त प्रकृति है । प्रकृति, अस्तित्व में, विभक्त अर्थात एक-एक रूप में दिखाई पड़ती है । और अस्तित्व में सत्तामयता कितनी लम्बाई चौड़ाई में फैली है, यह मानव में, से, के लिए, एक आवश्यकता के रूप में, प्रस्तुत नहीं हो पाता। दूसरी विधि से, यह कितना लम्बा चौड़ा है इसको मानव नाप नहीं सकता । इसके साथ यह भी देखने को मिला है कि ''मानव, आवश्यकता सहित सम्पूर्ण प्रकार के प्रर्वतन में आरुढ़ होता है।'' अतएव सत्तामयता सहज, लम्बाई चौड़ाई का नाप नहीं हो पाने के कारण ही इसे व्यापक कहा गया है । साथ में सत्तामयता सर्वत्र सर्वदा एक ही स्वरूप में विद्यमान वर्तमान होने के कारण इसे व्यापक कहना, सार्थक सिद्ध होता है । ऐसी व्यापक सत्ता में, अनंत प्रकृति सहज इकाईयां अर्थात विभक्त इकाईयां होना देखा जाता है । **विभक्त** होने का तात्पर्य, एक एक के रूप में अंगुली न्यास करने = (देखने, दिखाने) के अर्थ में सार्थक है । खूबी यही है कि सत्ता में ही सम्पूर्ण इकाइयाँ डूबी हुई, भीगी हुई, घिरी हुई होना, पाया जाता है। ऐसी सत्तामयता को शून्य, ज्ञान, परमात्मा आदि नामों से भी इंगित कराया जाता है । **सत्तामयता** का तात्पर्य है, सम्पूर्ण प्रकृति का, अपनी अपनी अवस्था में, कार्य करने के लिए उर्जा सम्पन्न रहना।

इस प्रकार सम्पूर्ण प्रकृति में, से, के लिए सत्तामयता, ऊर्जा के रूप में प्रमाणित है । सत्तामयता का, सम्पूर्ण अवस्थाओं में पाई जाने वाली प्रकृति में पारगामी होना ही, मुख्य रूप में ऊर्जा का स्वरूप है । इसका परीक्षण एवं प्रमाण हर छोटे से छोटे अंश, जैसे परमाणु, परमाणु में निहित एक एक अंश और उसको यदि विभाजित करें - ऐसे हरेक भाग का गतिशील होना पाया जाता है । इससे सहज पता चलता है कि सम्पूर्ण प्रकृति ऊर्जा में भीगी हुई है। यही

सत्तामयता के पारगामी होने का प्रमाण है । सत्तामयता में सम्पूर्ण प्रकृति और सम्पूर्ण प्रकृति में सत्तामयता ओतप्रोत रूप में है - ऐसा पाया जाता है । प्रकृति न हो, ऐसी स्थिति में सत्तामयता को पहचानने वाला अर्थात जानने, मानने, पहचानने, वाला नहीं रह पाता है । दूसरी विधि से ऐसा होना संभव नहीं है । सत्ता न हो, ऐसे स्थान पर प्रकृति को पाना संभव नहीं है । कहीं भी पाएंगे तो सत्तामयता में सम्पूर्ण प्रकृति ओत-प्रोत है - यही ''सह-अस्तित्व'' का मूल रूप है । सह-अस्तित्व, अस्तित्व सहज नित्य वर्तमान है और इसका वैभव है । अस्तित्व सहज रूप में द्रष्टा पद में स्थित मनुष्य को यह पता लगता है कि सत्तामयता **स्थितिपूर्ण** है । सत्तामयता में स्थित सम्पूर्ण प्रकृति स्थितिशील है । **''स्थितिपूर्ण'' का तात्पर्य निरंतर महिमा संपन्नता से है ।** परम महिमा यही है कि प्रकृति में दिखने वाले सम्पूर्ण बल का नियंत्रण और संरक्षण, स्वरूप में बोधगम्य (ज्ञातव्य) है । सत्तामयता का अर्थ निरपेक्ष ऊर्जा और परम बल सहज रूप में नित्य वैभवित रहने से है ।

स्थितिशीलता का तात्पर्य सत्तामयता में संपृक्तता से है । सत्ता में संपृक्त प्रकृति सहअस्तित्व रूप में नित्य प्रमाणित होने से है, सत्तामयता में सम्पूर्ण प्रकृति ओत-प्रोत रहने से है । स्थितिपूर्ण सत्तामयता में ऊर्जा संपन्न, बल संपन्न प्रकृति पूर्णता में, से, के लिए बीज संपन्न होने से है । क्योंकि स्थिति पूर्ण सत्ता में संपृक्ततावश, पूर्णता की दिशा सम्पन्नता से है। प्रत्येक वस्तु में दिशा सम्पन्नता स्पष्ट है । ऐसी स्पष्टता को इस प्रकार देखा जा सकता है कि सम्पूर्ण वस्तु परमाणु के रूप में क्रियाशील है । क्रिया अपने में श्रम, गति, परिणाम का अविरत कार्य है ऐसा दिखाई पड़ता है । श्रम, गति, परिणाम संपन्न परमाणु में ही, पूर्णता सहज दिशा स्पष्ट है । यथा प्रत्येक इकाई अपने वातावरण सहित सम्पूर्ण है । हर वस्तु अपनी संपूर्णता के साथ त्व संपन्न वर्तमान है । यह पदार्थ व प्राण अवस्था है । यह विकास क्रम सहज रूप है । यही भौतिक-रासायनिक क्रियाकलाप हैं । विकास भी परमाणु में ही सम्पन्न होता है । विकसित परमाणु जीवन पद में है । परमाणु में ही श्रम, गति,

परिणाम व्याख्यायित है । परिणाम का अमरत्व ही परमाणु में विकास की मंजिल है । रासायनिक द्रव्यों से रचित समृद्धि, पूर्ण मेंधसयुक्त शरीर व जीवन के संयुक्त रूप में मानव है । गर्भाशय में शरीर रचना का होना स्पष्ट है । जीवन विकसित परमाणु, चैतन्य इकाई के रूप में अस्तित्व में रहता ही है । मानव परम्परा में शरीर के साथ जीवन का संयोजन जागृति पूर्णता के अर्थ में है, यही श्रम का विश्राम, गति का गंतव्य के रूप में प्रमाण है । परिणाम का अमरत्व, श्रम का विश्राम, गति का गंतव्य ही दिशा है । इसे प्रत्येक मनुष्य समझने में समर्थ है । यही मुख्य तथ्य है । मानव संचेतना को, समझने समझाने का आधार एवं प्रक्रिया है । मनुष्य ही अस्तित्व में द्रष्टा है । इस साक्ष्य को आगे संदर्भानुसार स्पष्ट किया है । इसके पहले प्रत्येक मनुष्य, कल्पनाशील कर्म स्वतंत्र है - यह बात चर्चा में आ चुकी है। ऐसी कल्पनाशीलता की महिमावश ही अस्तित्व में अध्ययन का साहस जुटा पता है । इसी क्रम में प्रत्येक प्रजाति के वस्तु का अपनी परमाणुविक स्थिति में क्रियाशील होना पाया जाता है । परमाणु में ही, श्रम, गति, परिणाम व्याख्यायित होता है और परमाणु ही ''परिणाम का अमरत्ववश'' जीवन पद में संक्रमित है । परिणाम के अमरत्व के मूल में गठन पूर्णता ही प्रधान प्रक्रिया है । यह अस्तित्व सहज घटना है ।

अस्तित्व ही नित्य वर्तमान और परम सत्य है । इस प्रकार सत्य में, से, के लिए ही विकास क्रम, विकास व जागृति सहज अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन है । अस्तित्व अपने स्वरूप में सर्व-देश, सर्वकाल, सर्ववस्तु ही है । **वस्तु का तात्पर्य** वास्तविकताओं को प्रकाशित करता हुआ प्रमाण से है। **सर्वदेश** का तात्पर्य मूलतः सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति है । रचना सम्पन्न प्रकृति में ही देश चिन्हित होता है । सत्तामयता, को सर्वदेश इसीलिए कहना बनता है कि सम्पूर्ण प्रकृति का सत्तामयता में नियंत्रित, संरक्षित, ऊर्जा संपन्न और क्रियाशील होना वर्तमान में दिखाई पड़ता है । सम्पूर्ण प्रकृति की स्थिति-गति सत्ता में ही है । आवास को देश कहें तब सत्तामयता ही मूलतः देश के रूप में प्रमाणित है । रचना की अवधि रूपी विस्तार

को देखने की स्थिति में सम्पूर्ण रासायनिक, भौतिक रचनाएं, सीमित देश के रूप में हैं । इस प्रकार भी व्यापक सत्ता में परिमित (सीमित, विभक्त) वस्तुएं नित्य वर्तमान हैं, यह समझ में आता है । इस प्रकार प्रकृति परिमित (सीमित), सत्ता अपरिमित (व्यापक) 'वस्तु' देश के रूप में अस्तित्व में स्पष्ट है ।

परिमित वस्तुओं में देश विभाजन रेखा होना मान लिया जाता है, होता नहीं । जबकि व्यापक सत्ता में देश विभाजन रेखा बनती नहीं अथवा चिन्हित नहीं होती । इसे कोई भी, प्रयोग कर देख सकता है । इसका मूल तथ्य यही है - (1) सत्तामयता का सम्पूर्ण प्रकृति में पारगामी होना । (2) सत्तामयता का पारदर्शी होना । (3) व्यापक होना। परिमित वस्तुओं में विभाजन रेखाओं को मान लिया जाता है । ऐसा हुआ नहीं रहता । जैसे इस धरती पर, अनेक देशों के नाम से भूखंडों का सीमाकरण आदमी करता है। इसी के साथ यह भी देखा जाता है कि वह सीमाएं धरती से विखंडित न होकर अखंड रहती है । यह धरती अपने वातावरण सहित संपूर्णता सम्पन्न इकाई है । सम्पूर्णता अपने में अखण्ड है । यह अखंडता निरंतर बनी ही रहती है । जब तक धरती अपनी स्थिति को बनाए रख पाती है। यह भी स्पष्ट हो चुका है कि यह धरती अपने में समृद्धि और संतुलन संपन्न होने के फलस्वरूप, मानव के भी वैभव आवास योग्य हुई है । इसका साक्ष्य इस धरती पर मानव का होना ही है । इससे यह पता चलता है कि इस धरती की सहज सटीकता का अध्ययन करना भी एक अनिवार्य स्थिति है ।

यह धरती अस्तित्व में अविभाज्य है और अनेक सौर-व्यूहों में से, एक सौर-व्यूह के अंगभूत रूप में वैभवित है । इसी धरती पर मानव अपने को नैसर्गिकता सहित सुरक्षित रहना पाते ही आया । फलस्वरूप मानव अपनी कल्पनाशीलता, कर्मस्वतंत्रतावश सामुदायिक, आर्थिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी को प्रयोग करते ही आया। ऐसे सभी प्रयोगों के फलस्वरूप, संतुलित नैसर्गिकता से, असंतुलित नैसर्गिकता की ओर गति स्पष्ट हुई । इस धरती के अधिकांश मानव, ऐसे परिवर्तन से व्याकुल हुए, ऐसा सुनने को मिलता है । इसका

मूल तत्व, मानव संचेतना विरोधी मानसिकता ही प्रधान कारण और कार्य रहा है। मानव का अध्ययन जिस प्रकार से अभी तक संपन्न हुआ, उसी के आधार पर मानव संचेतना विरोधी मानसिकता (संवेदनशील मानसिकता) को प्रोत्साहन मिला, जबकि संज्ञानशीलता के नियंत्रण में, संदवेनशीलता को पहचानने की आवश्यकता रही । यह विफल रहा अतएव परिणाम नकारात्मक, मानव विरोधी रूप में प्रवर्तित हुआ ।

मानव का सम्पूर्ण अध्ययन मध्यस्थ दर्शन में सपन्न किया गया। अस्तित्व दर्शन के आधार पर यथा पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था की सहज स्थितियों का अध्ययन किया गया । इसी क्रम में अस्तित्व में, ज्ञानावस्था में मनुष्य को पहचाना गया । **ज्ञानावस्था** का तात्पर्य द्रष्टा पद प्रतिष्ठा में कर्ता, भोक्ता और पुनः द्रष्टा के रूप में जीने के कार्यक्रमों सहित अभिव्यक्त, संप्रेषणाशील और प्रकाशित होने से है ।

अस्तित्व में ''परमाणु में विकास'' पूरकता, संक्रमण, जीवन, जीवनी क्रम, सकारात्मक समझ, पद्धति, प्रणाली, दिशा की ओर जीने का कार्यक्रम रूपी परिवार मूलक स्वराज्य और स्वानुशासन रूपी स्वतंत्रता को विधिवत अध्ययन किया गया है । साथ ही साथ अस्तित्व में विकास, पूरकता, उदात्तीकरण, भौतिक रासायनिक रचनाओं और विरचनाओं का भी अध्ययन किया गया । इस प्रकार जीवन, जीवन जागृति क्रिया और भौतिक रासायनिक क्रियाओं को सांगोपांग अध्ययन करने के उपरान्त पता चला कि संक्रमण, जीवन, जीवन जागृतिक्रम, जागृतिपूर्णता तथा उसकी निरंतरता पूर्वक मानव परम्परा नित्य वैभवशील होना समझा गया अभी तक जागृति क्रम में स्थित जीवन और रासायनिक भौतिक रचना सहज शरीर के संयुक्त रूप में प्रत्येक मनुष्य है । इन तथ्यों के आधार पर मानव के ''ज्ञानावस्था की इकाई'' का पहचान सहित नाम दिया गया है ।

अस्तित्व में ''परमाणु का विकास'' देखने को मिलता है । प्रत्येक परमाणु में गठन, प्रत्येक गठन में एक से अधिक अंशों को

देखा जाता है । अथवा समझा जाता है । इस प्रकार गठन का अर्थ, परमाणु में कार्यरत अंशों को पहचान सहित इंगित करने के अर्थ में स्पष्ट है । परमाणु गठन में कम से कम दो अंशों का होना प्रमाणित है । इससे यह पता लगता है कि गठित होने का उपक्रम प्रवृत्ति अंशों में ही होना समाहित रहता है । इससे प्रत्येक अंश-गठन में, स्वभाव गति सम्पन्न होने का आशय समाहित है और एक अंश, दूसरे अंश से निश्चित दूरी को बनाए रखते हुए, कार्यरत रहना समझ में आता है । इससे यह भी अर्थ स्पष्ट होता है कि एक अंश, दूसरे अंश की निश्चित दूरी को, पहचानते हुए कार्य करते हैं । प्रत्येक गठन गतिपथ सहित, कार्यशील रहना पाया जाता है । गति पथ कम से कम एक होना, भी एक अनिवार्य स्थिति है, यह समझ में आता है । इसी गतिपथ को परिवेश भी कहा गया है । इसी क्रम में एक परिवेश से आरंभ होकर परमाणु में एक से अधिक परिवेशों को देखा गया है । इस विधि से अंशों का अधिक कम होना भी परमाणु में विकास-क्रम में देखा गया । इस प्रकार परमाणु में विकास का आधार (1) अंशों का गठन (2) गतिपथ (3) अंशों का प्रस्थापन (अंशों का गठन में समाहित होना) विस्थापन (अंशों की संख्या घटना-बढ़ना) ज्ञात हुए । ऐसे विकास क्रम में, गठन पूर्ण पद में संक्रमित होना पाया जाता है । पाये जाने का तात्पर्य, अस्तित्व में होने से मानव सहज समझ से है । ऐसे गठन पूर्ण परमाणु ही जीवन के रूप में वैभवित होते है - ऐसा पाया जाता है ।

विकास-क्रम में जितने भी परमाणु होते हैं, ये सब अपने ही स्वभाव गति में प्रकाशित होते हैं । फलस्वरूप उन उन का मौलिक आचरण स्पष्ट है। मौलिकता का तात्पर्य, उन उन के आचरण का निश्चित पहचान बनाए रखने से है - जैसे दो अंशों से गठित परमाणु, अपने अपने आचरण में मौलिक होते हैं । ऐसे परमाणुओं को, भौतिक परमाणुओं के नाम से जाना जाता है । ऐसे परमाणु भौतिक रूप में होते ही हैं । भौतिकता का प्रमाण, परमाणुओं में भारबन्धन और अणुबंधन के रूप में प्रमाणित है । ऐसे बंधन के आधार पर ही, अनेक परमाणुओं से रचित अणु और अनेक अणुओं से रचित पिण्ड

देखने को मिलते हैं। ऐसी भौतिक वस्तुएं, अपने में समृद्ध होने के उपरान्त ही रासायनिक क्रियाकलाप में, भागीदारी का निर्वाह करते हुए दिखाई पड़ती है । रासायनिक क्रिया का तात्पर्य, विभिन्न भौतिक अणु, निश्चित अनुपात से मिलकर, अपने अपने आचरणों को त्याग कर तीसरे प्रकार के आचरण के लिए तत्पर होने से है । जैसे - पानी, अम्ल और क्षार के रूप में देखने को मिलता है । ऐसे रासायनिक द्रव्यों का ऊष्मा के दबाव सहित, प्राण कोशाओं के रूप में उदात्तीकृत होना, सह-अस्तित्व सहज क्रिया है । उदात्तीकरण होने का तात्पर्य प्राण कोषा और उनसे रचित रचनाओं से है। रासायनिक, भौतिक रचनाओं में विरचित होने की संभावना बनी ही रहती है । इस प्रकार उदात्तीकरण का निश्चित स्वरूप और प्रयोजन स्पष्ट होता है ।

उदात्तीकरण पूर्वक ही मानव शरीर भी एक रासायनिक रचना है और चैतन्य पद में संक्रमित परमाणु ही जीवन है - यह अस्तित्व सहज है। इस जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव का होना और मानव परम्परा का होना पाया जाता है ।

मानव परम्परा में जागृति ही प्रमाणों का आधार है । जीवन में जागृति मानव परम्परा में ही चरितार्थ रूप मानव का होना पाया जाता है । जीवन जागृति मानव शरीर द्वारा मानव परम्परा में प्रमाणित होती है । जीवन का तात्विक स्वरूप को गठन पूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई के रूप में और रचनाओं को रासायनिक भौतिक रूप (और रचना) में समझा गया है कि -

(1) जीवन अपने स्वरूप में, गठनपूर्ण परमाणु है । गठनपूर्ण परमाणु का तात्पर्य है कि जिस गठन में, सम्पूर्ण परिवेश, मध्य में स्थित अंश अपने अपने में तृप्त हो ।

(2) जीवन परमाणु में, मध्य बिंदु में और आश्रित परिवेशों में, जितनी जितनी संख्या में अंश स्थित होना है, वह पूर्ण हुआ रहता है । इसकी कार्य-योजना ''सह-अस्तित्व सहज'' है, मानव सहज कार्य-योजना जागृति को प्रमाणित करना ही है ।

(3) गठन पूर्ण परमाणु चैतन्य पद में होता है, जिसको जीवन नाम दिया गया है । ऐसे परमाणु अर्थात जीवन परमाणु संक्रमण के साथ ही अणुबंधन मुक्ति, भारबन्धन मुक्ति और आशा बन्धन से युक्त होना पाया जाता है । यही बिंदु है - जीने की सहज आशा और आस्वादनापेक्षा उद्गमित रहती है ।

(4) जीवन परमाणु अक्षय बल, अक्षय शक्ति सम्पन्न रहता है क्योंकि मात्रात्मक परिवर्तन, जीवन परमाणु में होता नहीं । यह अणुबंधन मुक्ति के साथ ही, आशा बन्धन महिमा स्वरूप देखा जाता है ।

(5) जीवन परमाणु अपनी वर्तुलात्मक गति से अधिक कम्पनात्मक गति वैभव सम्पन्न होता है, यह भारबन्धन मुक्ति का फलन है । यही आशाबन्धन के साथ ही प्रवर्तन विधियों को, पहचानने, निर्वाह करने के कार्यक्रम को निर्धारित करता है । मनुष्येतर जीवों के कार्यकलाप (वंशानुषंगीयता के क्रम में) वंशानुषंगीयता का स्वरूप, कार्य, शरीर रचनानुषंगीय विधि से प्रमाणित रहता है। जीवन में आशा-चयन और आस्वादन में; विचार-तुलन और विश्लेषण में; इच्छाएं, चिंतन (साक्षात्कार) और चित्रण में; अवधारणा-बुद्धि बोध और संकल्प में; आत्मा-प्रमाण अनुभव और प्रामाणिकता में कार्यरत रहता है । इसका प्रमाण प्रत्येक जागृत मनुष्य ही है ।

(6) प्रत्येक जागृत मनुष्य में ऊपर कहे गए सभी लक्षणों को अध्ययन करना संभव है इसमें और खूबी यही है कि जीवन सहज महिमा को स्वयं में अनुभव कर सकता है और मानव में ही सहज रूप में प्रमाणों को पा सकता है।

(7) जागृत मानव परम्परा में प्रत्येक मनुष्य, जागृति सहज प्रमाण है एवं स्वयं प्रमाणित होना चाहता है । सभी मनुष्यों से यही अपेक्षा है, अपितु प्रत्येक मनुष्य मनाकार को साकार करने वाला, मनः स्वस्थता का आशावादी है । यह परिभाषा प्रत्येक मनुष्य में देखने को मिलती है । मनाकार को साकार करने का तात्पर्य सामान्य आकांक्षा जैसे - आहार, आवास, अलंकारों सहित समृद्धि का अनुभव

करने की आकांक्षा और महत्वाकांक्षा जैसे - दूरश्रवण, दूरगमन, दूरदर्शन साधनों से संपन्न होने की कामना स्पष्ट होती है। मनः स्वस्थता का तात्पर्य सुख, शांति, संतोष, आनंद और उसकी निरंतरता सहज स्थिति को वरण करना है ।

(8) मानवापेक्षित परिवार मूलक, स्वराज्य व्यवस्था क्रम में, सम्पूर्ण सामान्य आकांक्षाएँ प्रमाणित होना एवं सुलभ होना संभव है। इसी के साथ महात्वाकांक्षा सम्बंधी उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता भी प्रमाणित होना सहज है ।

(9) जीवन सहज रूप में बल और शक्तियां अक्षय हैं, अविभाज्य हैं और शाश्वत हैं । इनमें से बलों का नाम मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि और आत्मा और शक्तियों का नाम आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रामाणिकता दिया गया है । **जीवन सहज बलों में संगीतीकरण ही, मनः स्वस्थता का सम्पूर्ण स्वरूप है । शक्तियों में संगीतीकरण ही व्यवहार में प्रमाणित होने का सूत्र है ।** मानव परम्परा में परस्परता और व्यवहार, एक सहज कार्यकलाप है। जीवन में अनुभव, मनः स्वस्थता का परम है क्योंकि अनुभव सत्य में, से के लिए होता है, उसका प्रमाण व्यवहार परम्परा में ही सार्थक होना संभव है। ऐसे बलों में संगीतीकरण को देखा (समझा) गया है कि जागृत जीवन सहज क्रिया व आचरण के अनुसार वृत्ति के अनुरूप मन के कार्य करने की स्थिति में सुख मिलता है, जिसका प्रमाण स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन तथा व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बी होने से है । यह तभी संभव होता है जब वृत्ति, चित्त के अनुरूप; चित्त, बुद्धि के अनुरूप; बुद्धि, आत्मा के अनुरूप; आत्मा, अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व के अनुरूप कार्य करने की स्थिति में और गति में प्रमाणित होता है । इसलिए चित्त के अनुरूप वृत्तियां तुलन और विश्लेषण संगीतीकरण विधि से, शांति सहज प्रमाण को देखा गया है । बुद्धि के अनुरूप कार्य करता हुआ चिंतन और चित्रण सत्यबोध सहज कार्यप्रणाली और प्रक्रिया में संगीतीकरण स्वयं संतोष के रूप में प्रमाणित होना पाया गया है । बुद्धि, आत्मानुरुपी विधि से,

कार्यकलापों को संपन्न करती है, तब परम संगीत, आनंद के नाम से ख्यात होता है । आत्मा में, अस्तित्व के अनुरूप कार्य होना सहज है। यह सहजता, मानवीयता पूर्ण प्रामाणिकता सम्पन्न परम्परा की महिमा से सर्व सुलभ होता है । दूसरा, अनुसंधान विधि से भी संपन्न होता है । इस प्रकार बलों में संगीतीकरण प्रणाली से मनः स्वस्थता का प्रमाण और शक्तियों में संगीतीकरण प्रणाली से नैसर्गिक संतुलन, अखंड समाज में संतुलन, सार्वभौम व्यवस्था में संतुलन, मानवीय शिक्षा-संस्कार, स्वास्थ्य-संयम सहित न्याय-सुलभता, उत्पादन सुलभता, विनिमय-सुलभता सम्पन्न संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था में संतुलन संभव है । इसे प्रमाणित करने के क्रम में ही ''मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान'' की सहज प्रस्तुति है ।

3. ''मानव तथा पूरकता''

अस्तित्व में मानव एक अविभाज्य इकाई है । मानव का स्वरूप **शरीर** और **जीवन** के सह-अस्तित्व में प्रमाणित है - जिसमें से **जीवन** नित्य है क्योंकि **जीवन** ''परिणाम के अमरत्व'' सहज फलन चैतन्य पद एवं ज्ञानावस्था में वैभवित है । ऐसा **जीवन** शरीर को जीवन्त रखते हुए, जागृत जीवन सहज आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रामाणिकता के आधार पर संचालित होना पाया जाता है । शरीर संवेदना के क्रिया-कलाप, जीवंतता के आधार पर ही पांचों ज्ञानेन्द्रियों का कार्य संपादित हो पाता है। कर्मेन्द्रयों का क्रियाकलाप, जीवन्तता स्पष्ट न रहते हुए भी कुछ क्षण, कुछ दिन, कुछ मास और वर्ष तक भी पराधीनता विधि से सप्राणित रह सकता है अर्थात श्वांस और हृदय क्रिया चल सकती है । इस अवस्था में मनुष्य सहज परिभाषा का कार्यकलाप नहीं हो पाता, **इसका प्रमाण कई लोग देख चुके हैं ।** अस्तु, शरीर सप्राणित रहना भी आवश्यक है । यह तथ्य ऊपर स्पष्ट किए गए विश्लेषण से निश्चित होता है । जीवन्तता, जीवन का ऐश्वर्य है । श्वास लेने-छोड़ने की प्रक्रिया प्राण कोशाओं से रचित शरीर रचना की महिमा है।

इस प्रकार जीवन और शरीर के संयुक्त रूप मानव-परम्परा की

भी स्थापना, सह-अस्तित्व सहज, प्रसवन के रूप में दिखाई पड़ती है। सह-अस्तित्व, मूलतः अस्तित्व ही है, इस कारण नैसर्गिकता सहज प्रकृति में सह-अस्तित्व प्रमाणित होना नित्य प्रसवशीलता है । प्रसवशीलता का तात्पर्य, विविध अवस्थाओं में वैभवित, प्रकृति सहज मौलिकता और सम्बंधों से है । ऐसी मौलिकताओं के मूल में परस्पर पूरकता का होना, दिखाई पड़ता है । जैसे ऊर्जा रूपी सत्ता में संपृक्त प्रकृति का परस्पर पूरक होना स्पष्ट है क्योंकि सत्तामयता में ही सम्पूर्ण प्रकृति प्रमाणित है, वैभवित है । सम्पूर्ण प्रकृति ही, सत्तामयता सहज प्रमाणों को, क्रियाशीलता के रूप में प्रस्तुत करते आई है। इसी क्रम में सम्पूर्ण प्रकृति के विविध अवस्थाओं और पदों में वैभवित रहना हमें अध्ययन गम्य है ।

अस्तित्व सहज इस धरती पर चार अवस्थाओं में जैसे - पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था और ज्ञानावस्था में, प्रकृति का वैभव देखने को मिलता है । यही प्राणपद, भ्रांतिपद, देवपद और दिव्यपद में वैभवित रहना अध्ययन गम्य है । जैसे - पदार्थावस्था का आंशिक तत्व प्राणावस्था में, प्राणावस्था का अधिकांश तत्व पदार्थावस्था में परिवर्तित होता हुआ देखने को मिलता है । इसी को दूसरी विधि से कह सकते हैं कि, अन्न वनस्पति रूपी प्राणावस्था का वैभव, रासायनिक द्रव्यों की महिमा के रूप में वैभवित हुई है । सभी अन्न वनस्पतियां, रासायनिक भौतिक रचना के रूप में पाई जाती हैं । इसका मूल तत्व भौतिक वस्तुएं हैं । भौतिक वस्तुओं का रूप अणुएं हैं, अणुओं का स्वरूप है । अणुओं के मूल रूप में परमाणु ही है । परमाणुओं के मूल रूप में परमाणु अंश ही भौतिक वस्तुओं के रूप में दिखाई देते हैं । इस प्रकार भौतिक वस्तुएं रासायनिक द्रव्यों के रूप में, रासायनिक द्रव्य प्राण कोषा और कोशाओं से रचित, रचनाओं के रूप में होती हैं ।

प्राण कोषाओं से रचित सम्पूर्ण रचनाएं विरचना क्रम में पदार्थावस्था में परिवर्तित होते देखी जाती हैं । यही आवर्तनशीलता का प्रथम प्रमाण, पूरकता के साक्ष्य के रूप में देखने को मिलता है। मनुष्य शरीर और जीव शरीर भी प्राण कोशाओं से रचित हैं ।

इसकी विरचना भी, अन्न वनस्पतियों की विरचना की तरह, पदार्थावस्था में परिवर्तित होने के क्रियाकलाप के सदृश दिखाई पड़ता है । इसी के साथ पदार्थावस्था और प्राणावस्था की तरह स्वदेज प्रकृति का भी, इसी प्रकार परिणितियों से संपन्न रहना, देखा जाता है ।

स्वेदज संसार भौतिक वस्तु और रासायनिक द्रव्य सहज, संयोग होता है । इनका आचरण न तो भौतिक वस्तुओं जैसा होता, और न समृद्ध मेधस सम्पन्न शरीर रचना और जीवन के संयुक्त रूप में होने वाले आचरण जैसा । इसीलिए इसका नाम स्वदेज प्रकृति दिया गया है। इन्हीं रचनाओं में से मेधस प्रणाली का आरंभ होना पाया जाता है। यही क्रम से, समृद्धि की ओर गतिशील रहता है । क्योंकि समृद्ध मेधस सम्पन्न शरीर रचना, इसी धरती में साक्षित हो चुकी है । इसके सामान्य लक्षण रस, मांस, मज्जा, हड्डी, नस, रक्त, चर्म संपन्न शरीर रचना में समृद्ध मेधस का वैभव जीवावस्था में वंशानुषंगीयता के रूप में, प्रमाणित है और मानव संस्कारानुषंगीयता के रूप में प्रमाणित होता है । वंशानुषंगीयता में जीवन, शरीरों के अनुरूप कार्य-कलाप में संलग्न हो जाता है, फलतः वंशानुषंगीय अभिव्यक्ति में जीवन का वैभव सम्बद्ध हो जाता है । दूसरी विधि से शरीर की रचना में भागीदारी के रूप में सम्बद्ध प्राण कोषाएं निष्प्राण होकर पुनः ऋतु और ऋतुप्रभाव (शीत, उष्ण, वर्षामान का प्रभाव) के अनुसार पुनः सप्राणित होकर कार्य करती है । इसमें जितनी भी रचना, विरचनाएं है, इनमें मेधस का शुभारंभ होते हुए भी, समृद्ध न होने का प्रमाण, स्पष्ट हो जाता है । इस प्रकार से ऐसी क्रियाएं, प्राकृतिक रूप में असमृद्ध मेधस की व्याख्या में, स्पष्ट हो चुकी हैं ।

उल्लेखनीय तथ्य यह है कि बीसवीं सदी के दसवें दशक में वैज्ञानिक अनुसंधान, शोध, प्रयोग (ह्रास विधि सूत्र, यंत्र प्रमाण की महिमा) के साथ मनुष्य शरीर की कोशाओं से ऐसे मनुष्य शरीर के तैयार होने के कार्यक्रम की परिकल्पना दी गई । यह प्रकृति में, वह भी स्वदेज अवस्था में केंचुआ, जोंक आदि रचनाएं विरचित होकर प्रत्येक मृतक कोषा पुनः उसी प्रकार की रचना के लिए बीज रूप

है और इसके साकार होने के प्रमाणों को देखा गया है । जैसे एक जोंक को सुखाकर बुरादा बना लें, उसको किसी नमी के स्थान पर, जैसे मिट्टी के बर्तन में पानी भर दें । पानी की नमी धीरे धीरे बहिर्गत होती रहे । उसे पेंदी से लगा हुआ, जोंक का बुरादा डाल दें, कुछ ही दिनों में बहुत से जोंक देखने को मिलते हैं । इसी प्रकार चमड़े की कोषाएं निष्प्राणित होने के बाद भी, सप्राणित होना प्रमाणित हो जाता है । अभी अत्याधुनिक खर्चीली विधियों से, इसी को दोहराने का उपक्रम किया गया है । इसमें भी मनुष्य शरीर के एक कोषा को, उसमें निहित प्राण सूत्र अथवा रचना सूत्र के आधार पर बहुकोषाओं में प्रवर्तित और रचना सूत्र में स्थापित रचना के रूप में रचित होने के लिए आवश्यकीय रासायनिक द्रव्यों को सुलभ कराने और ऊष्मा व दबाव नियंत्रित कर रखने में, मनुष्य सफल हुआ है । फलस्वरूप कृत्रिम शरीर रचना, एक संभावना के रूप में आ चुकी है। मूलतः यह प्राकृतिक स्वरूप ही है क्योंकि इस कार्य-कलाप में भी किसी शरीर का मूल प्राण कोशाओं का आधार रहता है इसलिए यह भी, प्राकृतिक स्वरूप में भी गण्य हो पाता है । इसका उदाहरण पहले दे चुके हैं।

कृत्रिम शरीर रचना की अस्मिता के सम्बन्ध में मूल मानसिकता को विश्लेषित करने पर पता लगता है कि (1) किसी एक प्रजाति की शरीर रचना को बहु-संख्या में प्राप्त कर लें, इससे बेहतरीन समाज-रचना हो सकती है, इस बात की सूझ-बूझ रंग और नस्ल के आधार पर सोची जा सकती है। सभी रंग और नस्ल भी अभिव्यक्ति की विविधता में और किसी एक ही व्यक्ति में बुहमुखी प्रवृत्ति और अभिव्यक्ति देखने को मिलती है । इसके बावजूद अभिलाषाएं या परिकल्पनाएं कृत्रिम मनुष्य के सृजन के मूल में, एक प्रजाति की कामना का होना संभव है । इसी के साथ अन्य प्रजातियों के शरीर रचना की संख्या को घटाने की भी परिकल्पना हो सकती है । इससे संसार का कोई उपकार होने की संभावना नहीं है, क्योंकि मनुष्य संस्कारनुषंगीय इकाई है, सुख धर्मी है और विज्ञान तथा विवेक पूर्ण विधि से जीने की कला में जागृत होना प्रत्याशित, आशित

और संभावित तथ्य है ।

संस्कार शरीर-गत तथ्य न होकर, जीवन-गत तथ्य है । जीवन में सम्पूर्ण समझदारी का स्थान और प्रणाली है । शरीर में कोई ऐसा अंग, अवयव और इन्द्रियाँ नहीं है, जो जीवंतता के अभाव में ज्ञान इन्द्रियों की क्रियाएं सम्पन्न कर सके । ज्ञानेन्द्रियों में ऐसा कोई स्थान नहीं है जिसमें नियम, न्याय, समाधान, सत्य की प्यास हो । मेधस रचना में ऐसा कोई स्थान नहीं है जो श्रुति और स्मृति का धारक वाहक हो सके । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पांचों स्मृति के रूप में जीवन में ही प्रभावित रहते हैं । इसी क्रम में नियम, न्याय, धर्म और सत्य की प्यास है । जीवन तृप्त होने का, यही स्रोत है । नियम का प्रमाण, नियंत्रण, संतुलन सहित, पूरकता के रूप में है । नियंत्रण और संतुलन स्वभाव गति के रूप में देखा जाता है । देखने का कार्य समझना है, समझने का कार्य जीवन में है । जीवन में ही जानने, मानने, पहचानने का सम्पूर्ण वैभव समाहित रहता है । मानव परम्परा के रूप में प्रमाणित होने के क्रम में, शरीर के द्वारा निर्वाह सम्पन्न होना पाया जाता है। इससे शरीर की महत्ता एवं प्रयोजन स्पष्ट हो जाता है कि मानव परम्परा में प्रमाणित होने के क्रम में, एक आवश्यकीय अनिवार्य माध्यम है ।

प्रकारान्तर से केवल, जीवन के आधार पर अथवा केवल शरीर के आधार पर, मानव परम्परा को व्याख्यायित करने वाले सभी प्रयास पराभवित हो चुके हैं । इस तथ्य को ध्यान में लाना इसलिए आवश्यक है कि मानव परम्परा में ऐसे बहुतायत प्रयास हो चुके हैं । अभी तक किसी भी सार्थक प्रयास से अथवा मान्य सार्थक प्रयासों से, समुदाय-चेतना से मुक्त होना और समाज चेतना से संपृक्त होना संभव नहीं हो पाया । जबकि समुदायों में ''श्रेष्ठता'' सहज रूप में प्राप्त है। बेहतर (श्रेष्ठ) समाज की कल्पना अवश्य ही आती रही है । यह सब समुदाय के रूप में ही सिमटता रहा है । इसका मूल तत्व यह रहा है कि प्रकारान्तर से जीवन कल्पना को परम सत्य मानते हुए, अपने अपने तरीके से आचार संहिता को प्रस्तुत किए। कुछ समुदाय शरीर, मरणशील होने के आधार पर कोई शाश्वत वस्तु जैसे

ब्रह्म, ईश्वर नाम और मान्यता के आधार पर आत्मा, रूह आदि नाम दिये । मान्यतायें बनी रही । फलतः इस क्रम में कल्पना के आधार पर आचार संहिता को मानते हुए चलते आए हैं । इन दोनों विधियों से जितने भी प्रयास हुए, पूरक विधि निकल नहीं पाई ।

देहवाद से भोगवाद, ईश्वरवाद से एकान्तवाद, भक्ति-विरक्ति के रूप में प्रचलित हुआ । एकान्त, - जिसमें अकेले की महिमा, विशेषता, मोक्ष केवल अकेले के लिए संभव है, स्वर्गवाद - अकेले के लिए स्वर्ग। इन मान्यताओं और आश्वासन विधियों से केवल व्यक्तिवादी अहंता, उससे होने वाली लाभ-हानि मानव परम्परा में हाथ लगी । जबकि अकेले नाम की कोई स्थिति, गति नहीं है । अस्तित्व ही, सह-अस्तित्व है । हर मनुष्य का सह-अस्तित्व में वैभवित रहना स्वाभाविक है। सत्तामयता भी अकेले नहीं है, प्रकृति भी अकेली नहीं है । दूसरे के साथ ही एक, अपने वैभव को प्रमाणित करता है। सम्पूर्ण एक एक सत्ता में ही वैभवित है । सम्पूर्ण सत्ता, प्रकृति के साथ वैभवित है । इस तथ्य के साथ अकेले, कुछ भी नहीं है । सह-अस्तित्व ही सम्पूर्ण एक एक का और समग्र अस्तित्व का सूत्र और व्याख्या है ।

जो शरीर को जीवन समझे, उनकी विधि से, भोगवाद पनपा। भोगवाद के साथ संग्रह - एक कड़ी बना । संग्रह का तृप्ति बिंदु नहीं मिला, सबके लिए संग्रह, संभव नहीं हुआ क्योंकि संग्रह की मात्रा का निर्णय संभव नहीं हो पाता । फलस्वरूप सबको संग्रह सुलभ ही नहीं बन पाया । युद्ध, विद्रोह, द्रोह, शोषण की मानसिकता और भी बलवती हुई है । इसी के चलते नैसर्गिक असंतुलन, प्रदूषण के आधार पर पनपता आया । यह किसी मनुष्य के लिए स्वीकृत वस्तु, स्वीकृत घटना नहीं है । इससे, मनोविज्ञान पर भी, पुनर्विचार करने की आवश्यकता बनी ही रही ।

हम मानव प्रकान्तर से, संतुलन, समृद्धि, समाधान और समाज न्याय को स्वीकारते आए हैं । चाहे हमें देहवाद (भोगवाद) और आत्मवाद का उपदेश देते रहें । इन दोनों विधियों से चला आया

मानव सहज रूप से ही, स्वीकृति के स्वरूपों को, स्पष्ट करते आया। ऐसा, मानव सहज स्वीकृति के अनुरूप, कोई निश्चित फलन, सर्वजनोपयोगी होने की विधि से निष्पन्न नहीं हो पाया । प्रयत्न, विविध रूपों में होते आए। सभी प्रयास देहवाद और ईश्वरवाद (आत्मवाद) ही रहे हैं ।

मानव संचेतना का अध्ययन ही शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में है । यह अध्ययनगम्य है । अस्तित्व में ही, व्यापक रूप में साम्य ऊर्जा नित्य वर्तमान है । इसे ईश्वर नाम दिया है । इस बात की चर्चा पहले हो चुकी है । अस्तित्व, जीवन और जीवन जागृति समझने के उपरान्त मानव परम्परा में मानव सहज सामाजिक अखंडता, मानव सहज व्यवस्था में सार्वभौमता समीचीन है । इसलिए भी मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान पर ध्यान देना, आवश्यक रहा है ।

मानव संचेतना का तात्पर्य ही संज्ञानशीलता, संवेदनशीलता का संयुक्त रूप है जो जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करने का क्रियाकलाप है । इसी का अध्ययन है । इसमें पारंगत, निष्णात और प्रमाणित होने के अर्थ में मानव सहज संचेतना, उसका वैभव, प्रत्येक व्यक्ति में इसकी सार्थकता को स्पष्ट करना इस मनोविज्ञान का आशय है । दूसरे तरीके से मानव संचेतना का अध्ययन अर्थात मानव के सम्पूर्ण आयाम, दिशा, कोण, परिप्रेक्ष्यों में सार्थकता का निरूपण, विश्लेषण और निष्कर्ष है ।

अस्तित्व में मानव का निर्भ्रम होना ही सम्पूर्ण रहस्यों से मुक्ति है । रहस्य की बात तीन तरीकों से मानव परम्परा में उभरी हुई देखी जाती है -

(1) आत्मा (2) ईश्वर (3) देवी-देवता ।

सत्तामयता में संपृक्त प्रकृति का अध्ययन और अवधारणा के साथ साथ ईश्वर विषयक रहस्य का उन्मूलन होता है एवं यथार्थता समझ में आ जाती है । जीवन ज्ञान अच्छी तरह से सम्पन्न होने के उपरान्त मनुष्य में आत्मा सम्बंधी रहस्य दूर हो जाता है, क्योंकि जीवन में आत्मा अविभाज्य क्रियाशील, मध्यस्थ बल और शक्ति

सम्पन्न वैभव है । मनुष्य ही विकसित होकर मानवीयता पूर्ण मनुष्य, देव मानव और दिव्यमानव के रूप में वैभवित होता है । यह समझ में आने के उपरान्त ही, शरीर से जीवन अलग होने की स्थिति में, देवी-देवता सम्बंधी रहस्यों से मुक्त होता है । इस प्रकार रहस्यों से छूटने का यर्थाथ उपाय, ''अस्तित्व मूलक, मानव केन्द्रित चिंतन'' से सुलभ हो जाता है ।

अस्तित्व त्रिकालबाध वर्तमान और वैभव है । अस्तित्व नित्य वर्तमान होने के कारण अस्तित्व में रहस्य होने का कोई स्थान नहीं है। इस रहस्य में भ्रमित होने अर्थात अस्तित्व में पूर्ण जागृत न होने के फलस्वरूप रहस्य की परिकल्पनाएं हैं । यह मनुष्य में कल्पनाशीलता, कर्म स्वतंत्रता का प्रकाशन है । जबकि अस्तित्व-मूलक, मानव केन्द्रित चिंतन-ज्ञान, अपने आप कल्पनाशीलता, कर्म स्वतंत्रता को यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता सहज विधि और विज्ञान से तथा विवेक सम्मत प्रणाली और समाधान पूर्ण पद्धति से अध्ययन सहज सार्थक स्वरूप प्रदान करता है । **कल्पनाशीलता** का तात्पर्य अनुरूप, प्रतिरुप, रूप, कुरुप, स्वरूप विधियों से, चित्रित करने का कार्यक्रम है । ऐसे कार्यक्रम प्रत्येक मनुष्य में परिलक्षित है । **कर्म स्वतंत्रता** का तात्पर्य आवश्यकता कांक्षा (कल्पित आवश्यकता) के अर्थ में कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत, कारित, अनुमोदित विधि से कार्य करने की स्वतंत्रता से है । **यथार्थता** का तात्पर्य = जिसका जैसा अर्थ है । **अर्थ का तात्पर्य स्वभाव से है ।** जैसे पदार्थावस्था में संघटन-विघटन; प्राणावस्था में सारक-मारक; जीवावस्था में क्रूर-अक्रूर तथा ज्ञानावस्था में धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करूणा है । इसका अध्ययन संभव हो गया है, यद्यपि कुछ कुछ अंशों में यथा पदार्थ, प्राण, जीवों में उक्त स्वभाव को पहचानने की क्षमता मानव में प्रमाणित है । मनुष्य सहज स्वभावों को पहचानने में ही संदिग्धता बनी रही । इसके निराकरण के लिए ही मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान का प्रणयन और प्रस्ताव है ।

वास्तविकता का तात्पर्य = वस्तु जैसे है । अस्तित्व में वस्तुओं का स्वरूप विभक्त और अविभक्त रूप में देखा जाता है । अविभक्त

रूप सत्तामयता के रूप में देखा जाता है । विभक्त रूप में अनन्त इकाईयों के रूप में देखा जाता है । प्रत्येक विभक्त रूप इकाई के नाम से संबोधित है । ऐसा प्रत्येक एक (इकाई) अपने वातावरण सहित सम्पूर्ण होता है । प्रत्येक एक का वातावरण होता ही है । परमाणु अंश भी उससे अधिक क्षेत्र में अपने गति प्रभाव को बनाए रखता है । यही प्रत्येक एक में संपूर्णता का तात्पर्य है । ''वस्तु जैसा है '' - का उत्तर प्रत्येक एक अपनी संपूर्णता में वैभवित है ।

सत्यता का स्वरूप, सत्ता में संपृक्त प्रकृति है । अस्तित्व ही परम सत्य है। यही ''स्थिति-सत्य'' के नाम से भी जाना जाता है ।

''वस्तु-स्थिति सत्य'' को देश, काल, दिशा कोणों के रूप में पहचाना जाता है । प्रत्येक वस्तु में अनंत कोण होते हैं । सह-अस्तित्व में दिशा स्पष्ट हो जाती है । देश का तात्पर्य ऊर्जामयता में नित्य स्थिति है। यही परम देश है । प्रत्येक विभाजित, एक रासायनिक-भौतिक रचना होने के आधार पर, उसी में दो ध्रुवों को मनुष्य स्थापित कर लेता है, इससे उसकी सम्मुखता में, दूरी का नाम अथवा लम्बाई का नाम है । दो से अधिक ध्रुवों को स्थापित करने से क्षेत्रफल का नाम आ जाता है । विभक्त इकाईयों की परस्परता में अपनी अपनी संपूर्णता के साथ-साथ सत्तामयता में, विभिन्न दिशा में, विभिन्न इकाईयां होना पाया जाता है। इनकी परस्परता के बीच ऊर्जामयता ही दिखाई देती है । ऐसी परस्परता में जो दूरी दिखाई पड़ती है, इसकी भी मनुष्य ने गणना की है, करने के प्रयत्न में रहता है ।

''काल'' का तात्पर्य क्रिया की अवधि से है । जिस क्रिया की अवधि से सारे काल को पहचाना जाता है, ऐसी क्रियाओं को भुलावा देकर, जब हम काल और काल विखंडन को पहचानने जाते हैं, तब भ्रमित होना, अवश्यंभावी है । काल के साथ क्रिया का, क्रिया के साथ काल का संतुलन ही विभक्त काल ज्ञान की सार्थकता है ।

विज्ञान का तात्पर्य - कालवादी, क्रियावादी, निर्णयवादी ज्ञान

से है। कालवादी चर्चा ऊपर स्पष्ट की जा चुकी है । क्रियावादी ज्ञान, मूलतः इकाई में ऊर्जा संपन्नता बनाम (या) बल सम्पन्नता का साक्षात्कार करना है । प्रत्येक क्रिया के मूल में बल और शक्ति की अविभाज्यता दिखाई पड़ती है। शक्तियों का प्रकाशन, बल से संपन्न होने पर पाया जाता है । इस प्रकार बलों और शक्तियों की अविभाज्यता स्पष्ट है । **बल और शक्ति की संपूर्णता के साथ ही प्रत्येक एक, वैभवित है । इसका मूल कारण अथवा मूल तथ्य सत्तामयता में सम्पूर्ण इकाईयों का संपृक्त रहना ही है ।** इस प्रकार क्रिया के मूल में विभक्त वस्तु और अविभक्त वस्तु (सत्ता) में सह-अस्तित्व ही, ऊर्जा सम्पन्नता की सहज, स्थिति, गति स्रोत है । अविभक्त वस्तु (सत्ता) ही, मूलतः ऊर्जा है, यह स्पष्ट किया जा चुका है । ऐसी नित्य सहज, पूर्ण और व्यापक ऊर्जा में, विभक्त रूप में संपृक्त अनंत प्रकृति, परमाणु अंशों से चलकर, महत् पिण्ड धरती, अनेक धरती ऊर्जा सम्पन्न रहती है । उन उन की क्रियाशीलता निरंतर, वर्तमान में प्रमाणित है ही । इसी के साथ साथ सम्पूर्ण प्रकृति, सत्ता में संतुलित - नियंत्रित रहती है, यह भी स्पष्टतया दिखाई पड़ता है । अस्तित्व में परमाणु अंशों के नियंत्रित रहने का साक्ष्य, परमाणु के रूप में गठित रहने के रूप में है । परमाणु संतुलित रहने का साक्ष्य, उसके निश्चित आचरण और अणु रचना के रूप में द्रष्टव्य है । अणुएं संतुलित रहने का साक्ष्य, भौतिक रचनाओं के रूप में द्रष्टव्य है। भौतिक रचनाएं संतुलित रहने का साक्ष्य रासायनिक क्रियाकलापों और रचनाओं के रूप में, द्रष्टव्य हैं। रासायनिक द्रव्यों के संतुलन का साक्ष्य, जीवन जागृति तथा वंश परंपराओं में व्यक्त और साक्षित होने योग्य शरीर रचनाओं में स्पष्ट है । जीवन का संतुलन वंशानुषंगीय और जागृति विधि में प्रवर्तित और प्रमाणित होने के रूप में द्रष्टव्य है । इसी क्रम में मानव का संतुलन अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सहज समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व पूर्ण पद्धति, नीति और प्रणालियों के रूप में समीचीन है । इसे अध्ययनगम्य, व्यवहारगम्य कराने के क्रम में ही, इस मानव-संचेतनावादी मनोविज्ञान का प्रणयन और प्रकाशन है ।

क्रिया का सम्पूर्ण स्वरूप, विभक्त प्रकृति के कार्य-कलापों के रूप में देखा जाता है । निर्णयों का स्वरूप प्रत्येक एक में प्रमाणित होने वाले नियंत्रण, संतुलन, पूरकता, विकास, परमाणु में, रचनाओं में उदात्तीकरण और रचना अर्थात रासायनिक रचना; विकास और संक्रमण; संक्रमण और जीवनी-क्रम; जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम, जागृति और जीने का कार्यक्रम; जीने का कार्यक्रम और व्यवस्था; व्यवस्था और समाज; व्यवस्था और जागृति; जागृति और संचेतना (जानना, मानना, पहचानना और निर्वाह करने का क्रिया कलाप) सहित; समाधान, समृद्धि, अभय एवं सह-अस्तित्व को प्रमाणित करने की शिक्षा परम्परा हो । इसके लिए आवश्यकीय सभी यंत्रों सहित प्रयोग परम्परा को पहचानने, निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित करना है। इस प्रकार विज्ञान पद्धति, प्रयोजनों की पुष्टि है ।

विवेक का तात्पर्य जीवन का अमरत्व, शरीर का नश्वरत्व, व्यवहार सहज (के) नियमों का अध्ययन और व्यवहार में प्रमाणित करने का, सहज क्रिया कलाप है । **''जीवन का अमरत्व''** - तात्पर्य परमाणु की गठनपूर्णता से है । गठनपूर्णता के अनंतर संक्रमण सहज, चैतन्य पद प्राप्त परमाणु, जीवन के नाम से ख्यात (प्रसिद्ध) हैं । ऐसे जीवन के अमरत्व ज्ञान (नित्य साक्षात्कार) जीवन-विद्या से मानव में स्थित जीवन की पुष्टि होती है । फलतः जीवन के प्रति जीवन का विश्वास, जीवन कार्यों के प्रति जीवन का ही विश्वास, जीवन प्रयोजन के प्रति जीवन का विश्वास पाया जाता है । जीवन सहज रूप में, पांच अक्षय बलों, पांच अक्षय शक्तियों का अंतर्सम्बन्ध और जीवन कार्य प्रयोजन के सम्बंध में पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है ।

जीवन में परावर्तन, प्रत्यावर्तन क्रिया संपादित होती है । इसे प्रकारान्तर से प्रत्येक व्यक्ति में, निरीक्षण, परीक्षण पूर्वक, अध्ययन किया जा सकता है । यही क्रिया अर्थात निरीक्षण-परीक्षण क्रिया सार्थक हो पाती है। स्व-निरीक्षण विधि, प्रत्यावर्तन को, और पर-निरीक्षण विधि परावर्तन को प्रमाणित करती है ।

चयन-क्रिया अर्थात ग्रहण करने का क्रियाकलाप परावर्तन विधि से और आस्वादन क्रिया प्रत्यावर्तन विधि से, स्वयं में संपन्न होती है। **विश्लेषण क्रिया** परावर्तन विधि से और तुलन क्रिया (प्रिय, हित, लाभ, न्याय, धर्म, सत्य दृष्टि) प्रत्यावर्तन विधि से संपन्न होती है । **चित्रण क्रिया** परावर्तन विधि से इच्छा पटल में चित्रित हो पाती है । परावर्तन में रचनाओं, क्रियाओं के रूप में प्रमाणित हो पाता है और चिन्तन-क्रिया साक्षात्कार विधि से सार्थक होती है । साक्षात्कार की सम्पूर्ण वस्तु जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य और वस्तु-मूल्यों के रूप में द्रष्टव्य है । मूल्यों का संतुलन तुलन होकर, तृप्ति विधि में संलग्न रहता है । इस प्रकार साक्षात्कार की तृप्ति का स्रोत मूल्य हैं और उसकी (मूल्यों की) निरंतरता का भावी होना, पाया जाता है ।

जीवन में संपन्न होने वाली अवधारणा बोध-बुद्धि सहज प्रत्यावर्तन क्रिया है । सभी अवधारणाएं, अध्ययन और अनुसंधान विधि से स्थापित हो पाती हैं । अनुभव मूलक विधि अनुभवगामी पद्धत्ति से, बोध होना पाया जाता है । अनुभव सत्य बोध कराने में प्रमाणित होता है और संकल्प, पूर्णता के अर्थ में, कल्पनाओं को गति देने से है । कल्पनाएं - आशा, विचार, इच्छा के संयुक्त रूप में प्रवाहित रहती हैं । जीवन शक्ति अक्षय होने के कारण, प्रत्येक व्यक्ति में कल्पनाशीलता का अक्षय होना पाया जाता है क्योंकि यह कल्पना, जीवन शक्तियों का ही प्रवाह है । कल्पनाएं, सत्य संकल्प के अनुरूप परावर्तित होकर मानव परम्परा के, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में सार्थकता को प्रमाणित करती है ।

प्रमाणिकता, परावर्तन के रूप में, स्वतंत्रता को व्यवहार में, प्रमाणित करती है । इसी क्रम में स्वयं व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी, स्वयं स्फूर्त विधि से सम्पन्न होती है । अस्तित्व दर्शन, जीवन-ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण सहज प्रमाणों को सम्पूर्ण आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्यों में प्रमाणित करना सहज होता है । यही जागृति पूर्णता का परावर्तन है । इसके प्रत्यावर्तन में जागृति

सहज आनंद, अस्तित्व में नित्य अनुभूति, आनंद की निरंतरता के रूप में अथवा स्रोत के रूप में पाया जाता है । इस प्रकार जीवन-ज्ञान, अस्तित्व दर्शन की सार्थकता स्पष्ट है ।

मानवीयता पूर्ण आचरण परम आचरण है अथवा सम्यक आचरण है। यह आचरण मानवत्व का सूत्र और व्याख्या है क्योंकि अस्तित्व में प्रत्येक एक, अपने ''त्व'' सहित व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदार है । इस क्रमानुगत विधि से मानव, ''मानवत्व'' सहित व्यवस्था है, यह प्रमाणित होता है।

मानवीयता का स्वरूप - मानवीय आचरण है जो मूल्य, चरित्र, नैतिकता के रूप में प्रमाणित होता है । कार्य रूप में स्वधन, स्वनारी । स्वपुरूष, दया पूर्ण कार्य व्यवहार के रूप में देखा जाता है। यह मानवीयता पूर्ण चरित्र के रूप में प्रमाणित होता है ।

मानवीयता पूर्ण आचरण में **नीति का स्वरूप** तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा के रूप में नैतिकता प्रमाणित होता है । प्रत्येक मनुष्य में, तन, मन, धन रूपी अर्थ, एक दूसरे के पूरक रूप में दिखाई पड़ते हैं ।

मूलतः मन से ही शरीर का संचालन होना देखा जाता है । तन और मन के वियोग की स्थिति में कोई, कार्य शरीर से सम्पन्न नहीं हो पाता है और मानव की संज्ञा, सार्थक नहीं हो पाती है । जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में वर्तमान रहना, मानव व्यवहार का आधार है । ऐसे व्यवहार कार्य के क्रम में, उत्पादन कार्य भी एक आवश्यकीय कृत्य है । **उत्पादन का तात्पर्य,** तन-मन सहित प्राकृतिक ऐश्वर्य अर्थात पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था पर श्रम नियोजन पूर्वक उपयोगिता मूल्य, कला मूल्य स्थापित करना है । इसी क्रम में सम्पूर्ण महत्वाकांक्षा और सामान्य आकांक्षा सम्बन्धी वस्तुओं का उत्पादन हुआ है । इसमें निपुणता, कुशलता प्राप्त करने के क्रियाकलापों को प्रशिक्षण नाम दिया जाता है । यह पूर्णतया चित्रण सहज, तकनीकी सम्पन्न मानसिकता है । इसमें शरीर के अंग अवयव के संयोजन पूर्वक, हस्त लाघव सहित, श्रम नियोजन संपन्न होता है।

इस विधि से मनुष्य को हमने उत्पादन कार्य में सफल होते हुए देखा है । अभी तक के उत्पादन, क्रिया कलापों में विकृति का स्वरूप, लाभोन्मादिता ही है । यह भय और प्रलोभन पर आधारित है । **इसके विकल्प के रूप में ''मूल्य और मूल्यांकन'' रूपी प्रौद्योगिकी एवं ''समाज व्यवस्था सूत्र'' को व्याख्यायित और स्थापित करना इस मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान की अभीप्सा है ।** उक्त प्रकार से उत्पादन कार्य और उसकी मानसिकता स्पष्ट हो चुकी है ।

उत्पादन ही धन है - इस प्रकार, तन, मन, धन का स्वरूप स्पष्ट हुआ है । इनकी उपयोगिता, सदुपयोगिता और प्रयोजनशीलता विधि से मूल्यांकन संभव हो जाता है । **वस्तु** का मूल्यांकन उपयोगिता और सुन्दरता के आधार पर **मन** का मूल्यांकन अनुभव मूलक विधि से कार्य-व्यवहार के रूप में मूल्यांकित हो जाता है । यह प्रत्येक व्यक्ति के साथ मूल्यांकित हो जाता है । मूल्यांकन का आधार, मानव सम्बन्ध और नैसर्गिक सम्बन्ध है । मानव परम्परा में दोनों प्रकार के सम्बन्ध वर्तमान है और इनका निरंतर होना पाया जाता है। मानव परम्परा मानसिकता विवेक विज्ञान विचार सम्मत होने के कारण, मनोविज्ञान की समझ जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के रूप में (अथवा मनोविज्ञान सहज सम्बन्ध) एक आवश्यकता है ।

मानव सम्बन्ध प्रधानतः सात रूपों में देखा जा सकता है ।

पिता पुत्र सम्बन्ध - सम्बंध का तात्पर्य पूर्णता के अर्थ में अनुबन्ध से है। **अनुबंध** का तात्पर्य अनुक्रमात्मक विधियों की स्वीकृति क्रिया है अथवा स्वीकृतिपूर्ण और उसकी निरंतरता रूपी क्रिया है । **अनुक्रम** का तात्पर्य अनुस्यूत (निरंतर) क्रिया है । **निरंतर** का तात्पर्य वर्तमान क्रिया से है । **वर्तमान** का तात्पर्य अस्तित्व सहज, सह-अस्तित्व से है । अनुस्यूत (निरंतर) क्रिया, स्थिति और गति के रूप में, दृष्टव्य है । सह-अस्तित्व विधि में पूरकता क्रम, जागृति क्रम, जागृति पूर्णता और उसकी निरंतरता ही, अनुस्यूतता है । इस प्रकार पूर्णता का अर्थ, जागृति और उसकी निरंतरता से है । अनुक्रमात्मक

विधि की सार्थकता, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में प्रमाणित होना, समीचीन है । इस प्रकार सम्पूर्ण सम्बन्ध व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में सार्थक होना पाए जाते हैं ।

सम्बंधों की पहचान, निर्वाह की आवश्यकता को सहज रूप में ही पहचाना जाता है । पिता-पुत्र सम्बन्ध में मूल्यों को प्रमाणित करना, परम्परा में इसकी शिक्षा, संस्कार और व्यवहार प्रमाणपूर्वक ही, सफल होना पाया जाता है। इस बीसवीं शताब्दी की दसवीं दशक तक व्यक्तिवादी समुदाय परम्परा में अभी तक की शिक्षा, संस्कार विधियों से, समुदायवादी अथवा व्यक्तिवादी प्रयासों की अपेक्षा में होते हुए भी, स्वतंत्रता और स्वराज्य रूपी ध्रुवों के आधार पर सफल होने का आधार, किसी परम्परा में करतलगत नहीं हुआ अर्थात व्यवहार में प्रमाणित, शिक्षा में प्रबोधित नहीं हुआ । जिसके फलस्वरूप पुनः व्यक्तिवादी मानसिकता और समुदायवादी मानसिकता के लिए मानव विवश होते आया । इस प्रकार व्यक्तिवादी समुदाय परम्परा का स्वरूप स्पष्ट हो गया । सर्वमानव जागृति सहज विधि से इसे स्वतंत्रता और स्वराज्य पूर्वक, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था, स्वानुशासन रूप चरित्र मूल्य, नैतिकता की मानसिकता का लोकव्यापीकरण सहित, प्रमाणित करने की आवश्यकता निर्मित हुई है । इसी क्रम में, अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान के आधार पर, यह ''मानव-संचेतनावादी मनोविज्ञान'' प्रणयित हुआ है । इसमें सम्बंधों को जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना प्रधान तत्व है । यही मानव संचेतना का निश्चित स्वरूप है । जागृत मानव का सम्पूर्ण क्रम उक्त चार स्वरूप में व्याख्यायित है । ऐसी चार क्रियाएं प्रत्येक मनुष्य में, से, के लिए प्रमाणित होने का अध्ययन है । जैसे - माता की कोख में आई संतान, सर्वप्रथम मां को ही पहचानती है क्योंकि उनसे पोषण कार्य सम्पन्न होता हुआ, शैशव काल में ही, जीवन पहचान लेता है। फलस्वरूप मां को पहचानना संभव हो जाता है । उसी के साथ साथ संरक्षण कार्य, सूत्रित होना आरंभ होता है । शिशु के प्रति अपेक्षा माता पिता में यही बनी रहती है कि शिशु स्वस्थ रहे, खुश रहे, उत्सवित रहे । इसी प्रत्याशा को सफल बनाने के लिए, विविध

प्रकार के उपायों को अनुसंधान करते और प्रयोग करते माता पिता को देखा गया है । जैसे ही शिशु काल से कौमार्य अवस्था समीचीन होती है वैसे ही जागृत मानव, जागृति व सम्बंधों को पहचानने, मूल्यों को निर्वाह करने के अर्थ में अभिभावक प्रेरक होना पाया जाता है । साथ ही आहार प्रणालियाँ ऐसी शिशु और कौमार्य अवस्था से ही स्वीकार होने लगती है ।

भ्रमित परम्परा में रूढ़ियाँ व्यक्तिवादी, परिवार समुदाय क्रम में रूढ़ियाँ (सामुदायिक, पारिवारिक, व्यक्तिगत रूढ़ियाँ) क्रम से, कौमार्य अवस्था की मानव संतान को प्रभावित कर लेती हैं । इस कौमार्य अवस्था के पहले से ही, भ्रमित समुदायों, परिवारों में अभ्यस्त विधि से आहार प्रणाली (चाहे वह शाकाहार, दुग्धपान हो, चाहे मांसाहार, मद्यपान हो) के अभ्यस्त हो जाते हैं।

कौमार्य अवस्था में जैसे ही, ''करो, न करो'' - का चक्र चलना आरंभ होता है (जो माता, पिता करते रहते हैं, उसे 'नकारने' की स्थिति में और जो माता, पिता नकारते रहे, उसे स्वीकार करने से या शंका उत्पन्न करने से) माता, पिता का ममता सूत्र डगमगाना आरंभ होता है । माता, पिता की ममता का सूत्र, उदारतापूर्वक सूत्रित रहता है। ममता डगमगाने का तात्पर्य, उदारता का भी, डगमगाना होता है ।

इसी क्रम में, शिक्षा की भी बात आती है, क्योंकि सम्पूर्ण संस्कार ''करो, न करो'' में सिमट ही जाता है । जैसे ही यांत्रिक, तकनीकी विज्ञान, आकलनात्मक शिक्षा आरंभ होती है, वैसे ही मानव संतान में प्रचलित शिक्षा को प्रबोधन पूर्वक स्मृति के आधार पर परीक्षण विधि को अपनाते हुए विद्यार्थियों को विद्वान घोषित किया जाता है । आदि काल से पुस्तक और स्मृति को दुहराना विद्वता मानी जाती रही है । अभी इस दशक में, बहुतायत लोगों में यह स्मृति विकसित हो चुकी है, नकारने के रूप में - (1) स्मृति विद्वता नहीं है । (2) पुस्तकें विद्वता नहीं है (3) विज्ञान विद्वता नहीं है । कुछ विज्ञानी इस पक्ष में है कि सम्पूर्ण विज्ञान और

तकनीकी में, पारंगत होने के बाद भी, बेहतरीन समाज का प्रणेता न हो पाने, परिवार सहज संगीत और समाधान रूपी लय से वंचित रहने के आधार पर, विज्ञान को मानव संतुष्टि का सम्पूर्ण ज्ञान नहीं है - ऐसा मूल्यांकन हैं । इसके मूल में यह भी विश्लेषण आता है कि भौतिकी विधि से किए गए सूक्ष्म अनुसंधान के उपरान्त भी, मानव और जीवन, व्याख्या और सूत्र से रिक्त है। इसका खेद भी वैज्ञानिक, व्यक्त करते हैं और कुछ विज्ञानी यह भी कहते हैं कि जो कुछ भी विकास होना है, वह इसी विधि से होना है और सूक्ष्मतम अनुसंधानों से, जितनी भी काली दीवालें सम्मुख हैं वे दूर हो जावेंगी। सर्वेक्षण से यह पता लगता है कि विज्ञान परस्त सभी आदमी, विज्ञान से ही ''प्रकृति रूपी सत्य समझ में आता है'' - ऐसा दावा करते हैं । 200 वर्ष की अवधि में ही 50% से अधिक विज्ञानी (इतना ही नहीं) श्रेष्ठ प्रतिभा सम्पन्न विद्यार्थियों में से 50% अधिक लोग, आज की स्थिति में, काली दीवालों को भांप लिए हैं । क्योंकि वैज्ञानिक प्रयोग किये जाते हैं । उससे प्राप्त फल, परिणाम को अंतिम नहीं माना जाता है । अंतिम सत्य को समझा हुआ विज्ञानी मानव के सम्मुख प्रस्तुत नहीं हुआ है । विज्ञान विधि से हटकर, अनुसंधान करने का आधार ही, न रहने की स्थिति में परम्परा सहज (की) गति में घुल जाते हैं अथवा मिल जाते हैं अथवा दब जाते हैं । इन तीनों स्थितियों में अतृप्ति की पीड़ा बनी ही रहती है । इस कुण्ठाग्रस्त बिन्दु के उत्तर में, अस्तित्व मूलक मानव-केन्द्रित चिंतन, पूरकता उदात्तीकरण, रचना, विरचना और विकास, संक्रमण, जागृति, प्रामाणिकता सहज सूत्रों से, पारंपरिक धाराओं से हटकर शोध करने का एक अवसर प्रदान करता है ।

कोई समुदाय परम्परा सार्वभौम न हो पाने की स्थिति में ही जातिवाद, नस्लवादी, रंगवादी, भाषावादी, पूजापाठ, अभ्यासवादी, सम्प्रदायवादी मानसिकता के अतिरिक्त, वर्गवादी मानसिकता के आधार पर भी ''करो, न करो'' वाला कार्यक्रम प्रकारान्तर से सभी संप्रदायों में बना रहता है । जीवन सहज रूप में, प्रत्येक मनुष्य में सार्वभौमता ही अपेक्षित है। इसी के आधार पर समुदाय परंपराओं में, मानव

जिसे स्वीकारता है, उन्हीं की संतानें उसे नकार देती हैं । कहीं कहीं परंपराएं जिसे नकार देती हैं, उसे स्वीकार कर भी लेता है । इस प्रकार पीढ़ी से पीढ़ी में, शोधात्मक और विद्रोहात्मक विधियों से प्रकाशन होते आया है । इस प्रकार प्रत्येक सम्बंध कुछ काल के बाद, परस्परता में कुछ सार्वभौमता और उसका भरोसा बनते तक ऐसे शोध और विद्रोह, भावी हो गए हैं । इसीलिए मानव केन्द्रित चिंतन समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेंदारी को हर मानव द्वारा निर्वाह करने की आवश्यकता को उजागर किया है । जिसकी आवश्यकता सह-अस्तित्व सहज विधि से भावी मानव ही सार्वभौम आचरण, सार्वभौम ज्ञान और सार्वभौम दर्शन का, धारक, वाहक है । प्रत्येक मनुष्य सार्वभौमता की अपेक्षा में ही है। यह प्रमाणित हो जाता है । इसी के पक्ष में, मानवीयतापूर्ण आचरण, अस्तित्व दर्शन और जीवन-ज्ञान प्रस्तावित है । इस क्रम में मानव का अपने अभीष्ट अर्थात अभ्युदय को सम्पूर्ण विधि से प्रमाणित करने की आशा, विचार, इच्छा और संकल्प है । ऐसी स्थिति के लिए ही, मानव का अध्ययन जीवन ज्ञान के आधार पर सुलभ हो गया है । **इस ''मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान'' में जागृत जीवन क्रिया-कलाप का सत्यापन है ।**

पुत्री-पुत्र का सम्बंध भी माता-पिता (पुत्र-पिता के सम्बंध भी, पिता-पुत्र) सम्बंध के समान आशय को रखता है । ऊपर किए गए विश्लेषण से परस्पर मतान्तर होने का सम्पूर्ण कारण, विश्लेषित हो गए हैं । सभी सम्बंधों के मूल आशय में समानता है, यथा समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व मानव सहज अपेक्षा है सर्वतोमुखी समाधान पूर्वक ही सदा-सदा सुखी होना पाया जाता है तथा कार्य कलापों में (अर्थात निर्वाह कार्यकलापों में), विविधता का होना स्वाभाविक है । यही विविधताएं, जीने की कला के रूप में ख्यात होती है ।

मूल आशय सहज सार्थकता के आधार पर की गई सभी प्रकार की निर्वाह व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी, सम्बंधों और मूल्यों के निर्वाह रूप में ही प्रमाणित हो जाती है । मूल्यों का

निर्वाह ही, सम्बंधों को पहचानने का प्रमाण है। मूल्य, मूलतः जीवन सहज बल की ही अभिव्यक्ति, संप्रेषणा है। इसमें अनुभव बल ही प्रधान कार्य, क्रिया वस्तु है । जागृति पूर्णता के रूप में अनुभव, व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है । यही नित्य विश्वास के रूप में ही व्यक्त होता है । इसका प्रयोजन और कार्य रूप वर्तमान में व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी ही है। व्यवस्था यह है यथा समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व मानव सहज अपेक्षा है ।

सर्वतोमुखी समाधान पूर्वक ही सदा-सदा सुखी होना पाया जाता है, विश्वास सहज कार्य व्यवहार रूप में सम्बंधों का पहचान, मूल्यों का निर्वाह मूल्यांकन उभयतृप्ति व संतुलन ही है । विश्वास केवल सत्य में, से, के लिए होता है । अस्तित्व ही परम सत्य है । जीवन ज्ञान, परम सत्य है । मानवीयता पूर्ण आचरण का, परम सत्य होना, पाया जाता है। इसे चरितार्थ रूप देने की अभिलाषा से ही, मानव-संचेतना को पहचाना गया है । अस्तित्व में मानव का वैभव अथवा स्वराज्य को, स्वयं के वैभव को प्रमाणित करने के लिए एक अध्ययन की आवश्यकता को अनुभव किया गया है ।

मूल्यों का प्रयोजन, सम्बंधों के अनुरूप, नाम दिया गया है । इसे स्थापित मूल्यों के रूप में नौ नामों से, संबोधित किया गया है । सभी मूल्य, व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी तथा प्रमाणिकता सहज (के) रूप में ही, प्रमाणित है - जैसे कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य, ममता, सम्मान, स्नेह है। सम्बन्ध सहजता, व्यवस्था सूत्र में और व्यवस्था सूत्र सह-अस्तित्व में, सह-अस्तित्व, अस्तित्व में वैभवित रहना पाया जाता है । ''सम्बन्धों के अनुरुप'' - का तात्पर्य पूर्णता के अर्थ में अनुबंध से है और पूर्णता का अर्थ जागृति पूर्णता से है ।

4. अनुसंधान और लोकव्यापीकरण

मानव सहज रूप में, निरंतर अनुसंधान शोध और प्रयास करते आया। मानव परम्परा में सुदूर विगत से दो अनुसंधान प्रधान है ।

एक अनुसंधान है, रहस्यमयी ईश्वर केन्द्रित चिंतन प्रणाली, जिसका मूल आशय यह है कि **''ईश्वर से सब कुछ होता है ।''** इसका लोकव्यापीकरण शिक्षा के माध्यम से सम्पन्न किया गया । दूसरा अनुसंधान, अस्थिरता मूलक, वस्तु केन्द्रित चिंतन । इसका आशय है, **''वस्तु से सब कुछ होना''।** वस्तु केन्द्रित चिंतन का भी लोकव्यापीकरण शिक्षा के माध्यम से संपन्न हुआ है । तीसरी विधि से किसी देवी, देवता, दिव्य पुरुष से अथवा मूर्ति से सब कुछ होता है । इसका भी यथाविधि अनुसंधान हुआ । वांग्मय बना । प्रकारान्तर से इसका भी लोकव्यापीकरण हुआ । इनको क्रम से (1) ईश्वरवाद बनाम अध्यात्मवाद । (2) भौतिकवाद बनाम द्वंद्ववाद । और (3) देववाद बनाम अधिदैवीवाद नाम दिया गया है । इनमें प्रमाण विधियों के लिए आदमी तरसा एवं तरने, तारने का प्रयास किया । इन तीनों प्रकार के अनुसंधानों में शब्द को प्रमाण माना गया । मानव, ईश्वरीय व अध्यात्म और देवी व आदर्शों को मानते हैं ।

पहली विधि से अध्यात्म, अतिगहन आदर्श है, मौन है, निर्विशेष है और आचरण के रूप में विरक्तिवादी (साधन चतुष्टय सम्पन्नता) है । तृतीय प्रकार के चिंतन का आदर्श, उन उन देवी देवताओं के नाम से प्राप्त वांग्मय का उच्चारण सहित, ऐतिहासिक स्मृतियों अथवा कल्पित स्मृतियों से, चित्रित रूप में जो व्यक्त रहते हैं, उनको आदर्श पुरुष, आदर्श चरित्र, आदर्श ज्ञान और दर्शन मानते हैं । यह परम्परागत के रूप में, भक्ति के रूप में आया रहता है । ऐसे आकार प्रकार के स्मारक और स्मारक स्थलियों को आदर्श स्थान मानना कार्यक्रम है । इन दोनों, प्रथम और तृतीय चिंतन के अनुसार, और एक साम्यता है कि सामान्य व्यक्तियों को स्वार्थी, अज्ञानी और पापी के रूप में निरुपित करना और उससे मुक्ति दिलाने के लिए प्रकारान्तर से दिया गया आदर्शात्मक दर्शन, आदर्शात्मक ज्ञान के आधार पर, कार्यक्रम प्रस्तुत करना । इसी के साथ उपासना और उपासना के कर्मकाण्डों का भी लोकव्यापीकरण करने की प्रक्रिया सम्पन्न होते आई । द्वितीय प्रकार (भौतिकवाद) के अनुसंधानों का प्रमाण, यंत्रों के रूप में प्रस्तुत हुआ।

''सब कुछ होने'' के तात्पर्य में, ध्रुवीकृत बिंदू यही है कि मानव कितने ही प्रश्न और जिज्ञासा करता है, उन सबका उत्तर मिल जाय और व्यवहार में प्रमाणित हो जाय । देखने को यही मिल रहा है कि जितने भी जिज्ञासा और प्रश्नों को समाधानित करने के प्रयास हुए, उसके उपरान्त भी, प्रश्न चिन्हों की संख्याएं बढ़ती गई । आदर्शवादी चिंतन, जनमानस में आस्था के रूप में (अर्थात नहीं जानते हुए भी मानने के रूप में) है । इस प्रकार आस्थाओं में विविधता हुई । न जानते हुए मानने के आधार पर अंतर्विरोध हुआ, यही प्रश्नों की स्थली है । द्वितीय प्रकार के अनुसंधान यंत्र प्रमाण तक पहुंचकर, व्यवहार प्रमाण में, प्रमाणित होने में असमर्थ हुए, फलस्वरूप विद्वानों में भी अंतर्विरोध हुआ तथा यांत्रिकता और संचेतना के बीच प्रश्न चिन्ह बनते गए । यही, प्रश्न चिन्हों में वृद्धि होने की स्थली दिखाई पड़ती है। चतुर्थ प्रकार का चिंतन - अस्तित्व मूलक, मानव केन्द्रित चिंतन ।

अस्तित्व मूलक, मानव केन्द्रित चिंतन

सह-अस्तित्व दर्शन बनाम मध्यस्थ दर्शन, जीवन ज्ञान और मानवीयता पूर्ण आचरण का प्रतिपादन सार्वभौम व्यवस्था अखण्ड समाज के अर्थ में व्याख्या विश्लेषण सहित प्रस्तुत है । विगत चिंतन क्रम में मानव अभी तक योग संयोग से, अथक प्रयास से, सूझ बूझ तैयार कर पाया । इन सबके पश्चात जो जिज्ञासाएं, प्रश्न चिन्ह विविध प्रकार से समीचीन हैं, इन सबका उत्तर और समाधान अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन है क्योंकि अस्तित्व ही, सह-अस्तित्व के रूप में, नित्य समाधानित है । अस्तित्व में ही मनुष्य भी अविभाज्य है, जीवन भी अस्तित्व में अविभाज्य है । अस्तित्व में ही अपने ''त्व'' सहित, व्यवस्था के रूप में आचरण है । इन तीनों बिंदुओं को जानना-मानना, पहचानना और निर्वाह करना ही पूर्ण दर्शन, पूर्ण ज्ञान एवं पूर्ण आचरण का तात्पर्य है ।

इसी क्रम में, मानव में जीवन और जीवन में अंतर्सम्बन्ध सहज क्रिया-कलाप स्पष्ट होता है । यही आचरण, वाणी अर्थ सम्बन्ध

सहज क्रिया-कलाप बनाम भाषा आचरण; व्यवहार कार्यकलाप बनाम सम्बन्ध सहज आचरण; व्यवस्था बनाम सर्वतोमुखी समाधान सहज आचरण के लोकव्यापीकरण करने की सम्पूर्ण संभावना समीचीन है ।

आचरणों की विविध विधाओं में से, जागृत जीवन सहज आचरणों को देखने पर पता चलता है कि संख्या के रूप में 122 (एक सौ बाईस) आचरणों को देखा गया है । इन-इन के नाम सहित जागृत जीवन में ही होने वाली क्रिया, अभिव्यक्ति, संप्रेषणाओं का विश्लेषणपूर्वक, उन-उन आचरणों को, सार्थक विधि से इंगित करने की प्रक्रिया प्रस्तुत है । सह-अस्तित्व में सम्पूर्ण क्रियाएं आचरण में गण्य हैं और मानव कुल में सम्पूर्ण आचरण विश्लेषणपूर्वक इंगित होना संभव है । इसलिए सम्पूर्ण अस्तित्व ही अध्ययन सुलभ हुआ ।

प्रत्येक मनुष्य जीवन रूप में ही समान है, यह बल-शक्ति, क्रिया और लक्ष्यों के रूप में समान होना देखा गया है । इसी आधार पर अर्थात जीवन के आधार पर ही, जीवन-सहज क्रिया कलाप, प्रत्येक मनुष्य को समझ में आना सहज संभव है । जीवन में पांच आयाम, बल और शक्ति के रूप में, पहले से ही इंगित किया जा चुका है । जिसमें से मन जीवनबल है और आशा जीवनशक्ति है। इसी प्रकार वृत्ति-विचार, चित्त-इच्छा, बुद्धि-ऋतम्भरा और आत्मा-प्रामाणिकता के रूप में अध्ययन गम्य है । इन्हीं अक्षय बल, अक्षय शक्ति के चलते मन में चौंसठ (64) आचरण, वृत्ति में छत्तीस (36) आचरण, चित्त में सोलह (16) आचरण, बुद्धि में चार (4) आचरण, और आत्मा में दो (2) आचरणों को पहचाना गया है । यह प्रस्तुत है ।

भ्रमित मानव मन की क्रियाएं सर्वाधिक मान्यताओं के आधार पर सम्पन्न होती हुई दिखाई पड़ती हैं । मान्यता का आधार शरीर, इन्द्रिय और इंद्रिय संवेदनाएं हैं । इन पर आधारित मान्यताओं से प्रत्येक मनुष्य समस्याग्रस्त रहता है । प्रमाणिकता के लिए मन अनुभव मूलक विधि से क्रियायों को संपन्न करता है । यह विचार, इच्छा, ऋतम्भरा, प्रामाणिकता सहज क्रम में, जीवन जागृति का प्रमाण प्रस्तुत होता है ।

''मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान'' में जीवन जागृति विधि सम्पन्नता को स्पष्ट किया गया है । आस्वादन क्रम में भी नियम-पूर्वक इन्द्रिय संवेदनाओं का आस्वादन नियम, न्याय, धर्म, सत्यात्मक वैभव का आस्वादन, अखंड सामाजिकता का आस्वादन, सार्वभौम व्यवस्था का आस्वादन और अस्तित्व में अनुभव का आस्वादन यह जागृतिपूर्णता की विधि है ।

अजागृत मानव मन का सहज कार्यकलाप, इन्द्रियों की तादात्मता वश, इन्द्रिय संवेदनाओं को सत्य समझने के आधार पर अथवा शरीर को जीवन मान लेने के आधार पर भ्रमित होना पाया जाता है । इसी के पक्ष में जीवन सहज, विचार और इच्छा संयुक्त होकर कल्पनाशीलता का प्रसव और कार्य होते ही रहता है । आलंबन के लिए प्रिय, हित, लाभात्मक दृष्टियां कार्यरत हो जाती हैं, फलस्वरूप इन्द्रिय तृप्ति के लिए दिवारात्रि सोचता हुआ, कल्पना करता हुआ, चित्रित करता हुआ, प्रयास करते हुए, प्रयोग करते हुए, मनुष्यों को पहचाना जा सकता है । इस प्रकार मान्यता का दो पक्ष स्थापित होता है, जिसमें से इंद्रिय संवेदना सापेक्ष मनोविज्ञान प्रचलित हो चुका है। जिसके लोकव्यापीकरण होने के उपरान्त भी मानव परम्परा, बेहतरीन समाज की (अर्थात व्यक्ति समुदाय मानसिकता के चुंगल से छूटकर, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सहज) मानसिक व्यवस्था बन नहीं पाई ।

इसका मूल कारण, इंद्रिय संवेदनाओं को सत्य मानना रहा अथवा अनिवार्य मानना रहा। जबकि जीवन-ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण ध्रुवों के आधार पर, मानव संचेतनावादी मानसिकता (अथवा मनोविज्ञान) स्पष्ट हो जाता है क्योंकि मानव संचेतना का तात्पर्य ही है, जानने मानने, पहचानने, निर्वाह करने में तृप्ति और उसकी निरंतरता का नित्य वर्तमान होना । ऐसे वर्तमान होने का, मानव परम्परा में ही प्रमाणित होना, सहज है।

जानने-मानने और पहचानने-निर्वाह करने के लिए अस्तित्व ही सम्पूर्ण वस्तु है । अस्तित्व में ही जीवन और जीवन जागृति

प्रमाणित होती है तथा अस्तित्व में ही रासायनिक द्रव्यों से गर्भाशय में रचित रचना रूपी मानव शरीर भी सहज सुलभ होता है । यह दोनों अर्थात जीवन जागृति और मानव शरीर के सह-अस्तित्व में ही मानवीयता सहज वैभव का प्रमाणित होना पाया जाता है । इस प्रकार मानव परम्परा में ही, जीवन जागृति प्रमाणित होने की नियति सहज व्यवस्था है । **नियति का मतलब, अस्तित्व में नियम-पूर्ण स्थिति, गति से है।** नियम ही न्याय, न्याय ही धर्म, धर्म ही सत्य, सत्य ही अस्तित्व, और अस्तित्व ही नियम के रूप में देखने को मिलता है । इन सभी स्थितियों को सत्यापित करने वाला मनुष्य ही है । इसे सत्यापित करने के लिए अस्तित्व ही सम्पूर्ण वस्तु है । अस्तु अस्तित्व ही त्रिकालाबाध सत्य है। **ऐसा होने के कारण जो कुछ भी सत्यापन मनुष्य करता है, उसका अस्तित्व सहज होना, परम आवश्यक है, यह समझ में आता है ।** समझने का तात्पर्य भी जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना ही है । समझने वाली वस्तु, जीवन्त मानव ही है । इस प्रकार दोनों ध्रुव स्पष्ट हो जाते हैं । समझने वाली वस्तु जीवन है । समझने के लिए सह अस्तित्व ही है। इस प्रकार जीवन ही दृष्टा है यह स्पष्ट हुआ । देखने वाला ही समझ सकता है । देखने का तात्पर्य भी समझना ही है । इसमें और भी खूबी यह है कि जीवन भी अस्तित्व में अविभाज्य है । इस प्रकार अस्तित्व ही सभी अवस्थाओं में है, यह स्पष्ट हो जाता है । यथा पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, ज्ञानावस्था। ज्ञानावस्था में, जागृतिसहज व्यवस्था है । जागृत अवस्था में प्रमाणित अवस्था और इनकी परंपराएं, नियति सहज व्यवस्था हैं । नियति का तात्पर्य भी नियमपूर्ण स्थिति गति से है । नियमपूर्ण स्थिति गति हर अवस्था में देखने को मिलती है । इस प्रकार जीवन दृष्टा है इस आधार पर सम्पूर्ण अस्तित्व ही, जीवन में, जीवन से, जीवन के लिए दृश्य है - यह समझ में आता है । इस तथ्य से यह स्पष्ट है कि अस्तित्व ही सभी अवस्थाओं में अथवा पदों में वर्तमान रहता है । अस्तित्व में ही, द्रष्टा पद प्रतिष्ठा भी वर्तमान है । **मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान, जागृतिपूर्ण जीवन का अध्ययन है और मानव परम्परा में प्रमाणित होने की विधियों से सम्पन्न है ।**

जागृति जीवन के 122 आचरण

अक्षय बल की क्रियाएं (प्रत्यावर्तन)	अक्षय बल का नाम	जीवन का अवयव	अक्षय शक्ति का नाम	अक्षय शक्ति की क्रियाएँ (परावर्तन)
अनुभव	आत्मा	मध्यांश	प्रमाण	प्रमाणिकता
बोध: आनन्द, अस्तित्व	बुद्धि	**प्रथम परिवेश**	ऋतम्भरा	संकल्प: धी, धृति
चिंतन: 1 श्रुति, 2 मेधा, 3 कांति, 4 निरीक्षण, 5 संतोष, 6 प्रेम, 7 वातसल्य, 8 श्रृद्धा	चित्त	**द्वितीय परिवेश**	इच्छा	चित्रण: 1 स्मृति, 2 कला, 3 रूप, 4 गुण, 5 श्री, 6 अनन्यता, 7 सहजता, 8 पूज्यता
तुलन: 1 विद्या, 2 कीर्ति, 3 निश्चय, 4 शांति, 5 कृपा, 6 दम, 7 तत्परता, 8 कृतज्ञता, 9 गौरव, 10 विश्वास, 11 सत्य, 12 न्याय, 13 तादात्मता, 14 संयम, 15 वीरता, 16 भाव, 17 जाति, 18 तुष्टि	वृत्ति	**तृतीय परिवेश**	विचार	विश्लेषण: 1 प्रज्ञा, 2 वस्तु, 3 धैर्य, 4 दया, 5 करुणा, 6 क्षमा, 7 उत्साह, 8 सौम्यता, 9 सरलता, 10 सौजन्यता, 11 धर्म, 12 संवेदना, 13 साहस, 14 नियम, 15 धीरता, 16 संवेग, 17 काल, 18 पुष्टि

अक्षय बल की क्रियाएं (प्रत्यावर्तन)		अक्षय बल का नाम	जीवन का अवयव	अक्षय शक्ति का नाम		अक्षय शक्ति की क्रियाएँ (परावर्तन)
1 भक्ति						1 तन्मयता
2 ममता						2 उदारता
3 सम्मान						3 सौहाद्र
4 स्नेह						4 निष्ठा
5 पुत्र-पुत्री						5 अनुराग
6 स्वामी/साथी						6 दायित्व
7 सेवक/सहयोगी						7 कर्तव्य
8 स्वायत्त						8 समृद्धि
9 हित						9 स्वास्थ्य
10 प्रिय						10 प्रवृत्तियाँ
11 उल्लास						11 हास
12 शील						12 संकोच
13 गुरू	आ					13 प्रामाणिक
14 शिष्य						14 जिज्ञासु
15 भाई-मित्र	स्व				च	15 प्रगति
16 बहन		मन	चतुर्थ परिवेश	आशा		16 उन्नति
17 स्वीकृति	वा				य	17 स्वागत
18 रुचि					न	18 पहचान
19 सुख	द					19 स्फूर्ति
20 पति/पत्नि	न					20 यतीत्व/सतीत्व
21 माता						21 पोषण
22 पिता						22 संरक्षण
23 मृदु/कठोर						23 वहन/संवहन
24 शीत-उष्ण						24 पोषण
25 खट्टा						25 पोषण
26 मीठा						26 पोषण
27 चिरचिरा						27 पोषण
28 कडुआ						28 पोषण
29 कसैला						29 पोषण
30 खारा						30 पोषण
31 सुगन्ध/ दुर्गन्ध						31 श्वसन/ निःश्वसन
32 सुरूप/ कुरूप						32 स्वागत/ अस्वागत

जागृति जीवन के एक सौ बाइस (122) आचरण

5. जागृति व आचरण

जागृति जीवन में, आचरण मनुष्य में

मनुष्य, जीवन और शरीर का संयुक्त रूप है । निरंतर सुखी होने के अर्थ में मानव का लक्ष्य समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व प्रमाणित होना ही है । इस सदी के अंत में मनुष्य जागृत है, अथवा जागृति के लिए इच्छुक और प्रयत्नशील है या आवश्यकता को महसूस करते हुए, लक्ष्य व दिशा विहीन है । दिशा, मानवीयतापूर्ण आचरण ही है । अथवा आवश्यकता को महसूस करने, प्रयत्नशील होने और जागृत होने के योग्य है ।

जीवन में अविभाज्य, मन में होने वाली 64 क्रियाएं

1. भक्ति - 2. तन्मयता

परिभाषा - भक्ति : भजन और सेवा की संयुक्त अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन क्रिया कलाप को भक्ति के नाम से जाना जाता है। **भजन का तात्पर्य भय से मुक्त होने के क्रिया-कलाप से है ।** इसका सकारात्मक स्वरूप विश्वास पूर्ण विधि से, कायिक, वाचिक, मानसिक, कृत कारित, अनुमोदित प्रणालियों से किया गया क्रिया-कलाप ।

सेवा का तात्पर्य है - आवश्यकता, उपकार, कर्तव्य, दायित्व प्रणालियों से किया गया कार्यकलाप । इसमें सेवनीय वस्तु, विश्वास और सभी मूल्यों के साथ परावर्तित रहता है । ऐसी सहजता और विश्वास निरंतरता की पुष्टि है । यह तन्मयता का भी आधार है । तन्मयता रसों में तदाकार होना पाया जाता है । सम्पूर्ण मूल्य ही रस स्वरूप हैं, जिनका आस्वादन मन में होना, एक स्वाभाविक क्रिया है ।

विश्वास एक साम्य मूल्य है । सम्पूर्ण सम्बंधों में, सहज विश्वास ही, वर्तमान में सुख पाने की विधि है । निरंतर समझदारी सहित आवश्यकताओं, उपकारों, कर्तव्यों, दायित्वों में भागीदारी को

निर्वाह करने के क्रम में, विश्वास प्रमाणित होना पाया जाता है । यह निरंतर उत्सव के स्वरूप में स्पष्ट है । ऐसा विश्वास पूर्ण होने के क्रम में, **जागृति ही इष्ट है । इष्ट के साथ ही भक्ति का प्रवाह होना पाया जाता है ।** ऐसा बहने वाला विश्वास का, एक स्वाभाविक वातावरण अथवा प्रभाव क्षेत्र बनना सहज है, फलतः तन्मयता प्रमाणित होना पाया जाता है ।

भक्ति सहज अभिव्यक्ति जागृति गामी विधि से अथवा जागृति क्रम विधि से भास, आभास, प्रतीतियाँ और जागृति-पूर्ण विधि से प्रतीति, अनुभूति व उसकी निरंतरता दोनों स्थितियों में तन्मयता, तारतम्यता और उपादेयता स्पष्टतया समझ में आता है । भय-मुक्ति, जागृति पूर्णता के साथ ही प्रमाणित होना पाया जाता है । जागृति, प्रत्येक मनुष्य का इष्ट है । इष्ट सहज रूप में ही, इष्टानुषंगीय रूप में ही, भक्ति पूर्ण क्रिया कलाप सम्पन्न होता है । भक्ति पूर्णता, अस्तित्व में, अनुभव मूलक विधि से ही, सार्थक है । भक्ति पूर्णता सहज प्रमाण मानवीयता पूर्ण आचरण, व्यवहार कार्य है ।

भक्त, भक्ति और भाव (मूल्य) जागृति सहज कार्य व्यवहार व सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करना ही है । इनमें सहज अविभाज्यता और उसकी अभिव्यक्ति ही, भक्ति सहज पराकाष्ठा है । इस विधि में और भी मन यह स्पष्ट करना चाहता है, वह है भक्त का स्वरूप । इस संदर्भ में स्पष्ट चित्रण यही है । जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में **मानव** का स्वरूप है । भक्ति, जीवन, जागृति सहज कार्य है । जीवन का भक्ति स्वरूप होना तथा इष्ट और भक्ति में नित्य सामरस्यता का और अविभाज्यता का होना ही मौलिकता है ।

इसी के साथ मौलिकता अर्थात मूल्य रूपी विश्वास, इष्ट रूपी जागृति और मन में विश्वास ही मौलिकता है । यही सुख और सुख की निरंतरता का सूत्र हो पाता है। इस प्रकार भक्ति और तन्मयता, जागृत जीवन सहज वैभव के रूप में स्पष्ट होती है । इसकी अभिव्यक्ति संप्रेषणा, प्रकाशन, मानव परम्परा में प्रमाणित होता है । **भक्ति, सम्पूर्ण निष्ठा की अभिव्यक्ति है ।** इसी तथ्य में इसकी

आवश्यकता समाई रहती है इसीलिए प्रत्येक मनुष्य, निष्ठा को स्वीकार करने का इच्छुक रहता ही है ।

सम्यक निष्ठा के लिए निश्चित दिशा, गम्य स्थली अथवा लक्ष्य का निर्देशन आवश्यक है । **इस विधि से लक्ष्य, जागृति सहज प्रभाव में, अभिभूत होने से है । अभिभूत होना, तन्मयता है ।** इसका स्रोत, जीवन में केन्द्रीय अथवा जीवन केन्द्र में स्थित, मध्यस्थ क्रिया रूपी आत्मा तथा अस्तित्व में अनुभव सहजता ही है । अस्तित्व में अनुभव सहज निरंतरता, जागृत जीवन में, से, के लिए सहज है । जागृति पूर्वक ही प्रत्येक मनुष्य यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता सहज रूप में, जानना- मानना, पहचानना - निर्वाह करना, प्रमाणित होता है। इसी आधार पर भक्ति का स्पष्ट प्रयोजन, उसकी अभिलाषा रूप में, मानव परम्परा में सार्थक होता है ।

इसका तात्पर्य यही हुआ कि भक्ति, निर्भ्रमता अर्थात - जागृति पूर्णता सहज प्रयोजित होने में उत्सव है और निर्भ्रमता पूर्वक भक्ति, नित्य उत्सव है ही। जागृति अथवा भ्रम मुक्ति के पक्ष की समझ में स्पष्टता और व्यवहार में प्रमाण होना भी, निष्ठा का आधार बन पाता है, फलस्वरूप भक्ति चरितार्थ (स्पष्ट) हो जाती है। इसका मतलब यही हुआ कि अभ्यास विधि में, निष्ठा की परम आवश्यकता है । सभी प्रकार से किया गया अभ्यास का लक्ष्य जीवन जागृति और व्यवहार में प्रमाण है । इस कारण जागृति के अनंतर भक्ति सहज निरंतरता और नित्य उत्सव होता ही है ।

यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता ही, अस्तित्व सहज मौलिकताएं है। इनके प्रमाणीकरण क्रिया कलाप मानव कुल में विश्वास पूर्वक ही, निष्ठा सहित, सम्पन्न हो पाती है । अस्तित्व सहज सत्यता, सह-अस्तित्व सहज वास्तविकता और जीवन सहज यथार्थता में, निष्ठा का होना, एक आवश्यकता, सार्थकता है । इसी क्रम में जीवन जागृति सहज रूप में होने वाली, अस्तित्व में अनुभूति, उसकी निरंतरता, जागृति की निरंतरता के आधार पर, मन में निष्ठा का होना, सार्थक होता है । जागृत जीवन सहज (की) प्रमाणिकता

में निष्ठा होना, मौलिक प्रयोजन है । सर्वतोमुखी समाधान में निष्ठा होना, भक्ति सहज प्रयोजन है । अस्तित्व सहज परम सत्य में निष्ठा होना, भक्ति सहज सार्थकता है। मानवीयता-पूर्ण आचरण में, निष्ठा का होना, भक्ति सहज कार्य है । भक्ति सहज निष्ठा का, कोई सार्थक आधार, विकसित (अर्थात जागृत) मनुष्य ही हो पाता है । ऐसी स्थिति में जागृति विधि क्रम स्थापित होना संभव है ।

अन्य प्रतीकों के साथ, जिन सम्बन्धों में निष्ठा करने के संकल्प से भक्ति का नाम लिया जाता है, उस प्रतीकात्मक विधि से अनेकानेक लोग लगने के उपरान्त भी परिवार, समाज व व्यवस्था सहज व्यवहार रूप में प्रमाणित होना संभव नहीं हुआ । इस विधि में जीवन जागृति और भक्ति सहज व्यवहार प्रमाण प्रमाणित नहीं हो पाता है, क्योंकि जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण में पारंगत होना ही भक्ति पूर्वक प्रमाणित होने का आधार है । जीवन जागृति विधि से ही भक्ति सहज प्रमाण स्थापित होना संभव है । जागृति ही जीवन का एक मात्र लक्ष्य होने के कारण जीवन ही, जागृति सहज प्रमाणों को प्रस्तुत करने के लिए समर्थ है । जीवन जागृति पूर्वक ही, निष्ठा में नित्य उत्सव हो पाता है । स्वयं में ही भक्ति का आधार बिंदु, जागृति के रूप में हो पाता है । इसीलिए और किसी भी अवलम्बन से, जागृति लक्ष्य को पाना, संभव नहीं हो पाता है क्योंकि जागृति लक्ष्य का अध्ययन होते ही, जागृति के लिए निष्ठा, जीवन सहज रूप में स्वीकृत हो जाती है । भक्ति का आधार भी जीवन में समाहित है । भक्ति रूपी क्रिया कलाप की सम्पूर्ण अहर्ता जीवन में ही समाहित है । जागृति, अस्तित्व सहज अभिव्यक्ति है । इस प्रकार भक्ति की संभावना, सुलभता सबके लिए समीचीन है ।

मन में ही भक्ति की अभिव्यक्ति होना, स्पष्ट हो चुका है । यह सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियों को जीवन्त बनाए रखने का कार्य सम्पन्न किए रहता है । यह प्रत्येक मनुष्य में पाया जाने वाला प्रमाण है । ऐसे जीवन्त मनुष्य ही जागृति के लिए स्रोत हैं । इसलिए कि प्रत्येक मनुष्य, विश्वास पूर्वक जीना ही चाहता है । विश्वास को मूल्यों के

क्रम में जानना, मानना, सम्बंधों को पहचानना व निर्वाह करना सरल, सुंदर, समाधान और इसकी निरंतरता है । इसका प्रमाण - शिशु काल में प्रत्येक मानव संतान, विश्वास के अलावा कुछ करता ही नहीं । परम्परा में, विश्वास सहज धारक वाहकता प्रमाणित होने के उपरान्त, परम्परा में आए (अथवा अवतरित) सभी मानव संतान, शिशु काल की विश्वास निष्ठा को जागृत परम्परा सहज रूप में ही अपनाए रखते हैं । इसका मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इसीलिए मानव परम्परा में, मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान की आवश्यकता मूल्यांकित हो पाती है ।

मानव के अपने स्वत्व रूपी मानवीयता में न्याय दृष्टि की क्रियाशीलता सहज होती है । भक्ति और निष्ठा की तन्मयता नित्य उत्सव के रूप में सफल होने का आधार बिंदु है । भक्ति सहज निष्ठा में न्याय सुलभता एक सहज क्रिया है । न्याय सुलभता ही, विश्वास और अभय के, रूप में सार्थक है । विश्वास के साथ ही सर्वतोमुखी समाधान रूपी अभ्युदय, परम्परा में प्रमाणित होता है । इसी क्रम में मनुष्य में निष्ठा, उसकी संभावना, सार्थकता, निरंतर उदयशील होना पाया जाता है । सम्पूर्ण जागृति में, न्याय, धर्म, सत्य दृष्टियाँ क्रियाशील होती हैं, इस आधार पर भयमुक्ति (अर्थात विश्वास और उसकी निरंतरता, समाधान समृद्धि, अभय सह-अस्तित्व) सहज रूप में प्रमाणित होती है। फलस्वरूप भक्ति, व्यवहारिक हो जाती है ।

भक्ति को इस प्रकार से भी देखा जाना सहज है कि **मानवीयता पूर्ण विधि से जीने की कला ही भक्ति है** अथवा भक्ति के वैभव के रूप में स्पष्ट है । जागृति विधि से, मानव में भक्ति सहज क्रियाकलाप है क्योंकि व्यवहार में सामाजिक (धार्मिक), व्यवसाय में स्वावलम्बन के उपरान्त ही भक्ति की अभिव्यक्ति, प्रारंभ होती है । **भक्ति स्वयं में जागृत मानव - सहज व्यवहार और कार्य है ।** मानवीयता पूर्ण मानव परम्परा में, भय सर्वथा तिरोहित हो जाता है क्योंकि भय स्वयं भ्रम से, के लिए ही, उत्पीड़ित किया रहता है ।

इसके मूल में पराभव के बाद, पराभव ही है । भ्रम-मुक्ति के उपरान्त मानव सामाजिक होता है - समृद्ध, अभय सम्पन्न, अथवा विश्वास में निष्ठा सम्पन्न होता है । सर्वतोमुखी समाधान सहित प्रामाणिकताओं को प्रमाणित करने का क्रम, स्वयं स्फूर्त विधि से, चरितार्थ होता है । इसी आधार पर भक्ति, अपने आप, हर क्षण, हर पल, उत्सवित रहती ही है । भक्ति अपने आप में, जागृति सहज उत्सव ही है । उसमें अभयता वर्तमान में विश्वास तन्मयता का प्रमाण है । विश्वास पूर्वक ही अभयता प्रमाणित होती है । इस कारण विश्वास में तन्मयता और प्रमाणिकता में तन्मयता, स्वाभाविक तथ्य होता है । इसीलिए जागृत मानव परम्परा में एक मात्र भक्ति ही नित्य उत्सव है। अस्तु, तन्मयता का सार्वभौम प्रयोजन विश्वास और उसकी निरंतरता की सार्थकता का सर्वविदित होना है । इस आधार पर भक्ति सबके लिए आवश्यक अभिव्यक्ति है, सर्वोपरि श्रेष्ठ समाज और सामाजिकता का प्रमाण है ।

3. ममता - 4. उदारता

परिभाषा - ममता :- (1) अपनत्व की पराकाष्ठा पूर्वक पोषण संरक्षण कार्य । (2) स्वयं की प्रतिरूपता की स्वीकृति, उसकी निरंतरता।

उदारता :- (1) स्व प्रसन्नता पूर्वक, दूसरों की जीवन जागृति, शरीर स्वस्थता व समृद्धि के लिए आवश्यकता अनुसार तन, मन, धन रूपी अर्थ का अर्पण-समपर्ण करना । (2) प्राप्त समाधान रूपी सुख सुविधाओं (समृद्धि) का, दूसरों के लिए सदुपयोग करना और प्रसन्न होना ।

ममता की परिभाषा, सूत्र और व्याख्या ममत्व के (मेरा पन के) आधार पर ही हो पाती है । यह मन में होने वाली अनुभवमूलक प्रमाण के आधार पर, कल्पनाशीलता (व्यवहारिक तरीकों) को संयत कर पाता है । यह शिशुकाल में सर्वाधिक रूप में माता-पिता के चरित्र में अथवा अभिभावकों के चरित्र में दिखने वाला तथ्य है । यह सामान्यतः प्रचलित अभिव्यक्ति है । ऐसी मान्यताएं पूर्वानुक्रम,

परानुक्रम भेद से पाई जाती हैं । पूर्वानुक्रम पद्धति प्रणाली, मानवीयता पूर्ण विचार-चिंतन-बोध-अवधारणा और अनुभव मूलक होने के क्रम में अध्ययन गम्य है । परानुक्रम मान्यता का स्रोत शरीर, मनुष्य, जीवजगत से प्राप्त प्रेरणाओं के रूप में है और (इनमें से जितनी भी प्रकार से इन्द्रिय सन्निकर्षपूर्वक माना गया है अथवा) जितनी भी मान्यताएं होती है । वे सब प्रिय, हित, लाभात्मक, तुलन विश्लेषण संबधों के अधार पर संयत होना पाया जाता हैं । संयत होने का तात्पर्य प्रिय हित लाभ प्रवृतियां न्याय, धर्म, सत्य संगत होने से है । पूर्वानुक्रम विधि से चिंतन, समाधान और सम्बंध, मूल्य-मूल्यांकन के रूप में प्रामाणिकता के प्रभाव क्षेत्र के अनुरूप मान्यताओं को मन स्थापित कर लेता है अथवा मान जाता है। पूर्वानुक्रम प्रणाली से प्राप्त मान्यताएं, जीवन सहज क्रियाओं का (यह भी जागृति पूर्ण क्रियाओं का) प्रभाव क्षेत्र सहज (के) प्रभावों की स्वीकृति है। ऐसी मान्यताओं का प्रयोजन सामाजिक होना पाया जाता है । ऐसी ममता, सामाजिकता के (सहज) सूत्र, वैभव और प्रयोजनों के साथ, उत्सवित रहती है, यही सार्थक उदारता का प्रवर्तन है । इसके परानुक्रम विधि से प्राप्त ममता, शिशुकाल के अनंतर अभिभावकों का अपेक्षा में परिवर्तित होना आरंभ होता है । ऐसे परिवर्तन कौमार्य अवस्था से ही जागृति की ओर दिशागामी होने के रूप में पाया गया है । पूर्वानुक्रम विधि से, मन में प्राप्त होने वाली मान्यता सहज ममता, शरीर यात्रा पर्यंन्त, कार्यरत रहना, पाया जाता है । पूर्वानुक्रम विधि से ही, मनन पूर्वक मान्यताएं स्थापित हो पाती हैं, फलतः मानव परम्परा के लिए उपकारी और सार्थक सिद्ध होती हैं ।

ममता, अभिन्नता के अर्थ में, चरितार्थ होती है । जागृति विधि से प्राप्त मान्यताएं, संतानों में अपने जैसे ही जागृत व्यक्ति के रूप में परिवर्धित होने के अर्थ में, पोषण कार्यों को सम्पन्न करता है, फलतः सार्थक हो जाता है । शुभ सहज के स्वरूप में, जागृति न होते हुए भी मानव शुभाकांक्षा करता है । ममता सहज प्रभाव, भले ही अभिभावक, भ्रमित क्यों न रहते हों, जब तक ममता का भाव (मूल्य) रहता है, तब तक उदारता पूर्ण चरित्र प्रकाशित रहता है ।

उदारता का आचरण, स्वयं स्फूर्त कार्य है ।

उदारता पूर्वक जब मनुष्य अपने आचरण को प्रस्तुत करता है, तब अपने पास जो कुछ भी तन, मन, धन रूपी अर्थ होता है उसे प्रसन्नता और उत्सव के रूप में ही, अर्पण- समर्पण करना प्रमाणित होता है । यह प्रधानतः मात्रात्मक रूप में अधिकाधिक व्यक्त हो पाता है। इसमें अर्थात ममता सूत्र में निष्ठा, पूर्णतया अभिव्यक्त होती है । ममतावश पोषण कार्य भरपूर सम्पन्न होता है और संरक्षण कार्य, सहजता से संपन्न हो जाता है । इस प्रकार प्रधानतः पोषण कार्यों में ममता सहित मातृत्व को और ममता सहित संरक्षण कार्यों को पृत सम्बंध में होना पाया जाता है । पितृ सम्बंध संरक्षण पोषण रूप में ममता व उदारता मूल्य व मूल्यों के रूप में, सम्पन्न होना, पाया जाता है । ममता और उदारता, मानव परम्परा में, संतानों के साथ, सहज ही वर्तमान होने वाला आचरण है ।

5. सम्मान - 6. सौहार्द्र

परिभाषा - सम्मान :- (1) व्यक्तित्व प्रतिभा की स्वीकृति और उसका सन्तुलन सहज प्रकाशन (2) व्यक्तित्व, प्रतिभा की श्रेष्ठता की स्वीकृति निरन्तरता स्पष्टता ।

व्यक्तित्व का तात्पर्य - आहार, विहार, व्यवहार के रूप में प्रमाणित होना । **व्यक्तित्व -** आचरण, प्रतिभा = समझदारी ।

प्रतिभा का तात्पर्य - जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन व मानवीयतापूर्ण आचरण में पारंगत होना ।

सौहार्द्र :- जिस प्रकार से स्वीकृति हो उस अवधारणा, अनुभव, स्मृति और श्रुति को यथावत प्रस्तुत करने का क्रियाकलाप।

सम्मान अथवा सम्मानात्मक मानसिकता तभी संभव हो पाती है, जब मूल्यांकन विधियों को जानने-मानने, पहचानने और निर्वाह करने कीआवश्यकता महसूस होती है। मूल्यांकन सहज आवश्यकता, जागृत जीवन का कार्यक्रम प्रमाण सहज प्रक्रिया है । क्योंकि प्रत्येक

व्यक्ति अपने में स्वयं को, मूल्यांकित करने में, तभी समर्थ हो पाता है जब जीवन ज्ञान से संपन्न होता है । जीवन ज्ञान प्रत्येक मनुष्य की सहज आवश्यकता है । मानवीयता पूर्ण परम्परा में प्रत्येक मनुष्य को जीवन ज्ञान सहज ही सुलभ होना नित्य समीचीन है । इसी आधार पर मानव में, से, के लिए मूल्यांकन क्रिया, प्रत्येक व्यक्ति को स्वीकार्य है।

मूल्यांकन के आधार पर ही, सम्पूर्ण परावर्तन में, यर्थाथता ही वर्तमान रहता है । मूल्यांकन, जागृति सहज मान्यता के आधार पर, किए जाने की स्थिति में अपरिवर्तित रहता ही है । किसी भी आयाम, दिशा, कोण, परिप्रेक्ष्य में, श्रेष्ठता की स्वीकृति सहित प्रकाशन ही, सम्मान के रूप में समर्पण पूर्वक स्पष्ट होता है । जो जिस श्रेष्ठता के लिए अर्पित होता है, वह अपने में भी सम्मान का अनुभव करता है । अर्पित रहने का तात्पर्य स्वीकृति व प्रमाणों से है।

ऐसे उभय सम्मान और स्वीकृतियां, उत्सव के स्वरूप में ही प्रमाणित होती हैं । यह स्वयं में, से, के लिए सुख, शांति, संतोष, आनंद और उदात्तीकरण अर्थात परस्परता में पूरकता स्वाभाविक रूप में देखने को मिलता है । ऐसे परस्पर उदात्तीकरण की अभीप्सा, प्रत्येक मनुष्य की होती है । जागृत जीवन श्रेष्ठता का मूल्यांकन करता है । जागृति क्रम में हर मानव में मूल्यांकन की अपेक्षा और प्रयास रहता है।

अरहस्यता (वर्तमान में विश्वास) के साथ सौहार्द्रता :- उभय तृप्ति में सामंजस्यता और संगीत प्रमाणित होने से है, जिससे उत्सव का अनुभव होना पाया जाता है । उत्सवता ही सुख सहज अनुभव का प्रकाशन है । सुखपूर्वक ही, अनुभव का प्रकाशन, अरहस्यता और सौहार्द्रता का प्रमाण है । विचारों की एकरूपता, मूल्यांकन की एकरूपता को, एक से अधिक व्यक्ति जब जानते, मानते हैं, पहचानते हैं, निर्वाह करते हैं तब समाधानित होना पाया जाता है । तब संप्रेषणाएं न्याय व समाधान के रूप में सार्थक होना पायी जाती है, मानी जाती हैं । जानने, मानने के साथ ही पहचानना,

निर्वाह करना संपन्न हो जाता है। यही प्रमाण, यथार्थता, रहस्यमुक्ति (अरहस्यता) है ।

मूल्यांकन के साथ अरहस्यता स्वाभाविक ही वर्तमान रहता है, फलस्वरूप मूल्यांकन की संप्रेषणा, भाषा, मुद्रा, भंगिमा - अंगहार सहित संप्रेषित हो पाती हैं । इसीलिए सम्मान कार्य, समारोह के रूप में, सम्पन्न होता है । जागृति परम्परा में मानव सहज श्रेष्ठताएं बहुमुखी विधियों में, सम्पन्न होना भावी है । मानवीयता पूर्ण परम्परा में, अभिव्यक्ति में श्रेष्ठता, व्यंजनीयता के आधार पर मूल्यांकित होती है।

व्यंजनीयता का तात्पर्य - साक्षात्कार होने से है साक्षात्कार चिंतन में होता है । व्यंजनाएं, मानव मूल्य, जीवन-मूल्य स्थापित मूल्यों के प्रभाव के साथ, जीवन मूल्यों का बोध व अनुभव करने से है। सम्पूर्ण रसानुभूति का तात्पर्य है - जीवन मूल्य रूपी, सुख, शांति, संतोष, आनंद सहज आप्लावन, जागृति सहज प्रमाणों के रूप में स्पष्ट होना । यही अनुभव करने और बोध कराने का तात्पर्य है ।

ज्ञानावस्था में वैभवित मानव में, मूल्य सहित रसास्वादन की अपेक्षा जीवन में है क्योंकि मूल्यांकन पूर्वक ही तृप्ति व उभय तृप्ति है। जागृति सहज अहर्ता जीवन ही है (अथवा जीवन में है) । रसास्वादन स्रोत नित्य वर्तमान, सह-अस्तित्व में ही समीचीन है । ऐसी रसास्वादन की अर्हता से, अरहस्यता स्पष्ट होती है ।

इससे स्वाभाविक ही, सौजन्यता पूर्ण विधि से विचार शैली स्थापित हो पाती है । यह सब जीवन सहज, पांचों अक्षय बल और शक्ति का, अविभाज्य वर्तमान है तथा सामरस्यता का द्योतक है । सामरस्यता अपने में, संचेतना के स्वरूप में, प्रमाणित होना ही है । परस्पर पूरकता ही सौजन्यता है ।

मानव में संचेतना ही विशिष्ट वस्तु है, जिसका प्रभावन कार्य ही जागृति के रूप में प्रमाणित होता है । जागृति पूर्वक ही मूल्यांकन कार्य सम्पन्न होता है । श्रेष्ठता के मूल्यांकन का एक ध्रुव, मानव

संचेतना है, उसकी जागृति (यथा जानने मानने, पहचानने, निर्वाह करने) में संगीत है, जिसका प्रमाण जानने में, निर्वाह करने में, सामंजस्यता है (अथवा एक रूपता है) । दूसरा ध्रुव अस्तित्व सहज, सह-अस्तित्व में, प्रयोजनों के साथ प्रमाणित होना ही है । यही जागृति प्रभाव और प्रभाव क्षेत्र के रूप में भी मानव परम्परा में स्पष्ट हो पाता है । मानव परम्परा में सम्पूर्ण प्रयोजन ''व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी'' के रूप में ''परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था'' ही है, जिसका लक्षण समाधान, समृद्धि, अभय तथा सह-अस्तित्व ही है । यही सर्व मानव स्वीकृति है। इसी लक्षण या फलन के अर्थ में, व्यवस्था की सहज प्रतिष्ठा है । इन्हीं में श्रेष्ठता की पहचान हो पाती है । फलस्वरूप सम्मान कार्य सम्पन्न होता है । दूसरा प्रयोजन स्वानुशासन है, यही स्वतंत्रता है । स्वतंत्रता में भी, श्रेष्ठता का प्रयोजन, लोकव्यापीकरण, प्रयोजन के आधार पर मूल्यांकित होता है । इस प्रकार सम्मान कार्यकलाप, सार्वभौमता के अर्थ में, चरितार्थ होना पाया जाता है ।

सार्वभौमता, प्रत्येक 'एक' की स्थिति गति है । यह संप्रेषणा, प्रकाशन, कार्य-व्यवहार, स्वयं व्यवस्था और सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रमाणित होता है । मानव परम्परा में परस्परता का अनुभव होना ही, मूल्यांकन कार्य प्रणाली का आधार है । जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने का तृप्ति बिंदु ही, अनुभव के नाम से जाना जाता है । इस प्रकार अनुभव, एक व्यवहारिक एवं सार्वभौम अभिव्यक्ति के रूप में प्रमाणित होता है। इसे परीक्षण निरीक्षण सहित प्रमाणित करना भी संभव है (अथवा मानव सहज कार्य है)। इसकी संभावना के रूप में, सामान्य विधि से, यह पता लगता है कि प्रत्येक मनुष्य व्यवस्था को वरता है (अथवा व्यवस्था में जीना चाहता है) । इस आशय की सार्वभौमता को,अध्ययन गम्य कराना मानव परम्परा का ही प्रधान कार्य है । शिक्षा पूर्वक ही सम्पूर्ण अवधारणाएं स्थापित हो पाती हैं । प्रचार, व्यवहार, व्यवस्था पूर्वक, पुष्ट होते हैं । मानव अभी तक अपनी संचेतना के प्रति जागृत होने के क्रम में ही है । संभावनाएं समीचीन हैं ही ।

7. स्नेह 8. निष्ठा

परिभाषा - **स्नेह** :- (1) न्यायपूर्ण व्यवहार में निर्विरोधिता (2) संतुष्टि में, से, के लिए स्वयं स्फूर्त मिलन और निरंतरता । (3) अभ्युदय में, से, के लिए स्वयं स्फूर्त उभय मिलन एवं उसकी निरंतरता।

निष्ठा :- जागृति पूर्ण लक्ष्य को निश्चित अवधारणा व स्मरण पूर्वक प्राप्त करने व प्रमाणित करने का निरंतर प्रयास ।

मानव परम्परा में यह देखने को मिलता है कि मानव जाग्रति पूर्वक स्वयं स्फूर्त रूप में ही, बहुत सारे क्रियाकलापों को करता है । नैसर्गिकता तथा वातावरण पहचानते हुए स्वयं को प्रमाणित करता है। उनमें जागृति सहजता से ही मानव सार्वभौम व्यवस्था अखंड समाज की भागीदारी में प्रवर्तित हो जाता है। इस प्रकार ''स्वयं स्फूर्त होना'' और ''प्रवर्तित होना''- का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। ऐसी मौलिकता और प्रावधान, मानव परम्परा में ही है । जीव संसार, वंशानुषंगीयता और नैसर्गिकता के आधार पर, अपने को व्यवस्था में पूरक प्रमाणित कर देता है । प्राणावस्था का बीजानुषंगी और नैसर्गिकता के आधार पर, व्यवस्था में पूरक होना स्पष्ट हो चुका है । पदार्थावस्था ने, परिणामानुषंगी विधि से अपने ''त्व'' सहित व्यवस्था को, सह-अस्तित्व में स्पष्ट कर दिया है ।

मानव परम्परा में वंशानुषंगीयता के रूप में शरीर तथा संस्कारानुषंगीयता के रूप में जीवन जागृति है । मानव परम्परा रूपी वातावरण और नैसर्गिकता के योगफल में प्रत्येक मनुष्य का प्रभावित रहना, प्रभावित करना होता है । फलस्वरूप सकारात्मक और नकारात्मक, फल परिणामों को मूल्यांकन करना हो पाता है । इसका पुनर्प्रयास सकारात्मक पक्ष में स्फूर्त रहना, अन्यथा नकारात्मक पक्ष को समाधानित करने में प्रवृत्त रहेगा । ऐसा प्रवाह और तरंग, मानव परम्परा में निरीक्षण, परीक्षण और सर्वेक्षण पूर्वक, इतिहास में द्रष्टव्य है । इस प्रकार मानव सहज मौलिकता स्पष्ट है ।

सम्पूर्ण स्वयं स्फूर्त विधि ''जानने-मानने में तृप्ति'' के अर्थ

में, पहचानने-निर्वाह करने में - समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व रूपी प्रमाणों के अर्थ में स्वयं स्फूर्त होना पाया जाता है । ऐसे स्वयं स्फूर्त प्रभाव, सह-अस्तित्व सहज रूप में, निश्चित, योग संयोग के लिए सूत्र निर्मित करते हैं । वातावरण में मानव तथा मानव निर्मित परिस्थितियां, बनी ही रहती हैं। नैसर्गिकता, सहज ही समीचीन रहती है । फलस्वरूप स्वयं स्फूर्त पहचान मनुष्य के साथ होना स्वाभाविक हुआ । इसी प्रकार नैसर्गिकता के साथ भी, संतुलन के अर्थ में स्वयं स्फूर्त पहचान हो पाती है । नैसर्गिकता में मनुष्य के अलावा, तीनों अवस्थाएं गण्य हैं । मानव परम्परा ही वातावरण के रूप में मनुष्य को उपलब्ध रहता ही है। सकारात्मक विधि से स्नेह की निरंतरता एवं वैभव प्रमाणित होता है। इस प्रकार स्नेह सम्बंध भी स्वयं स्फूर्त सम्बन्ध हैं । इसमें निहित आशय और प्रक्रिया भी स्पष्ट हो चुकी है। इसमें निरंतरता को बनाए रखना ही निष्ठा है । निष्ठापूर्वक ही सम्पूर्ण सम्बन्ध सफल हो पाते हैं । स्वयं स्फूर्त विधि ही, संतुष्टि का आधार बिंदु है । इसीलिए उभय संतुष्टि है क्योंकि हर सम्बन्ध में एक से अधिक व्यक्तियों का होना पाया जाता है । इसलिए उभय संतुष्टि (अथवा जो जो संबंधित रहते हैं, संतुष्टि क्रम में) स्नेह सम्बंध का निरंतर वैभवित होना पाया जाता है । सम्पूर्ण स्वयं स्फूर्तियां, प्रत्येक व्यक्ति में, व्यवस्था और उसकी सार्वभौमता के अर्थ में ही प्रवर्तित है, जिसका व्यावहारिक फलन स्पष्ट रहता है । मानव-परम्परा में, से, के लिए सार्वभौम फलन-समाधान, समृद्धि, अभय और सह-अस्तित्व ही है । जीवन सहज अभीष्ट सुख, शांति, संतोष और आनंद ही है। इन दोनों ध्रुवों के प्रमाणीकरण प्रणाली के रूप में ही, मानव परम्परा में सार्वभौम व्यवस्था स्वानुशासन स्पष्ट हो जाता है ।

व्यवस्था को जानने-मानने के फलस्वरूप उसमें निष्ठा, पहचानने व निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होती है । व्यापार सम्बन्धों में व्यवस्था नहीं होती, क्योंकि व्यापार लाभोन्मादी प्रवर्तन है। इसके परिणाम स्वरूप अव्यवस्था भावी है और उसकी पीड़ा का होना पाया जाता है । अव्यवस्था मानव को वरेण्य नहीं है । लाभोन्माद, स्व-सम्मोहन नामक आवेश है, जिसका निराकरण

आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने में प्रमाणित है । यह तभी सहज होता है जब मनुष्य मानवीयता को अपने स्व त्व के रूप में पहचान पाता है । यह जागृति क्रम में होने वाला सहज पद है। व्यक्ति किसी धरती पर सफल हुए होंगे इस धरती पर परम्परा के रूप में, सार्वभौम व्यवस्था को अभी भी पहचाना नहीं गया है । अभी भी जीवन सहज रूप में मित्रता और निष्ठा का बोध होता है । ऐसा होते हुए भी व्यवहार, विचार, व्यवस्था के रूप में पहचानना, उसे सर्व-सुलभ करना, मानव की प्रतीक्षा में है । मित्र सम्बन्धों में विश्वास और उसके निर्वाह में निष्ठा, जीवन जागृति और उसकी मान्यता की अभिव्यक्ति है । अस्तित्व में मानव कुल संस्कारानुषंगी विधि से ही एक अखंड स्थिति है । इसे सार्थक बनाने, होने, करने में और उसकी परम्परा रूप में, जागृति का धारक, वाहक बनना, मनुष्य के लिए एक आवश्यकता, अनिवार्यता बन चुकी है । इसकी नित्य संभावना समीचीन है । इस प्रकार मित्रता व निष्ठा की महिमा, संभावना और प्रयोजन, सामरस्यता व समाधान के अर्थ में, प्रत्येक मनुष्य को इंगित है ।

9. पुत्र-पुत्री - 10. अनुराग

परिभाषा : (1) शरीर रचना की कारकता सहज स्वीकृति और जीवन जागृति में पूरकता बराबर पिता । (2) पोषण सुरक्षा की स्वीकृति। (3) संतानों में आवश्यकीय आजीविका का स्रोत अथवा आधार रूप में स्वयं को स्वीकारना । (4) शिक्षा संस्कार प्रदान करने में सक्षम योग्य स्वीकारना (मानना) । (5) सम्पूर्ण ज्ञान प्रावधानित करने के लिए स्वयं में स्वीकारना (मानना) हर जागृत अभिभावक इन पांच विधियों में, से, के लिए स्वीकारते है, तभी पुत्र पुत्री का सम्बन्ध जागृत परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी के रूप में स्वीकार होता है । यह माता पिता का अधिकार, स्वीकृति अथवा मान्यता का स्वरूप है । इनमें से स्वयं की जागृति के अनुरूप, निर्वाह करता हुआ, देखने को मिलता है ।

परिभाषा - अनुराग :- निर्भ्रमता में प्राप्त आप्लावन (अनुपम रसास्वादन संभावना की स्वीकृति)। आप्लावन अर्थात सम्बंधों में

निहित मूल्यों का निर्वाह करने में सफलता ।

यह सर्वविदित है कि प्रत्येक मनुष्य में, किसी आयु के अनंतर, संतान रूपी शरीर रचना के सम्बन्ध में, सामान्य मान्यता की पहचान हो पाती है । मानव संतान के अवतरण के लिए एक मां और पिता की स्वीकृति सर्वसुलभ हो चुकी है (अथवा सर्व जनमानस में, स्वीकृत हो चुकी है) । इस मुद्दे पर वैज्ञानिक चिंतन ने, इसके विपरीत कुछ कर देने की इच्छा तो व्यक्त किया, पर कर गुजरने की जगह में मनुष्य की भाषा में जटिल और बहुत खर्चीले आशयों सहित एक सुयोग्य मनुष्य के, एक चमड़े के टुकड़े से ही, लाखों अरबों मनुष्य बनाने का दावा प्रस्तुत किया । आशय यही रहा कि, अच्छे आदमी के चमड़े से अच्छे आदमी पैदा होंगे । इस मुद्दे पर ऐतिहासिक पराभव का कारण, इन्हीं दावों के अंतर्निहित रहे आया, क्योंकि अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व में, रचना कार्य-कलापों के अध्ययन से पता लगता है कि, मनुष्य शरीर भी भौतिक और रासायनिक रचना है । ''जीवन'' विकसित परमाणु, गठनपूर्ण परमाणु, जीवन पद में संक्रमित परमाणु है । जीवनी क्रम में गुजरता हुआ जीवन जागृति के अर्थ में मानव शरीर के माध्यम से अभिव्यक्त होता हुआ, जानने-मानने, पहचानने के क्रम में है । मानव शरीर रचना की महिमा, जीवन प्रदत्त, जीवन्तता सहित, सम्पूर्ण संवेदनाओं को (पांच ज्ञानेन्द्रिय एवं पांच कर्मेन्द्रियों) व्यक्त करने के रूप में, जीवन मंशा के अनुसार संचालित हो सके, ऐसे वैभव के अवसर में ही, जीवन जागृत होने का **प्रावधान, संभावना,** जीवन सहज **आवश्यकता,** ये तीनों मानव परम्परा में, अध्ययन गम्य हैं । इस विधि से जीवन ही, शरीर को संचालित करने वाला, सह-अस्तित्व सहज कार्य-कलाप है ।

वैज्ञानिक दावों और अभीप्सा ने, जीवन तत्व को पूर्णतया ओझिल, अनसुनी और अनदेखी किया । हठधर्मितावश, धरती और नैसर्गिकता के साथ, जो कुछ भी कर सकते थे, वह सभी हविश पूरा कर चुके । सभी ओर पराभव की काली दीवाल आ गई है या आने ही वाली है । यह भी तथ्य उजागर हो चुका है कि जिन नियमों सिद्धांतों को विज्ञान कहते हैं, उन विधियों से जीवन तत्व का

विश्लेषण हुए हैं, उन सबसे अधिक, हर मनुष्य दिखता ही है । इसका मूल तत्व, जीवन सहज वैभव के रूप में, सभी व्यक्तियों में, देखने को मिलने वाली, कल्पना शीलता मात्र है । इससे पता लगता है कि विज्ञान से जो कुछ भी कहा जाता है, उससे अधिक विचार विश्लेषण परिकल्पना, कल्पना होती ही है । जो कुछ भी किया जाता है, उससे अधिक तो होता ही है । इस प्रकार मानव-सहज (की) कल्पना-शीलता को, विधिवत अध्ययन करने के लिए प्रयत्न होता तो, अभी मनुष्य जैसा विविध समस्याओं से जकड़ा है, इस दुर्गति की स्थिति नहीं आती ।

पुत्र-पुत्री सम्बन्ध की, धारक वाहकता जागृत माता-पिता में होना, सहज है । इन जागृति के मूल में अभ्युदय आकांक्षा, सभी में रहती है । इसीलिए माता पिता संतान के लिए, अभिभावक होते हैं। (अभ्युदय की कामना, कल्पना - योजना में अभिभूत रहने की स्थिति और गति, जिनमें हो = अभिभावक). ऐसी स्थिति में परिभाषा में, कहे गए सभी स्वीकृत सूत्र अभ्युदय के लिए आवश्यक होते हैं, यह भी स्पष्ट है । अभ्युदय का स्वरूप, सार्वभौम तत्व है ।

नियति सहज अभीप्सा है । जो अस्तित्व में है, वही मनुष्य में होता है । इसी विधि से अभिभावक की , संतान के प्रति अभ्युदय कामना, किसी शिक्षा संस्कार, व्यवस्था के बिना भी, कल्पना के रूप में, स्वीकृत रहते आया है । इस तथ्य को देखने पर पता चलता है कि अस्तित्व में अभ्युदय सूत्र और व्याख्या है ही । फलस्वरूप अस्तित्व में मानव अभ्युदय का, प्रामाणिकता के लिए प्रयोजित होना ही, मानव कुल का प्रयोजन है । उक्त विधि से, विश्लेषण से, मानसिकता से, मान्यताओं से यह पता लगता है कि मान्यता के रूप में भी मानव शुभ चाहता ही है । मान्यता ही अभ्युदय का आधार और अभ्युदय मानवीयता पूर्ण मानसिकता का आधार है, प्रयासोदय समझदारी सहज जागृत परम्परा में संक्रमित होने के क्रम में है।

ऐसा शुभ मानस सम्पन्न मानव, व्यर्थताओं से, अवांछनीयताओं से, अस्वीकृत दबावों से ग्रसित क्यों रहा है ? - इसका उत्तर यही

मिलता है कि परंपराएं सड़ चुकी हैं अथवा भ्रमित मान्यताओं से परम्परा ग्रसित हो चुकीं हैं । फलतः प्रत्येक शुभ मानस सम्पन्न संतान, परम्परागत, भ्रमवादी प्रभावों से प्रभावित हो जाती है । इसके साक्ष्यों को देखें - जैसे - (1) प्रत्येक संतान किसी अभिभावक की गोद में ही होती है, यह सबको विदित है । अभिभावकों में (अथवा सर्वाधिक अभिभावकों में) उनकी परिभाषा में कहे हुए सभी आशय, सार्थक नहीं हो पाते, जबकि होना चाहिए । यही आशय स्वीकृत है। न हो पाना किसी अभिभावक को स्वीकृत नहीं है । (2) दूसरी विधि में प्रत्येक मानव संतान, किसी न किसी शिक्षा-शिक्षण संस्थान में, अर्पित होती है, वे संस्थान अभ्युदय पूर्ण शिक्षा और शिक्षण पूर्ण संस्कार विधियों से अनभिज्ञ रहते हैं ।

दूसरी भाषा में, इस धरती पर, जितनी भी शिक्षण संस्थाएं, विगत से आज तक हुई है, उनमें मानवाभ्युदय सम्पन्नता और उसकी सार्वभौमता प्रमाणित नहीं हो पाई । फलतः विद्यार्थी के लिए यही शेष रह जाता है कि जो शिक्षा, शिक्षण संस्थान, अभी तक जो कुछ भी, प्रावधानित कर पाए हैं, उसे ही पढ़ें । इससे यही हो पाया जैसा कि अभी सम्पूर्ण मानव दिख रहे हैं, देख रहे हैं, कर रहे हैं, करा रहे हैं, भूल रहे हैं, झेलने के लिए बाध्य कर रहे हैं । इसका एक वाक्य में सार है - समस्याओं का विपुलीकरण होना। आरंभिक समय से अभी तक, समस्याएं अधिक होते ही आई हैं, समस्यायें कभी स्वीकार नहीं हो पायी ।

उक्त प्रकार से पता लगता है कि मानवीयता पूर्ण परम्परा स्थापित होने के लिए, आप हम प्रयत्नशील हैं । इसकी सफलता के लिए, ''मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान'' प्रस्तुत है । सम्पूर्ण अभ्युदय के लिए मानव परम्परा में, अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण सम्पन्न होना, अनिवार्यता है । इसी क्रम में परिवार व्यवस्था परम्परा, ग्राम-परिवार, विश्व परिवार परम्परा और व्यवस्था क्रम में ही, अभ्युदय का निश्चयन, प्रावधान, प्रभावन सहज समीचीन है । फलस्वरूप मानव कुल पुत्र-पुत्री सम्बन्धों को विधिवत निर्वाह करता हुआ, सफलता का अनुभव कर सकेगा । आज भी जो विरले

लोग आंशिक रूप में सफलता का अनुमान कर रहे होंगे, वे भी परिभाषा में कहे हुए आशय को पूरा करने की स्थिति में ही संतुष्ट हो पाएंगे ।

11. स्वामी (साथी) - 12. दायित्व

सहयोगी = दायित्व कर्तव्य साथी = दायित्व-कर्तव्य । सहयोगी - कर्तव्य दायित्व ।

परिभाषा : (स्वामी) साथी :- (1) सर्वतोमुखी समाधान प्राप्त व्यक्ति। ऐसे व्यक्ति का ही, किसी और व्यक्ति के अभ्युदय के लिए, साथी होना संभव है । अभ्युदय ही सर्वजन आकांक्षा है । इसे सफल बनाना, मानव परम्परा है । इसमें (अर्थात अभ्युदय में) पारंगत व्यक्ति दूसरों को अभ्युदयशील, अभ्युदयपूर्ण प्रमाणित करने के क्रम में, साथी (स्वामी) का पद पाता है । (2) ''स्वयं ईक्षयतेति सा स्वामी'' स्वयं स्फूर्त विधि से दृष्टा पद में हो। '' इच्छयेते इति सा स्वामी'' । स्वयं को जो पहचान चुका है, जान चुका है, मान चुका है, वे निर्वाह करने के क्रम में साथी (स्वामी) कहलाते हैं ।

दायित्व :- परस्पर व्यवहार, व्यवसाय एवं व्यवस्थात्मक सम्बंधों में निहित, मूल्यानुभूति सहित, शिष्टता पूर्ण निर्वाह ।

साथी (स्वामी) एक नामकरण है जिसकी सार्थकता परिभाषा में ही इंगति हो चुकी है । अस्तित्व ही सह-अस्तित्व है, यह विदित हो चुका है । इसी क्रम में सम्बन्धों को पहचानना निर्वाह करना, जानना मानना संभव है और यह प्रमाणित होता है । श्रेष्ठता का गुणानुवादन सुनकर, श्रेष्ठता के लिए साथी (स्वामी) का वर्णन, मनुष्य सहज (की) संभावना है । साथी (स्वामी) शब्द के साथ ही अपेक्षाएं, श्रेष्ठता एवं शुभ के वांछित स्रोत के रूप में ही भास-आभास हो पाता है । ऐसे साथी (स्वामी) अभ्युदय के अर्थ में- समाधान, समृद्धि, अभय एवं सह-अस्तित्व के सफल होने के लिए, दिशादर्शन करते हैं । सहयोगियों में स्वयं स्फूर्त होने के लिए, पूरक विधि से, प्रमाणित हो पाते हैं । जागृति सूत्र विधि से, प्रत्येक व्यक्ति में सर्वतोमुखी समाधान सहज अभ्युदय को, प्रमाण रूप में विधि विहित

प्रक्रियाओं से पारंगत बनाना, साथी (स्वामी) का ही दायित्व है ।

अभ्युदय ही सर्वशुभ होने के कारण, सभी सम्बन्धों में सूत्र प्रभावित रहते हैं, यह स्वाभाविक है । सेवक अथवा सहयोगी साथी का अर्थ, जागृति और सर्वतोमुखी समाधान ही होता है । इसमें साथी (स्वामी) और सहयोगी (सेवक) के आशय, समान होने के कारण, पूरकता ही, स्वामी का काम है । पूरकता को स्वीकारना ही, सेवक (सहयोगी) का कार्य बन जाता है । पूरक विधि से ही, सह-अस्तित्व वैभवित है । इसी क्रम में मानव का एक मात्र मार्ग है, सह-अस्तित्व क्रम में, प्रत्येक मनुष्य, किसी न किसी के लिए पूरक होता ही है और किसी न किसी से पूरकता पाता ही है । ऐसी पूरकता वश जागृत होना, प्रत्येक व्यक्ति में, से, के लिए अवश्य ही सफल होने का मार्ग प्रशस्त होता है ।

13. सेवक (सहयोगी) - 14. कर्तव्य

परिभाषा : सहयोगी :- पूर्णता अथवा अभ्युदय के अर्थ में मार्गदर्शक अथवा प्रेरक के साथ-साथ अनुगमन करना, स्वीकार पूर्वक गतित होना ।

कर्तव्य :- (1) प्रत्येक स्तर में प्राप्त सम्बंधों एवं सम्पर्कों और उनमें निहित मूल्यों का निर्वाह । (2) जिस कार्य को करने के लिए स्वीकार किए रहते हैं, उसे करने में निष्ठा को बनाए रखना ।

प्रत्येक व्यक्ति किसी का सहयोगी या किसी का साथी है ही। सम्पूर्ण मूल्यों और सम्बंधों का निर्वाह स्वयं स्फूर्त सेवा है । इस तथ्य के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति का परस्परता में सम्बंध व मूल्यों का निर्वाह करना ही कर्तव्य है। इसी विधि से प्रत्येक व्यक्ति किसी के लिए साथी है, किसी के लिए सहयोगी है । इस प्रकार दायित्व और कर्तव्य सहज निर्वाह ही सेवा है । यही मूल्यों का आस्वादन भी है । दायित्व के रूप में साथी (स्वामी) कर्तव्य के रूप में सहयोगी (सेवक) का स्वरूप स्पष्ट है । दायित्व का व्यवहार कार्य रूप स्वयं स्फूर्त विधि से होना पाया जाता है। हर कार्य-व्यवहार लक्ष्य सहित सम्बंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय-तृप्ति संतुलन, नियंत्रण के रूप में

सार्थक होना पाया जाता है । कर्तव्य के रूप में सेवा को पूर्ण कर पाना, सहयोगी के संतोष का स्रोत है । इस कर्तव्य में, निष्ठा का पालन हो, यही सहयोगी, के लिये प्राप्त मार्गदर्शन की सफलता है । मानवीय सम्बंधों व मूल्यों की पहचान व निर्वाह के रूप में सेवा है। स्वयं स्फूर्त होने तक के लिए मार्गदर्शन पाना, आवश्यक है, स्वयं स्फूर्त कर्तव्य निष्ठा का द्योतक है । सम्पूर्ण सेवाओं में उसका स्वतः स्फूर्त होना व उसके मार्गदर्शन की आवश्यकता, उसके अंतः बाह्य कर्तव्यों में सहज गति के रूप में पाया जाता है ।

सामाजिक सम्बन्ध (अर्थात मानव सम्बंधों) के आधार पर, व्यवसाय सम्बन्ध, सफल होने की व्यवस्था है । केवल व्यवसाय सम्बंध के आधार पर, मानव सम्बन्ध एवं मूल्यों की पहचान नहीं हो पाती । व्यवसाय सम्बन्ध के लिए रासायनिक भौतिक वस्तुएं हैं जो मूलतः प्राकृतिक अथवा रूपात्मक अस्तित्व में, से निश्चित अवस्था के रूप में वर्तमान है । उस पर श्रम नियोजन पूर्वक, उत्पादित वस्तुओं में उपयोगिता अथवा कला मूल्य को स्थापित किया जाता है । वर्तमान तक लाभोन्मादी मानसिकता के आधार पर सम्पूर्ण व्यवसाय के निर्भर होने के फल स्वरूप (अथवा प्रलोभन मूल्यांकन के फलस्वरूप) यह विफल होते आया । जबकि अस्तित्व में लाभ से इंगित वस्तु नहीं हैं और न ही उस भय और प्रलोभन की सत्ता है । अस्तित्व में सम्पूर्ण व्यवस्था नियम- निरंतर, नियम प्रवर्तन, नियम-नियंत्रण, नियम-न्याय संतुलन, मूल्यों का निर्वाह और मूल्यांकन के रूप में, सार्वभौम है ।

इसी के साथ पूरकता विधि क्रम में, उदात्तीकरण, विकास, जागृति देखने को मिलती है । इससे यह भी स्पष्ट होता है कि सभी समुदाय परंपराएं भ्रमवश ही लाभ, प्रलोभन तथा भय के दलदल में फंस गई हैं । इसका समाधान मूल्यों पर आधारित मूल्यांकन है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन है, संग्रह के स्थान पर आवर्तनशील अर्थव्यवस्था है, सुविधा, भोग, अतिभोग के स्थान पर उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता है । इस आधार पर साथी सहयोगियों का कर्तव्य व दायित्व, व्यवहृत होना ही है, जो समीचीन है ।

15. स्वायत्त - 16. समृद्धि (आवश्यकता से अधिक उत्पादन)

परिभाषा :- स्वायत्त = समृद्धि का अनुभव ही स्वायत्त है।

मूल्यांकन, आवश्यकता से अधिक होने के बिन्दु में ही तृप्ति का अनुभव होना पाया गया है । इसे हर व्यक्ति अपने में जाँच सकता है । ऐसा जाँचने के क्रम में इस तथ्य का भी मूल्यांकन होता है कि हम आवश्यकता से अधिक उत्पादन किये है या नहीं । आवश्यकता से अधिक उत्पादन परिवार की सीमा में ही मूल्यांकित होता है । परिवार में सभी सम्बन्धों का सम्बोधन जागृत मानव प्रकृति को जाँचने के लिए एक आवश्यकता है ।

इस विधि से सोचा जाय तो पता लगता है कि 10 व्यक्तियों के बीच में सीमित, संयत संतानों के साथ सर्वाधिक सम्बन्धों का सम्बोधन परिवार में सुलभ हो जाता है, फलस्वरूप हर के साथ कर्तव्य और दायित्व स्फुर्त होना पाया जाता है । स्वयं स्फुर्ति सदा-सदा जागृति के आधार पर सम्पन्न होना पाया गया । जागृति समझदारी के अर्थ में सार्थक है । इस प्रकार समझदार मानव ही सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति करने में सक्षम है । इसकी आवश्यकता हर मानव में रहती ही है । इसे सार्थक रूप देना मानव परम्परा का अभीष्ट है । जागृति सर्वमानव को स्वीकृत है, इस विधि से समझदारी, लोक व्यापीकरण होने का स्रोत मानव परम्परा ही है उसमे भी शिक्षा-संस्कार विधा ही प्रबल प्रभावी स्रोत है ।

समृद्धि :- आवश्यकता से अधिक उत्पादन का अर्थ समृद्धि है।

लाभ की परिकल्पना भ्रमवश, प्रलोभनवश लाभ प्रवृत्तियां, शोषणपूर्वक संग्रह सुविधा के रूप में होना स्पष्ट हो चुकी है । लाभाकांक्षा भ्रमित मनुष्य को अच्छी लगती है, इसका अच्छा होना, संग्रह सुविधा के आधार पर देखा गया । लाभ के साथ संग्रह की अनिवार्यता, दूसरे क्रम में भोग की पिपासा होना पाया जाता है । इन दोनों विधियों से मानव तो बर्बाद होता ही है । बर्बाद होने का तात्पर्य अतृप्ति की तादात का बढ़ना है, क्योंकि संग्रह का तृप्ति बिंदु

नहीं है । इसी के साथ साथ संघर्ष और युद्ध एक अनिवार्य स्थिति बनती है । इसकी गवाहियां पूरी हो चुकी हैं । इसी के साथ नैसर्गिकता में तमाम प्रदूषण फैलाना भी साक्षित हो चुका है । इस प्रकार नैसर्गिकता की बर्बादी देखने को मिलती है । इस स्थिति में भी, सुखी व समाधानित होने की अपेक्षा बनी ही रहती है ।

अभी तक के आर्थिक इतिहास के आधार पर उल्लेखनीय यही रहा है कि संग्रहरत व्यक्ति, परिवार एवं देश को बड़ा या विकसित कहते आ रहे हैं । प्रलोभन का ही प्रभाव शोषण के रूप में होना पाया जाता है । इनके दुष्परिणामों को, सामाजिकता के सार्थक रूप में देखना नहीं बन पाया । यही सम्पूर्ण लाभोन्मादी सम्मोहन का प्रभाव रहा है । यहां उल्लेखनीय तथ्य यही है कि संग्रह के साथ भी, संग्रह करते हुए भी भोग, युद्ध, व्यसन में रत रहते हुए भी समृद्धि की कामना बनी ही रहती है । यही जीवन सहज, नियति सहज प्रवर्तन का साक्ष्य है । समुदाय परंपरावश ही आदमी, जीवन सहज या नियति सहज तथ्यों को पहचानने में असमर्थ रहा है । शुभ निरंतर समीचीन रहा ही है ।

उक्त क्रम में समृद्धि के साथ अभय तथा समाधानापेक्षा, प्रत्येक मनुष्य में देखने को मिलती है । प्रत्येक मनुष्य जीवन के रूप में अक्षय बल, अक्षय शक्ति सम्पन्न है । शरीर के रूप में सीमित बल व शक्ति के रूप में है। साथ ही मनुष्य शरीर व जीवन का संयुक्त साकार रूप है । इसी सत्यतावश भौतिक रासायनिक वस्तुएं शरीर की आवश्यकता हैं । उत्पादन क्रम में जीवन शक्तियां शरीर द्वारा नियोजित होती हैं, फलतः शरीर द्वारा आवश्यकता से अधिक उत्पादन होना मानव सहज है । यही उत्पादन सुलभता है । यह विनियम सुलभता व न्याय सुलभता पूर्वक उपयोगिता, सदुपयोगिता व प्रयोजनीयता सहित समृद्धि, समाधान, अभय, सह-अस्तित्व सहज स्वराज्य व्यवस्था व व्यवस्था में भागीदारी सम्पन्न होता है । प्रत्येक व्यक्ति का उत्पादक होना अथवा उत्पादन कार्य में भागीदार होना, मानव सहज आयाम है। निश्चित उत्पादन और लाभ-हानि मुक्त विनिमय प्रणाली ही उसके संतुलन को स्पष्ट करती है।

स्वराज्य व्यवस्था के प्रधान आयाम पांच हैं :-

(1) न्याय सुलभता (2) उत्पादन सुलभता (3) विनिमय सुलभता

(4) स्वास्थ्य संयम सुलभता (5) शिक्षा संस्कार सुलभता ।

प्रथम तीनों के स्रोत के रूप में मानवीयतापूर्ण शिक्षा संस्कार सुलभता और स्वास्थ्य संयम सुलभताएं, समाविष्ट रहती ही हैं । यही मानव परम्परा की विवेक व विज्ञान पूर्ण गति व संगति है । प्रत्येक मनुष्य व्यवस्था को ही वरता है । व्यवस्था में, से, के लिए समृद्धि सहज है । अस्तु स्वयं व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के वैभव क्रम में ही उपयोगिता, सदुपयोगिता और प्रयोजनीयता प्रमाणित होती है। साथ ही आवश्यकता से अधिक उत्पादन से, शोषण विहीन विनियम से तथा न्याय सुलभता से वर्तमान में विश्वास होता है ।

17. हित - 18. स्वास्थ्य - इंद्रिय समूह के कार्यकलाप

परिभाषा : हित :-शरीर सीमानुवर्तीय उपयोगिता ।

स्वास्थ्य :- (1) मन एवं प्रवृत्तियों के अनुसार कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रियों का, कार्य करने योग्य स्थिति में होना । (2) स्पंदन-स्फुरण योग्य स्थिति में कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रियों का होना ।

शरीर सीमानुवर्तीय उपयोगिताएं शरीर पोषण संरक्षण के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है अथवा सार्थक होना पाया जाता है। प्रत्येक मनुष्य जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में है, यह स्पष्ट हो चुका है । शरीर स्वस्थता के प्रति जागृति (अथवा मन सहित जीवन अपनी मौलिकताओं को संप्रेषित होने) और अस्तित्व में, से, के लिए प्रेरणा पाने प्रमाणित करने में समरस्यता बनाए रखने में, शरीर एक माध्यम है । शरीर अपने सहज रूप में प्राणकोषाओं की रचना है । शरीर रचना गर्भाशय में संपन्न होता है यही वंश और वंशानुषंगीयता का प्रमाण है। **जीवन, चैतन्य पद का वैभव है । सह-अस्तित्व वर्तमान है ।** सह-अस्तित्व सूत्र के आधार पर, जीवन

और शरीर का योग संयोग नियति सहज विधि से वर्तमान सहज हुआ है । इसी क्रम में परस्पर पूरक होना विकास सहज है ।

प्राण कोशाओं से कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों समेत रचना सम्पन्न होने के उपरान्त, जीवन्तता की आवश्यकता शेष रहती है । दूसरी ओर जीवन, चैतन्य पद में होते हुए भी, उसको जागृति की आवश्यकता रहती है । जागृति और जागृति पूर्ण परम्परा का सहज क्रम में, मानव परम्परा ही सर्वोपरी व उपयुक्त है। मानव शरीर, रचना क्रम के आधार पर ही, जीवन मनाकार को साकार करता है और मनः स्वस्थता को परम्परा में प्रमाणित करने का कार्य संपादित करता है । यह अवसर प्रत्येक मनुष्य के लिए समीचीन है । मनाकार को साकार करने के क्रम में सामान्य आकांक्षा तथा महत्वाकांक्षा सम्बन्धी वस्तुओं को, उत्पादित करना मानव सहज है । जिसका उपयोग, सदुपयोग व प्रयोजन, क्रम से, शरीर पोषण, परिवार संरक्षण और समाज गति के रूप में साक्षित होता है । मनः स्वस्थता अथवा जीवन का प्रमाण प्रामाणिकता और सर्वतोमुखी समाधान, समाज न्याय और उत्पादन में नियमों को प्रमाणित करना ही साक्ष्य है । प्रत्येक मनुष्य का यही अभीष्ट है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि शरीर स्वस्थता का द्रष्टा जीवन है । जीवन स्वस्थ न रहने की स्थिति में, शरीर स्वस्थता का सार्वभौम मापदण्ड मिलना ही संभव नही है । इसीलिए यह तथ्य समझ में आता है कि, जीवन स्वस्थ रहने की स्थिति में, शरीर को स्वस्थ रखकर, मानवीयता पूर्ण विधि से, व्यवहार में प्रमाणित करना-कराना सहज है ।

मानव परम्परा में स्वस्थ मनुष्य का प्रकाशन, मनःस्वस्थता अर्थात जीवन तृप्ति सर्वतोमुखी समाधान व व्यवस्था में प्रमाण पूर्वक, मनाकार को साकार करने के रूप में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । ऐसी कार्य संपन्नता के लिए अनुकूल माध्यम रूपी शरीर ही, स्वस्थ शरीर है। इस प्रकार स्वस्थ शरीर की अवधारणा स्पष्ट है । आवश्यकता से अधिक उत्पादन कार्य में उपयोगी मानव सम्बन्धों एवं नैसर्गिक सम्बन्धों, उनमें निहित मूल्य निर्वाह करने योग्य शरीर, स्वस्थ शरीर है । अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण सहज अभिव्यक्ति,

संप्रेषणा, प्रकाशन के लिए सुगम माध्यम होना स्वस्थता का द्योतक है । ऐसी कसौटियों से खरी उतरने वाली स्थिति को उज्जवल बनाए रखना सहज रूप में हित दृष्टि व हित कार्य है ।

19. प्रिय - 20. प्रवृत्तियां - इन्द्रियों का अनुकूल योग-संयोग

परिभाषा : प्रिय :- शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धात्मक ज्ञानेद्रियों के लिए शरीर स्वस्थता के अर्थ में अनुकूल योग संयोग ।

योग :- नैसर्गिक रूप में प्राप्त मिलन ।

संयोग :- पूर्णता एवं उसकी निरंतरता के अर्थ में मानवीय सम्बंध रूपी प्राप्त मिलन ।

संवेग :- पूर्णता में, से, के लिए किया गया बौद्धिक, जागृत जीवन सहज प्रामाणिकता पूर्ण संकल्प, इच्छा, विचार, आशा प्रमाणीकरण प्रक्रिया ।

प्रवृत्तियां :- (1) उपलब्धि एवं प्रयोजन सिद्धि हेतु प्रयुक्त बौद्धिक संवेग । (2) परावर्तन होने के पहले, जीवन में होने वाली, आशा, विचार, इच्छा, संकल्पों एवं प्रामाणिकता की स्थिति, व्यवहार के अर्थ में मानवीयता पूर्ण मानसिकता ।

प्रिय :- इंद्रियों के योग-संयोग वश स्वीकृत संकेत सापेक्ष प्रवृत्ति और मानसिकता होना पाया जाता है । इंद्रियों का कार्य-कलाप, जीवन अनुग्रह रूपी, जीवंतता पूर्वक संपादित होता है । सभी मनुष्य जीवन्त रहते ही इंन्द्रिय सन्निकर्षात्मक कार्य करते हैं । अर्थात इंद्रिय गोचर होने वाले, सभी क्रिया-कलापों को विषय नाम दिया गया है । ऐसा विषय, विषयापेक्षा सहित, शरीर को ही जीवन मान लेने की स्थिति में, जीवन की महिमा सहज कार्य-कलापों, प्रयोजनों को पाना संभव नहीं हो पाया । इसी कारण मनुष्य चाहता कुछ है, करता कुछ है और होता कुछ है ।

इंद्रिय जीवन्त रहने के फलस्वरूप ही सन्निकर्षात्मक क्रिया है (अर्थात इन्द्रियों का संयोग होने के उपरान्त, संयोग के अर्थ को

साक्षात्कार करने की क्रिया से है) । ऐसे सन्निकर्ष में आए, वस्तुओं के योग-संयोग से सुख-दुख भासते हुए देखा जाता है। जिसमें सुख भासता भी है, उसकी निरंतरता को सन्निकर्षात्मक विधि से पाना संभव नहीं हुआ, प्रमाणित नहीं हुआ । इसी सत्यतावश इंद्रियों के आधार पर, किया गया नाप-तौल और निर्णय, वांङ्गमय और कार्य-कलाप जो प्रस्तुत किया गया, वे सभी योजनाएं असामाजिक होना पाई गईं । इस प्रकार शरीर पर आधारित, जितनी भी अभिव्यक्तियां हुई, उनसे सार्वभौम व्यवस्था, समाज न्याय, अखंड समाज, सर्वतोमुखी समाधान सहज परम्परा को पाना संभव नहीं हुआ । इसलिए बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक समुदाय चेतना ने, साथ ही अंतर विरोध और परस्पर समुदायों के बीच युद्ध और युद्ध की तैयारियों ने, मानव को विवश कर रखा । जबकि सबसे प्रिय सुख, सुन्दर, समाधान, समृद्धि इनमें समरस्यता का कार्य-कलाप भी, मानव परम्परा के लिए व्यावहारिक प्रवृत्ति का आधार है, यह मानव सहज अस्तित्व में पाया जाता है ।

यह सुस्पष्ट है कि सुन्दर के साथ सुख, सुख के साथ समाधान, समाधान के साथ सुन्दरता की खोज अथवा परीक्षण-निरीक्षण-सर्वेक्षण क्रियाओं को मनुष्य ने संपादित किया है । मानव के अपनी संचेतना (अर्थात संवेदनशीलता, संज्ञानशीलता) पर विश्वास किया है । मनुष्य के लिए आहार, विहार, व्यवहार और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में ही व्यक्तित्वात्मक सौंदर्य मूल्यांकित, प्रमाणित होता है । यही मानव परम्परा में, से, के लिये अनुभव करना, नियति सहज प्रस्तुति है। **व्यक्तित्व की परिभाषा यही है** । व्यक्तित्व ही सौंदर्य का आधार हो पाता है, दूसरी कोई वस्तु नहीं हो पाती । इसी विधि से सौंदर्य का मूल्यांकन करना संभव है । क्योंकि व्यक्तित्व का मूल्यांकन होता है । यह सर्व विदित तथ्य है कि सौंदर्य के साथ सुख, ऐसे सुख के साथ समाधान समृद्धि; समाधान समृद्धि के साथ व्यक्तित्व, व्यक्तित्व के साथ नित्य सौंदर्य अनुभूति है । (अथवा परम्परा सहज सौंदर्य अनुभूति है)

प्रतिभा सहित व्यक्तित्व में स्वाभाविक रूप में सर्वतोमुखी

समाधान समाज न्याय, परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन में भागीदारी, स्वास्थ्य संयम में जागृति, मानवीय शिक्षा संस्कार सम्पन्न व्यक्ति ही व्यवहार में सामाजिक तथा व्यवसाय में स्वावलम्बी होता है । वह अपने आहार-विहार, व्यवहार में स्वास्थ्य संयम का प्रमाण, प्रस्तुत करता है । यही सम्पूर्ण सौंदर्य का आधार बनता है । ऐसे व्यक्तित्व रूपी, सौंदर्य अनुभूति के आधार पर ही, मानवीयता पूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति पूर्ण अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र और व्याख्या, स्वाभाविक रूप में सम्पन्न होती है । अस्तित्व सहज रूप में, नियति क्रम विधि से, अपने मानवत्व सहित, मानव व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के लिए प्रेरित है और प्रेरक है । यह प्रत्येक मनुष्य की जीवन-सहज प्यास है । इसे परीक्षण, निरीक्षण, सर्वेक्षण पूर्वक आकलित किया जा सकता है । यह सब जीवन और शरीर के संयुक्त अध्ययन का फलन है । इस प्रकार प्रिय लगने वाली प्रवृत्तियां, मानव सहित व्यवस्था के अर्थ में हैं। मान्यताओं और प्रवृत्तियों के आधार पर, सदा सदा के लिए सबसे प्रिय व्यक्तित्व, सुन्दर, सुख और समाधान के रूप में, सबको सुलभ हो सकता है । मानव मानसिकता का तथा विधि सहज मानसिकता का (अथवा नियति सहज मान्यता का) फलन, हर व्यक्ति के लिए समीचीन है ।

21. उल्लास - 22. हास

परिभाषा : उल्लास :- मुखरण । उत्थान की ओर पारदर्शक प्रस्तुति और गति ।

हास :- समाधान सहित प्रसन्नता व मुस्कान सहित मानवीय लक्ष्य व दिशा की ओर गति ।

उल्लास, हास क्रम से उत्सव और मुस्कान के अर्थ में प्रकाशित होता है । ये दोनों पूरक हैं । उत्सव, उत्थान की ओर अर्थात् मानव लक्ष्य व दिशा में गति से है यही हासोल्लास का सहज प्रमाण है । प्रमाण का प्रकाशन है । जबकि हास, हँसी और उत्सव का प्रकाशन है। दोनों का अपने आप सहज होना, स्पष्ट है । उत्सव, तभी मनुष्य में उमड़ता है, जब मनुष्य में जागृति व उसकी निरंतरता क्रम में

मानवीयता ''स्वत्व'' के रूप में प्रमाणित हो जाय। तब हंसी उसके अनुरूप में, मुस्कान के रूप में प्रमाणित होती है । इस प्रकार हास, हँसी के रूप में और उल्लास, मानवीयता में जागृति है । देव-मानवीयता, दिव्य मानवीयता का प्रकाशन सहज उल्लास अग्रिम जागृति और जागृति की निरंतरता के रूप में सार्थक होता है ।

मन, मान्यताओं के आधार पर कार्यशील रहता है । **मान्यताएं, शरीर व्यापार के साथ होना, ही भ्रम का कारण है** । यह शरीर का अधिमूल्यन है, जीवन का अवमूल्यन है । भ्रमित मानसिकता में की जाने वाली सभी क्रियाएं, सर्वथा अव्यवहारिक होती हैं । मनुष्य सभी आयामों, दिशा, कोण, परिप्रेक्ष्य में व्यक्त होता है । निर्भ्रम अवस्था, जागृत अवस्था में मनुष्य, जितनी भी विद्याओं में, कार्य-कलापों को सम्पन्न करेगा, वह सब न्यायिक, समाधानित, प्रामाणिकता सम्पन्न रहता ही है । निर्भ्रम आधार पर मानव, समाधान, न्याय, समृद्धि, तथा सह-अस्तित्व सम्पन्न होता है । उत्थान की ओर गतिशीलता के अर्थ में, उल्लास उत्सव के रूप में बना रहता है । उसके आधार पर मनुष्य का सम्पूर्ण लक्ष्य, सफल होता है । मानवीयता पूर्ण मनुष्य का लक्षण, न्यूनतम रूप में, परिवार में प्रमाणित होता है सम्पूर्ण समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रमाणित होता है क्योंकि परिवार ही मानव समाज और व्यवस्था का न्यूनतम ध्रुव है तथा समग्र व्यवस्था ही अधिकतम ध्रुव है। परिवार, समाज अखंड है और व्यवस्था सार्वभौम है । परिवार अखंड होने के आधार पर ही, विश्व परिवार के रूप में समाज और उसकी अखंडता प्रमाणित होती है ।

परिवार की अखंडता ही, विश्व परिवार की अखंडता का आधार है। परिवार में अन्तर्विरोध ही परिवार विघटन है । यह भ्रमवश व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के कारण होना पाया जाता है । परिणामतः अखण्ड समाज का कल्पना ही नहीं हो पाती है । सभी छोटा परिवार, सयुंक्त परिवार दोनों ही व्यक्तिवादवश के वाद-विवाद में रह गये हैं । भोग लिप्सा, व्यसन के लिये छोटे परिवार को अनुकूल माना गया है । परिवार खंडित होने के उपरान्त, परिवार नहीं रह पाता है । अकेले

एक मनुष्य के आधार पर, परिवार का प्रमाण नहीं हो पाता । इसी प्रकार विघटित मानव, समाज के रूप में नहीं होता । परिवार व समाज का विघटन, मानव कुल का अभिशाप है । इससे मुक्त होने के लिए, मानव की मानवता ही एक मात्र विधि है ।

मानव व्यवहार, कर्म, अभ्यास एवं अनुभव परम्परा में ही, मनुष्य के उत्साहित रहने से, हँसी खुशी के साथ, नित्य सफलता समीचीन रहती है । भ्रमवश ही विघटित परिवार और समाज, आवेशों अवमूल्यन को उत्साह मानता और साथ ही अवमूल्यन कार्यों को मानता है । यह भय व प्रलोभन का रूप है । भय-प्रलोभन मनुष्य का भ्रमवश लिया गया निर्णय है । यह मानव कुल के लिए अव्यवहारिकता का कारण हुआ । अन्य अव्यवहारिकताएं, द्रोह-विद्रोह, शोषण, युद्ध में देखने को मिलती हैं । यह मानव कुल में आवेश का साक्ष्य है । जबकि समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व सर्वमानव का स्वत्व एवं स्वभाव गति है । इसकी संभावनाएं, यथार्थता के आधार पर स्पष्ट होती हैं । इस प्रकार हास उल्लास का आधार मानवीयतापूर्ण व्यवहार, आचरण, व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी के अर्थ में उत्सवित है और मानव को हर मानव का जागृति सहित कर्तव्यों, दायित्वों के अर्थ में उत्सवित करना ही उल्लास व हास का वास्तविक अर्थ में प्रयोजन, सार्थकता, नित्य आवश्यकता है ।

23. शील - 24. संकोच

परिभाषा - शील :- जागृति सहज वैभव को शिष्टता के रूप में सभी आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्य में प्रमाणिकता को इंगित कर लेना और कराने की क्रिया का नाम शील है । शिष्टता पूर्ण लक्षण। शिष्टता अर्थात पूर्ण जागृत मानव के द्वारा जागृति के अर्थ में किया गया अभिव्यक्ति संप्रेषणा व प्रकाशन ।

संकोच :- अस्वीकृति को शिष्टता से, प्रस्तुत करना ।

मानव में आदि काल से ही परस्पर शिष्टता की अपेक्षा बनी ही रही। इसकी अभिव्यक्ति में, संप्रेषणा में, उत्पादन में, व्यवहार में,

प्रकाशन में, व्यवस्था में अच्छे होने की अपेक्षा रही, जो सफल न हो पाया । युद्ध में, द्यूत (जुआ-खेलने) में, कला-कविता में और इसी के साथ व्यापार में भी मानव, शिष्टता की अपेक्षा करते आया। मूलतः आशित इन मुद्दों पर शिष्टता का अच्छा लगने के रूप में अपेक्षाएं रही, जो ध्रुवीकरण न होने से, शिष्टता का लक्षण भी, अनिश्चयता के चंगुल में आया, अतः व्यक्ति केन्द्रित रूप में शिष्टता की बात टिक गई । जिससे जैसा बना, वह उसकी शिष्टता बनती गई। इस प्रकार राष्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक शिष्टताएं, शिक्षा सुलभ, व्यवहार सुलभ, व्यवस्था सुलभ नहीं हो पाईं ।

मानव संचेतना सहज विधि से किए गये सम्पूर्ण अध्ययन के फलस्वरूप, शिष्टता का स्वरूप नाम और कार्य के रूप में - सूची रूप में प्रस्तुत है :-

	नाम	**कार्य**
(1)	सौम्यता	स्वेच्छा से, स्वयं स्फूर्त विधि से, स्वयं की नियंत्रण क्रिया ।
(2)	सरलता	ग्रंथि व तनाव रहित अंगहार, क्रियाकलाप ।
(3)	पूज्यता	गुणात्मक विकास, जागृति सहज स्वीकृति सहित किए गए क्रियाकलाप ।
(4)	अनन्यता (एकात्मता)	मनुष्य की परस्परता में, पूरक क्रियाकलाप । प्रामाणिकता व समाधान में निरंतरता । अविकसित के विकास में सहायक क्रिया ।
(5)	सौजन्यता	सहकारिता, सहयोगिता, सहभागिता सहज क्रिया-कलाप ।
(6)	सहजता	(1) स्पष्टता एवं प्रामाणिकता पूर्ण क्रियाकलाप । (2) आंडबर तथा रहस्यता से मुक्त व्यवहार, रीति, विचार एवं अनुभव की एक सूत्रता क्रिया ।

(7) उदारता (1) स्व प्रसन्नता पूर्वक कार्य ।

(2) दूसरों के उत्थान के लिए आवश्यकतानुसार तन, मन, धन रूपी अर्थ का अर्पण, समर्पण क्रिया ।

(8) अरहस्यता जिस प्रकार से स्वीकृत है, उस अवधारणा, स्मृति अथवा श्रुति को यथावत प्रस्तुत करने का क्रियाकलाप।

(9) निष्ठा लक्ष्य को स्मरण पूर्वक प्राप्त करने का निरंतर प्रयास।

उपरोक्त चित्रित शिष्टता के स्वरूप में, मानव स्वयं परीक्षण कर सकता है । हम जितना भी किए हैं, सब में यही उत्तर निकलता है । ये क्रियाएं सभी व्यक्ति कर सकते हैं और मैं भी करता ही हूं । इन शिष्टता पूर्ण क्रियाओं को करते समय, जो लक्षण एक दूसरे को दिखाई पड़ते हैं, वह सब शिष्टता के अर्थ में ही, स्वीकार होता है । ये सब नाम दिए गए हैं । ये सब लक्षणों सहित नाम हैं । शिष्टता का ध्रुवीकरण, मूल्यों के आधार पर ही होता है । मूल्यों को अनुभव सहित जीने वाला, प्रत्येक मनुष्य शिष्टता पूर्ण विधि से प्रस्तुत करता है। फलस्वरूप मूल्यों का प्रमाणीकरण मूल्यांकन हो जाता है ।

मूल्य-मूल्यांकन, सम्बंधों के साथ मूल्यों की अनुभूतिपूर्वक ही, मूल्यांकन होना पाया जाता है । इसी शिष्टतापूर्ण पद्धति से अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, लोकव्यापीकरण होना सहज है । मानव परम्परा में इसकी नित्य संभावना, समीचीन है । इसीलिए सम्बंधों के आधार पर मूल्य और मूल्यांकन क्रिया-कलाप, मनुष्य सहज क्रिया है, क्योंकि मानव में, से, के लिए इसकी आवश्यकता बनी हुई है । इन्हीं आधारों पर प्रकारान्तर से, इसकी तलाश भी रही है । मानव परम्परा में इस सम्पदा का ''स्वत्व'' सहज रूप में, अधिकार न होने और स्वतंत्रता के रूप में प्रमाणित न होने के फलस्वरूप, सुदूर विगत से अब तक मानव का ही ''स्वत्व'', मानव में ही ''स्वत्व'', मानव से ही ''स्तत्व'' को जानने-मानने, पहचानने-निर्वाह करने से, मानव

वंचित रहते आया ।

मानव के ''स्वत्व'', स्वतंत्रता एवं अधिकार के लिए मानव ही प्रमाणों का आधार है । प्रत्येक मनुष्य स्वयं को प्रमाणित करना भी चाहता है। मानव को प्राप्त शिक्षा-संस्कारों में प्रत्येक मनुष्य को प्रमाणित करने की अथवा प्रमाणित होने की, स्व-प्रमाणों पर विश्वास होने की अथवा कराने का स्पष्ट बिंदु, स्पष्ट विश्लेषण, स्पष्ट प्रकिया पूर्वक, स्पष्ट प्रयोजनों के साथ मनुष्य के अधिकारों को जोड़ा नहीं गया (अथवा जोड़ना संभव नहीं हुआ था) । जबकि प्रत्येक मनुष्य में जीवन समान है । जीवन शक्तियां समान है, जीवन बल समान है, जीवन लक्ष्य समान हैं, समाज-लक्ष्य समान हैं, व्यवस्था लक्ष्य समान है, (जीवन सहज समानता के आधार पर) जीवन सहज शक्ति, बल, लक्ष्य संभावनाओं की समानता के आधार पर ही, संबद्ध रहना पाया जाता है। जीवन लक्ष्य जागृति है ।

इस कारण जागृति सहज मनुष्य में जानने मानने, पहचानने-निर्वाह करने की पूर्णता है और समाज तथा व्यवस्था लक्ष्य में, समानता सहज आवश्यकताएं, स्वयं स्फूर्त होना पाई जाती हैं। इस क्रम में मानव को अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था का साक्षात्कार करना और इसे साकार करना सहज है । इसी विधि से, मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान प्रस्तुत है ।

मूल्यों का प्रमाण, जानने का प्रमाण, मानने का प्रमाण, पहचानने का प्रमाण, निर्वाह करने का प्रमाण, नियम का प्रमाण, न्याय का प्रमाण, सत्य सहज प्रमाण, अस्तित्व सहज प्रमाण, सह-अस्तित्व सहज प्रमाण, जीवन कार्य सहज प्रमाण, व्यवस्था सहज कार्यों का प्रमाण, विकास सहज प्रमाण, संक्रमण सहज प्रमाण, रचना सहज प्रमाण, विरचना सहज प्रमाणों को, मानव ही प्रस्तुत करता है। इसमें से आंशिक प्रक्रियाओं को किसी भी यंत्र अथवा जीवों को सिखाकर, मानव ने स्वयं को धन्य मान लिया । उल्लेखनीय बात यही है कि स्वयं को प्रमाण का आधार होने का गौरव स्वीकारना, इसको प्रमाणित करना प्रतीक्षित रहा है । इसके लिए जीवन-विधा

शिक्षा का मानवीकरण सम्पन्नता के अनंतर, मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान, व्यवहारवादी समाजशास्त्र (मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान) और आवर्तनशील अर्थव्यवस्था को, हृदयंगम करने के क्रम में, मानव में स्वयं के प्रति विश्वास करना, फलतः श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करना संभव हो जाता है। इस विधि से मानव, अपने में संतुष्टि संपन्न होता है । सर्वतोमुखी समाधान, स्वानुशासन, समाज न्याय, व्यवसाय में स्वावलम्बन प्रमाणित होता है । यही स्वयं में संतुष्ट होने का प्रमाण है । व्यवहार प्रमाण में ही, लक्षण और वस्तुएं (अथवा लक्षणों सहित वस्तुएं) प्रमाणित होती हैं । इस प्रकार अस्तित्व में सम्पूर्ण स्थिति, गति, कार्य और प्रयोजन को मानव परम्परा में प्रमाणित होना आवश्यक है । नियति सहज रूप में नित्य सहज और समीचीन है ।

मानवीयता पूर्ण परम्परा में जब कभी भी, अस्वीकृतियां व्यक्त करने की स्थितियां बनती हैं, जैसे - रोग एक अस्वीकृति है, इसे शिष्टता-पूर्ण पद्धति से जब व्यक्त किया जाता है, तब उसके निराकरण के उपायों की गुरुता संप्रेषित हो जाती है । इस प्रकार से संकोच, जागृति परम्परा में, उपयोगी सिद्ध होता है । जिसका प्रयोजन विरोध का विजय होने में सार्थक होता है ।

दूसरी विधि से यह भी सोचा जाता है कि, मानवीयता-पूर्ण पद्धति में, जीने की कला के रूप में, यात्रा करना, सोना, खाना, पहनना-ओढ़ना, यह सब मानव करेगा ही करेगा । ऐसा किया जाने वाले, क्रिया कलापों में, कभी कभी अस्वीकृतियों को व्यक्त करने की स्थिति उत्पन्न होना संभव है - जैसा खाना खाना ही है, और खाने की इच्छा समाप्त होने के बाद, खाने की प्रक्रिया में, अथवा उसकी निरंतरता में अस्वीकृति होना सहज है ।

ऐसी स्थितियों में, ऐसी अस्वीकृतियों को, शिष्टता से प्रस्तुत करना अस्वीकृति से इंगित अर्थ और उसकी औचित्यता, सामने व्यक्ति को इंगित हो जाती है । इस प्रकार कई जगहों में उठने, बैठने, चलने, पानी पीने, व्यवसाय कार्य करते समय, व्यवहार करते समय,

सेवा करते समय, किसी स्थिति के अनंतर, उस उस समय में किए जाने वाले, क्रिया-कलापों की अस्वीकृति सामयिक रूप में होना सहज है । उसकी औचित्यता अन्य को बोध होना ही, उस औचित्यता का मूल्यांकन सहज आधार है । इस प्रकार शील और संकोच का व्यावहारिक प्रयोजन स्पष्ट है ।

25. गुरू - 26. प्रामाणिक

परिभाषा : गुरू :- शिक्षा संस्कार नियति क्रमानुवषंगीय विधि से, जिज्ञासाओं और प्रश्नों को समाधान रूप में, अवधारणा में प्रस्थापित करने वाला मनुष्य गुरू है । जागृति क्रम में मानव को अप्राप्त का प्राप्त, अज्ञात का ज्ञात करने के लिए, होने के लिए विधि, नियम, प्रक्रिया सहज समझदारी में पारंगत बनाना ही प्रमाणिकता का प्रमाण है । प्रमाणिकता पूर्ण गुरूजन ही अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व रूप में अवधारणा को प्रतिस्थापित करा सकता है । अवधारणायें अस्तित्व, विकासक्रम, विकास, जीवन, जीवनी क्रम, जीवन जागृतिक्रम, जीवन जागृति सहज रूप में, परस्परता में, अर्थात समझा हुआ और समझने के लिये तथा मनुष्यों से है । गुरूजन इन मुद्दों में पारंगत रहेंगे, यह समझदारी है, समझदारी के आधार पर ही मानवीय शिक्षा-संस्कार संपन्न होता रहेगा, संस्कार का तात्पर्य ही अवधारणा है । विद्यार्थियों में स्थापित होने से उसकी निरंतरता का प्रमाण व्यवहार व्यवस्था में प्रमाणित होने से है । फलस्वरूप ही अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी सहज कार्य-कलाप हर मानवीय शिक्षा-संस्कार सम्पन्न मानव से चरितार्थ होना पाया जाता है ।

प्रामाणिक :- प्रमाणों का धारक वाहक - यथा अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण समुच्चय को प्रयोग, व्यवहार, अनुभव पूर्ण विधि से, प्रमाणित करना और प्रमाणों के रूप में जीना ।

प्रामाणिकता मानव में जागृति सहज अभिव्यक्ति है । जीवन-जागृति पूर्वक मनुष्य प्रामाणिक होता है । प्रामाणिकता प्रत्येक मनुष्य

की परम आवश्यकता है । इसलिए गुरू, प्रामाणिकता के रूप में सुस्पष्ट है। शिक्षा संस्कार के केन्द्र में जो व्यक्ति विराजमान होते हैं, उनका प्रामाणिक होना, व्यवहारिक रूप में वांछनीय है । इस प्रकार गुरू, आचार्य, प्रवक्ताओं की प्रामाणिकता ही, मानव परम्परा का त्राण और प्राण है ।

प्रामाणिकता का, प्रमाणों के रूप में व्यक्त होना मानव सहज है। सम्पूर्ण प्रमाण अनुभव मूलक व अनुभवगामी प्रणाली से स्पष्ट होते हैं । प्रमाणों की अभिव्यक्ति अनुभवमूलक ही होती है क्योंकि सम्पूर्ण प्रमाण प्रयोग, व्यवहार और अनुभव ही हैं । व्यवहार और प्रयोग में जो प्रमाणित होना है वह भी, अनुभव साक्ष्य के आधार पर स्पष्ट होता है। यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता प्रमाणित होती है। न होना, प्रमाण भी नहीं होता, सम्पूर्ण प्रमाण, प्रयोजनों के रूप में होना सहज है ।

मनुष्य भी अस्तित्व में अविभाज्य है और द्रष्टा पद प्रतिष्ठा सम्पन्न है। यही अनुभव क्षमता का प्रमाण है । अनुभव क्षमता ही, दृष्टा पद में प्रकाशित है । दृष्टापद, विकास व जागृति की महिमा है। जागृति प्रत्येक मनुष्य का अभीष्ट है क्योंकि जागृति पूर्वक ही मनुष्य का निर्भ्रम और सफल होना अस्तित्व सहज है । जागृति ही अनुभव प्रकाश है । मनुष्य जीवन और शरीर के, संयुक्त रूप में प्रकाशित है । जागृति क्रम में मनुष्य, अग्रिम जागृति का प्रयास करते आया है । अभी भी प्रामाणिकता पूर्ण पद्धति, प्रणाली, नीति पूर्वक जीने की कला का समृद्ध होना समीचीन है । मानव परम्परा उनकी धारक-वाहक है, हर मानव संतान को इसकी अवश्यकता है । यह परम्परा है।

अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना की यथार्थता, वास्तविकता, सत्यता के फलस्वरूप अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था सर्वसुलभ होती है । अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था ही मानव कुल का प्रमाण और प्रामाणिकता का प्रयोजन है तथा उसकी निरंतरता हो, यह इसलिए अनिवार्य है कि

धरती में दूरी का बोझ हल्का हो गया है । यह विज्ञान की कार्य महिमा है । सार्वभौम व्यवस्था को पहचानने के क्रम में, मानव स्वयं ही अखंड समाज, समाधान, समृद्धि, अभय तथा सह-अस्तित्व के रूप में प्रमाणित होता है ।

सार्वभौम व्यवस्था में मानव में न्याय, विनिमय, उत्पादन, स्वास्थ्य-संयम और मानवीय शिक्षा-संस्कार सुलभ होता है । तभी सुखद, सुन्दर, समाधान पूर्ण समृद्ध मानव परम्परा वैभवित होगी । अतएव ऐसी सर्व वांछित घटनाओं को साकार एवं सर्वसुलभ करने के लिए प्रामाणिक परम्परा ही एक मात्र शरण है । प्रामाणिकता पूर्वक ही शिक्षा-संस्कार, संविधान व स्वराज्य व्यवस्थाएं सफल हो पाती हैं। इसीलिए प्रामाणिक परम्परा को पाने के लिए आचार्य, शिक्षक, गुरू, व्यवस्थापक, संविधान एवं शिक्षा की वस्तु का प्रामाणिक होना अनिवार्य है । इसे पाने के लिए अस्तित्व सहज जीवन-विद्या, वस्तु-विद्या का संतुलित अध्ययन, प्रतिभा व व्यक्तित्व के संतुलित उदय का अध्ययन व व्यवहार में सामाजिक तथा व्यवसाय में स्वावलम्बन के संतुलित क्रियान्वयन का अध्ययन, प्रामाणिक परम्परा के लिए आवश्यक है । इस प्रकार गुरू का स्वरूप, प्रामाणिकता का स्वरूप, लोक मानसिकता में स्वीकृत होना पाया जाता है ।

27. शिष्य - 28. जिज्ञासु

परिभाषा : **शिष्य :-** जागृति लक्ष्य की पूर्ति के लिए शिक्षा संस्कार ग्रहण करने, स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत व्यक्ति, जिसमें गुरू का सम्बन्ध स्वीकृत हो चुका रहता है । यही जिज्ञासात्मक शिष्टता है।

जिज्ञासु :- जीवन ज्ञान सहित निर्भ्रम शिक्षा ग्रहण करने के लिए तीव्र इच्छा का प्रकाशन ।

समझने, सीखने, करने के लिए पूर्ण जिज्ञासा सहित प्रयत्न संपन्न व्यक्ति, शिष्य के रूप में शोभनीय होता है । सफल होने के सभी लक्षणों से युक्त वातावरण में विश्वास होना और विश्वास को

वातावरण में प्रभावित करने, प्रमाणित करने की सभी प्रक्रिया अध्ययन है ।

अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना, सम्पूर्ण मानव के लिए समझने-समझाने की वस्तु है। सीखने की जो कुछ भी प्रमाणित वस्तु है, यह मानव में मानवीयतापूर्ण आचरण, कर्म अर्थात व्यवसाय में स्वावलम्बन, व्यवस्था में भागीदारी, मानवीयता पूर्ण आचरण का अभ्यास, प्रामाणिकता सहज अभिव्यक्ति है। साथ ही सार्वभौम व्यवस्था और अखंड समाज में निष्ठा है । ये सम्पूर्ण जिज्ञासाएं व्यावहारिक रूप में चरितार्थ होती हैं। प्रौढ़ता की पराकाष्ठा में, से, के लिए स्वानुशासन की जिज्ञासा का होना पाया जाता है । जिज्ञासा मानव सहज प्रकाशन है ।

जिज्ञासा में ही न्यायिक अपेक्षाएं संयत, नियंत्रित होती हैं। मानव मूलतः सहज रूप में सही कार्य व्यवहार करने का इच्छुक है, न्याय सहज अपेक्षा और सत्य वक्ता है । इस आधार पर - जिज्ञासाएं उद्‌गमित होते ही रहती हैं। जब तक प्रमाणिकता का स्रोत, मानव परम्परा में स्थापित न हो जाए, तब तक इसी जिज्ञासा की पुष्टि में, कल्पनाशीलता- कर्म स्वतंत्रता पुनर्प्रयास के साथ क्रियान्वित रहते ही हैं । इसे प्रत्येक मनुष्य में देखा जा सकता है । सम्पूर्ण जिज्ञासाएं अज्ञात को ज्ञात करने, अप्राप्त को प्राप्त करने के क्रम में हैं। कर्मस्वतंत्रता और कल्पनाशीलता, जीवन तृप्ति के पक्ष में, प्रमाण और स्रोतों को अन्वेषण करने की प्रक्रिया है । यह सदा ही जीवन सहज अभीप्सा है । **अभीप्सा** का तात्पर्य - अभ्युदय के लिए कल्पना और इच्छाओं को बनाए रखने की क्रिया है ।

जीवन तृप्ति का तात्पर्य - स्वराज्य और स्वतंत्रता में प्रमाणित होना है। इसे पाने के पहले, इस संदर्भ में सम्पूर्ण अध्ययन संपन्न होने में शिक्षा-संस्कार की प्रमुख भूमिका है । यह अध्ययन भी, जिसका एक अनिवार्य भाग है । मानव परम्परा के जागृत होने के उपरान्त ही इसके, सबको सुलभ होने की संभावना समीचीन है ।

परम्परा जागृत होने का तात्पर्य है - मानवीय शिक्षा संस्कार,

मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान, परिवार मूलक स्वराज्य रूपी अखंड समाज व्यवस्था और स्वास्थ्य-संयम सम्बन्ध में पूर्णतया प्रामाणिकता को, व्यवहार में प्रमाणित करना । यही जागृति की सफलता का स्वरूप है । इसीलिए समझदारी सहज शिक्षा की आवश्यकता है । जागृति परम्परा की आवश्यकता इस दशक में बढ़ रही है, जो मानवतावादी दृष्टिकोण को विकसित करने के स्वरों के रूप में, सुनने को मिलता है । यह सभी राजनैतिक दलों, संस्थाओं और सभी समाज-सेवी संस्थाओं के लोक शिक्षण में, धर्म नैतिक संस्थाओं इतना ही नहीं व्यापार केन्द्र संस्थाओं की, उदारता पूर्ण विधि को व्यक्त करते हुए (अथवा उदारतावादी विचारों को व्यक्त करते हुए) संवादों के रूप में सुनने को मिला है ।

कम से कम, इस दशक में मानवतावादी दृष्टिकोण की आवश्यकता पर बल देने वाली गोष्ठियां सभी स्तरों पर पाई जाती हैं। इसलिए मानव परम्परा जागृत होने की संभावना समीचीन होती है। जागृति के आधार पर मानव संचेतना सहज वर्तमान में सभी समुदाय चेतनाएं विलय होने की घटना की संभावना समीचीन हो चुकी है । क्योंकि आदर्शवाद और भौतिकवाद सदूर विगत से अभी तक जो कुछ भी समुदायों और वर्गों का संघर्ष मतभेद और शक्ति प्रयोग (संघर्ष और सामरिक विधि से) करता हुआ मानव तंत्र के परिणाम स्वरूप आज की स्थिति में प्रदूषण, बढ़ती हुई जनसंख्या, धरती का तापमान, बढ़ती हुई समुद्र की सतह, ये सब प्रधान संकट हैं ।

इन संकटों के साये में जीने का रास्ता केवल संघर्ष और युद्ध ही है । इसी मोड़ पर धरती पर जीते-जागते 600 करोड़ से अधिक मानवों को जीने के लिए मजबूर कर दिया है । यह केवल उक्त दो प्रकार की विचार प्रर्वतन योजना कार्य का ही परिणाम है । आदर्शवादी धरती के साथ कम से कम अपराध करते रहे हैं । भले ही मानव के साथ परस्पर परिवार, समुदाय, वर्ग के रूप में संघर्षरत रहे हैं । इसी संघर्ष के साथ जुड़े भौतिकवादी आविष्कारों के सहारे धरती के साथ अपराध करना राज्य स्तर पर स्वीकृत हो चुका है अर्थात हर राज्य

ऐसे अपराध करना स्वीकार कर चुका है ।

पर्यावरण समस्या का मूल तत्व खनिज तेल व कोयला ही है। इसके विकल्प के रूप में सूर्यउष्मा, प्रवाह बल की उपयोगिता विधि व उसके लोकव्यापीकरण की आवश्यकता है । इसी से जल, थल व वायु प्रदूषण निवारण होना सुस्पष्ट है । बढ़ती हुई जनसंख्या का कारण केवल असुरक्षा, वह भी मानव में निहित अमानवीयता का भय ही है । प्राकृतिक भय के रूप में भूकम्प, बाढ़, ये सब आता ही है । इसी के साथ बीमारी भी भय का स्रोत है । जहां तक रोग की बात है औषधि, उपचार, उपाय के सहारे निराकरण कर लेना सहज है ।

भूकम्प और बाढ़ जनित भय का निराकरण बाढ़ की सीमायें व भूकम्प की निश्चित दिशा में मानव को पहचानने में आता है, उसी के आधार पर इसका निराकरण होता है । जब से धरती के साथ अपराध अर्थात धरती के भीतर की चीजों का अपहरण करने के लिए या शोषण करने के लिए प्रयत्न किया है, तब से धरती की भूकम्प सम्बन्धी दिशायें विचलित हुई हैं । यह भी मानव को पता है। धरती के साथ अपराध बन्द करने पर धरती अपनी निश्चित विधि से ही अपने सौभाग्य को बनाये रखने में सक्षम है । अतएव धरती के साथ अपराध करने की स्वीकृतियों में परिवर्तन करने की आवश्यकता, इसके लिए भरपूर समझदारी की आवश्यकता है।

नासमझीवश ही मानव अपराध करता पाया जाता है । **अतएव भयमुक्ति के उपरान्त ही मानव परम्परा में स्वयं स्फुर्त जनसंख्या नियन्त्रण होने की व्यवस्था है । ''ऐसी व्यवस्था ही परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था है** । इस व्यवस्था के अनुसार परम्परा बनने की स्थिति में हर गांव व नगर कितने जनसंख्या के आवास योग्य हैं, इसका निर्धारण होता है । इसी विधि से जनसंख्या नियन्त्रण होना समीचीन है।

धरती का तापक्रम बढ़ना परिणामतः समुद्र में जलस्तर बढ़ना। अतः यह सुस्पष्ट है कि धरती में निहित खनिज, तेल एवं कोयला ही

ताप पचाने के द्रव्य हैं । अतएव इन द्रव्यों का शोषण न किया जाए, तभी संतुलन की स्थिति आना संभव है । चक्रवात व तूफान भी अपने निश्चित दिशा व स्थान में आना पाया जाता है । इससे बचकर मानव सुखपूर्वक पीढ़ी-दर-पीढ़ी धरती पर बने रह सकता है। अतएव शिक्षा की परिपूर्णता मानव परम्परा में प्रमुख मुद्दा है ।

जन्म से मानव संतान अनुकरण-अनुसरण करती हुई देखने को मिलती है । यही आज्ञापालन और सहयोग कार्यों में प्रमाणित होने का सूत्र है । परम्परा, जागृति और प्रामाणिकता का, सहज धारक-वाहक होने के आधार पर ही, परम्परा से अग्रिम पीढ़ी को, प्रामाणिकता पूर्ण शिक्षा-संस्कार सुलभ होता है । ऐसी सिथित पाने के लिए जागृति विधि से, शिक्षा-संस्कार को स्थापित करना, सर्वप्रथम आवश्यकता है । फलस्वरूप मानव संतानों में सहज ही जिज्ञासा उद्गमित होना समीचीन है ।

मानव परम्परा में प्रामाणिकता ही प्रधान वैभव है । जागृति ही इसका मूल स्रोत है । इसका धारक-वाहक केवल मानव है । सम्पूर्ण प्रमाणों की अभिव्यक्ति तथा संप्रेषणा का आधार भी केवल मानव है । मानव संतानों में प्रयासोदय, शैशव अवस्था में ही देखने को मिलता है। उसी के साथ-साथ आज्ञापालन और सहयोग प्रवृत्ति प्रकारान्तर से सभी मानव संतानों में देखने को मिलती है । इसी के साथ अनुकरण कार्यों में प्रमाणित करने का (अथवा अनुकरित कार्यों को प्रमाणित करने का) सिलसिला दिखाई पड़ता है ।

प्रत्येक संतान में पांचों ज्ञानेन्द्रिय सहज कार्य-कलापों को व्यक्त करने की स्वाभाविक क्रियाएं देखने को मिलती हैं । यह शरीर यात्रा के आरंभ से ही होना स्पष्ट है। प्रत्येक शिशु में स्वस्थता की पहचान, परम्परा से ही पांचों ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों के क्रिया-कलाप से ही है । इस प्रकार ज्ञानेन्द्रिय पूर्वक, कर्मेन्द्रियों सहित शिक्षा ग्रहण करना भी देखा जा रहा है । इस प्रकार मानव संतानों में, कोई ऐसी अड़चन नहीं है कि जिसे परम्परा प्रावधानित करना चाहती है उसे वह ग्रहण न करे। इससे यह पता लगता है कि शिशु काल की

अपेक्षा के अनुरूप प्रौढ़ पीढ़ी में समाधान एवं तृप्ति प्रदान करने योग्य वस्तु ही नहीं है ।

शैशविक (शिशु) मानसिकता के आधार पर हर शिशु **न्याय का याचक** (अभिभावकों के भरोसे पर), सही **कार्य-व्यवहार** करने का इच्छुक (अनुसरण और अनुकरण के आधार पर), और **सत्य वक्ता** होता है (सुने देखे के आधार पर), इसी से मानव संतान को क्या चाहिए पीछे पीढ़ी से यह स्पष्ट हो जाता है कि :-

(1) न्याय प्रदायी क्षमता योग्यता को स्थापित करने की विधि से, न्यायापेक्षा की तृप्ति होना पाया जाता है ।

(2) सही कार्य-व्यवहार को करने की इच्छा की तृप्ति, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बन की क्षमता, योग्यता, पात्रता को स्थापित करने के आधार पर संपन्न होता है ।

(3) सत्यवक्ता होने की तृप्ति, अस्तित्व सह-अस्तित्व रूपी सत्य बोध से होती है । अस्तित्व दर्शन से सत्य बोध, जीवन-ज्ञान से व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बन तथा मानवीयता पूर्ण आचरण में पारंगत होने से, न्याय प्रदायी क्षमता प्रमाणित होती है ।

29. भाई-मित्र - 30. प्रगति

परिभाषा : प्रगति :- 1. मानवत्व रूपी आचरण सहज व्यवस्था व समग्र व्यवस्था अर्थात् परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में भागीदारी। 2. समाधान प्रधान समृद्धि सहज अपेक्षा प्रक्रिया और प्रमाण।

भाई :- एकोदर (एक उदर = पेट से पैदा होने वाले) को भाई का संबोधन है ।

मित्र :- सहोदरवत् (सगे भाई जैसा) जो होते हैं, उन्हें भाई व मित्र सम्बंध का सम्बोधन है ।

भाई व मित्र सम्बन्ध में, शुभकामनाएं स्वयं स्फूर्त होना सहज

है । जब मानवीयता पूर्ण परंपराएं हों तब संविधान, स्वराज्य व्यवस्था का आविभाज्य वर्तमान है । मानवीयता, मानव का स्वत्व होने के कारण, सहज अभिव्यक्ति होती है । भाई और मित्र के रूप में एक दूसरे का शुभ चाहते ही हैं ।

मानव, जीवन सहज रूप में, पहचान में आने वाले मित्र व भाई का सम्बन्ध व इसकी पहचान समाधान, समृद्धि के अर्थ में स्पष्ट होता है। सभी पहचान उद्देश्य सहित होना पाया जाता है । अथवा सभी पहचान किसी उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता के अर्थ में सार्थक होता है । फलतः वही स्वयं लक्ष्य होते हैं । परस्पर प्रयोजन सदुपयोग व उपयोगिता में नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, समाधान, प्रामाणिकता और समृद्धि के अर्थ में नित्य सार्थक हैं ।

मनुष्य की परस्परता में नियंत्रण सहित नियमों का पालन किया जाता है । मनुष्य स्वभाव गति रूप में नियंत्रित रहता है । मनुष्य की स्वभाव गति मनुष्यता ही नियंत्रण है । यह नियंत्रण व नियम के रूप में प्रमाणित होता है । सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह करने ।

(1) जागृत मानव स्वयं व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी में प्रवर्तन रूपी शुभ के अर्थ में कार्यरत रहता है ।

(2) परस्परता में उपयोगिता, सदुपयोगिता, प्रयोजनीयता के प्रति वर्तमान में विश्वास होता है ।

(3) जीवन जागृतिकारी जीवन विद्या से सम्पन्नता । तन-मन-धन का सदुपयोग, सुरक्षा रूपी उदारता वर्तमान में प्रमाणित होता है । यथार्थताओं की पहचान व निर्वाह करने के रूप में (धीरतारूपी) मूल्य व मूल्यांकन होता है ।

(4) पूरकता विधि पूर्ण, आचरण कार्य सहित धीरता, वीरता, उदारता रूपी वास्तविकता पर आधारित व्यवहार होता है । सह-अस्तित्व सहज नियति रूपी नियम, नियंत्रण, संतुलन व

न्याय पालन से सत्यता सहज मानवीयता पूर्ण आचरण व्यवहार व्यवस्था में प्रमाणित होता है । इसी विधि से स्वतंत्रता, स्वराज्य मानव कुल में प्रमाणित होता है । पीढ़ी से पीढ़ी के लिए यही नित्य स्रोत होना पाया जाता है । उक्त विधि से पाये जाने वाली समझदारी सहित भाई-मित्र सम्बंधों की समझदारी सहित सार्वभौम व्यवस्था में जीने के लिये तत्पर किये जाना समीचीन है । साथ ही स्वयं की उपयोगिता सद्-उपयोगिता व प्रयोजनों का पहचान, मूल्यांकन और निर्वाह रूपी पूरकताएं, दयापूर्ण कार्य-व्यवहार से प्रमाणित होना सहज है ।

	मानवीयता पूर्ण प्रवर्तन कार्य	**अमानवीयता पूर्ण प्रवर्तन कार्य**
(1)	शुभकामना सन्तुलन प्रवृत्ति व कार्य	कामावेश भोग प्रवृत्ति व क्रिया
(2)	स्नेह विश्वास सह-अस्तित्व प्रवृत्ति व कार्य	क्रोधावेश हिंसक प्रवृत्ति व क्रिया
(3)	उदारता दायित्व कर्तव्य में अर्पण-समर्पण	लोभावेश संग्रह प्रवृत्ति व क्रिया
(4)	मूल्य व मूल्यांकन कर्तव्य दायित्व का निर्वाह	मोहावेश अव्याप्ति दोष, प्रवृत्ति व कार्य
(5)	नियम पालन बौद्धिक, सामाजिक, प्राकृतिक प्रक्रिया व कार्य	मदावेश स्वयं के प्रति अधिमूल्यन
(6)	पूरकता व दयापूर्ण कार्य व्यवहार, विन्यास, जागृति पूर्वक तन, मन, धन का नियोजन सभी सम्बन्धों में ।	मात्सर्य आवेश अवमूल्यन प्रवृत्ति व कार्य

उपरोक्त वर्णित चित्रण से, मानवीयता पूर्ण पद्धति से भाई व मित्र सम्बन्ध सफल और अमानवीयता पूर्वक असफल होना स्पष्ट है । मानवीयता के प्रकाशन में, सभी सम्बन्ध सहज रूप में दिखाई देते हैं। उसके निर्वाह करने का मार्ग प्रशस्त होता है ।

31. बहन - 32. (उन्नति के अर्थ में) सम्बंध व संबोधन

सम्बंध = पूर्णता के अर्थ में अनुबन्ध ।

पूर्णता = आचरण व्यवहार व्यवस्था में भागीदारी में नियम, नियंत्रण संतुलन, न्यायपूर्वक समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व का प्रमाण व परस्परता में मूल्यांकन, उभय तृप्ति सहज सुलभ होना ही मानव सहज सभी सम्बंधों में आवश्यकता है ।

अनुबंध = सार्थकता का अनुभव मूलक, बोध संपन्न, संकल्प सहज निष्ठा ।

निष्ठा = अनुबंध संकल्प की निरंतरता ।

अनुभव = अनुक्रम अर्थात नियतिक्रम में प्रमाणित होना ।

प्रमाण =

परिभाषा : उन्नति :- 1. समृद्धि प्रधान समाधान सहज अपेक्षा, प्रक्रिया एवं प्रमाण। 2. जागृति और उसकी निरंतरता की ओर गति ।

बहन :- एकोदरीय (एक पेट से पैदा होने वाली) अथवा एकोदरवत् बहनें होती हैं । यह सम्बन्ध निरंतर, विकास के लिए प्रेरक है । मानव के संबंध में उन्नति शब्द का तात्पर्य जागृति और उसकी निरंतरता से है । यही परस्परता में, से, के लिए प्रेरक होना पाया जाता है । प्रत्येक बहिन का, भाइयों से सभी ओर श्रेष्ठता की अपेक्षा बनी रहती है । मनुष्य सहज रूप में बल, बुद्धि, रूप, पद, धन, सम्पदा के रूप में विदित है । इनमें श्रेष्ठता की कामना, सभी सम्बन्धों की परस्परता में, प्रत्याशा के रूप में, देखी जाती है। साथ ही सच्चरित्रता, व्यवहार में सामाजिक, सच्चरित्र मानवीयता पूर्ण

आचरण, व्यवसाय में स्वावलम्बी अथवा समृद्धि की अपेक्षा, हर भाई बहिन के सम्बन्ध में, सहज रूप में देखने को मिलती है । इस प्रकार यह सम्बन्ध परस्पर विकास व उन्नति का प्रेरक और सहायक होना सहज है ।

रूप की सार्थकता सच्चरित्रता के रूप में, (अर्थात स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष, दया पूर्ण कार्य-व्यवहार के रूप) में होती है ।

बल की सार्थकता, **दया** पूर्वक होती है । इस रूप में दया का सफल होना सहज है । यह सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह क्रम में किया गया, सम्पूर्ण अर्पण समर्पण है ।

धन की सार्थकता को **उदारता** के रूप में पहचाना जाता है। उदारता आय के अनुपात में व्यय, व्यय के अनुपात में आय के रूप में स्पष्ट है । तन, मन, धन का सदुपयोग ही, सहज उदारता है ।

पद की सार्थकता, **न्याय** सुलभता के रूप में सफल है । मानव सम्बन्ध, नैसर्गिक सम्बन्ध, श्रम सम्बन्धों को पहचानना और मूल्यों का निर्वाह करना, सम्पूर्ण क्रियाकलाप हैं ।

बुद्धि की सार्थकता **विवेक** (प्रयोजन व सार्थकता) रूप में सफल है। सम्पूर्ण प्रयोजन व सार्थकता, क्रम से ज्ञान, विज्ञान, सम्मत निर्णय विवेक होना सहज है । जो समाधान क्रम है । इसी क्रम में सर्वतोमुखी समाधान, समीचीन है। सर्वतोमुखी समाधान का तात्पर्य है - आचरण, व्यवहार, व्यवस्था, कार्यों में मानवीयता आचरित होना है ।

33. स्वीकृति - 34. स्वागत

परिभाषा : स्वीकृति :- अनुभव मूलक प्रभाव में इंगित होने वाले सम्पूर्ण संकेतों को यथावत परावर्तन में और प्रत्यावर्तन में प्रमाणित करने की क्रिया ।

अनुभव सदा-सदा आत्मा में होता ही है, जिसमें यर्थाथता, वास्तविकता, सत्यता सह-अस्तित्व में प्रमाणित होने योग्य विधि से

पूरा जीवन में यथा बुद्धि चित्त वृत्ति मन में प्रभावित रहना पाया जाता है । इसी क्रम में सभी यर्थाथ संकेत मन में इंगित होना स्वभाविक है । यही पूर्वानुक्रम संकेत है । इन संकेतों को यथावत अर्थात जैसा संकेत मिला उसे वैसे ही मानव परम्परा में प्रमाणित करने की प्रवृत्ति न्याय, धर्म, सत्य सम्पन्न विधि से मन परावर्तित रहता ही है ।

स्वागत् :- (1) अवधारणा, अनुभव के लिए स्वीकृत किया। (2) नियम, न्याय, समाधान, सत्य सहज स्वीकृतियों, अस्वीकृतियों के लिए तैयारियां । (विवेक व विज्ञान सम्मत मानसिक, वैचारिक और ऐच्छिक तैयारियां)

इंद्रिय सन्निकर्ष में भी स्वागत भाव का भास आभास होना पाया जाता है, जिसकी निरंतरता की अपेक्षा ही रह पाती है । यह व्यवहार में प्रमाणित नहीं हो पाता । अतएव स्वागत का आधार सम्पूर्ण मूल्य स्वागत होना पाया जाता है । वस्तुओं का धारक वाहकता में भी जीवन रहता ही है। इसलिए मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि, आत्मा के अविभाज्य जागृति के रूप में ही जीवन सामरस्यता क्रम में, आस्वादन विधि को सम्पन्न करता है।

यह क्रम सह-अस्तित्व सहज अस्तित्व में अनुभव व बोध विधि से, ही, संभव हो पाता है । शरीर को सत्य समझकर (शरीर केन्द्रित) आस्वादन करने की स्थिति में, जीवन तृप्ति का स्रोत नहीं बन पाता । अतएव जीवन तृप्ति विधि से ही आस्वादन सार्थक होता है अर्थात जीवन में, से, के लिए जीवन समझ में आने के बाद ही आस्वादन की सार्थकता, नियम और न्याय के रूप में निरंतर ही सुख, सुन्दर, समाधान के प्रमाणों सहित है ।

स्वीकृति और स्वागत क्रिया-कलाप, जीवन सहज क्रिया ही है। शरीर भी जीवन्तता पूर्वक, जीवन के अर्थ को व्यक्त करने में एक माध्यम है । अतएव मानव परम्परा जीवन और शरीर के संयुक्त साकार रूप में वैभवित रहता है । यह तथ्य पहले से ही स्पष्ट किया जा चुका है । अतः जीवन सहज मन, स्वीकृति पूर्वक आस्वादन और

स्वागत क्रिया-कलापों को सम्पन्न करता है ।

स्वीकृति और स्वागत क्रिया, जीवन-सहज स्वभाव गति प्रतिष्ठा में है । इसे जागृति सहज मौलिकता के रूप में, मानव परम्परा में स्पष्ट करता है। मूलतः जीवन धर्म, सुख-शांति, संतोष-आनंद सहज प्रमाणों को जीवन क्रम से, नियम, न्याय, समाधान, सत्य ही हैं । ये जीवन सहज स्वीकारने योग्य क्रियाएं हैं। स्वीकृत क्रियाएं, सहज रूप में ही, स्वागत सहज प्रमाण होती हैं (अथवा स्वीकृति के लिए, क्रिया-कलापों को, शिक्षा-संस्कार के रूप में सम्पन्न किया जाता है) । स्वीकृति के लिए क्रियाएं होना सम्पन्न होता है । इसलिए जागृति परम्परा में, स्वागत क्रिया दो विधियों से कार्यरत होती है । जैसे परावर्तन व प्रत्यावर्तन ।

मानवीयतापूर्ण परम्परा में ही प्रत्येक मानव संतान के लिए जागृति का स्रोत है । मानव परम्परा भी अस्तित्व में अविभाज्य कार्य-कलाप है ।

मूलतः स्वीकृतियों को, अवधारणा के रूप में स्थापित होना, पाया जाता है । ऐसी सभी अवधारणाएं, अनुभव मूलक विधि से प्रमाण पूत (पवित्र प्रमाण) होते हुए, व्यवहार में प्रमाणित होती हैं । अतएव सम्पूर्ण कार्यकलापों को, अवधारणा के अर्थ में ही (सम्पूर्ण क्रियाकलाप का तात्पर्य पांचों ज्ञानेन्द्रियों से) सम्प्राप्त होने वाले (पूर्णता के अर्थ में प्राप्त होने वाले) सूत्रों के रूप में देखा जाता है। सम्पूर्ण संवेदनापूर्वक, सम्पूर्ण सूत्र और व्याख्या, अपने अर्थ में, अस्तित्व सहज मानव केन्द्रित रूप में सूत्रित है । यही मानव परम्परा में शरीर यात्रा सहज स्वीकृति और स्वागत क्रिया की सार्थकता है । यही सम्पूर्ण अध्ययन भी है ।

सम्पूर्ण अवधारणाएं मौलिकता के रूप में होना पाई जाती है। मौलिकताएं, धर्म और स्वभाव के ही सूत्र हैं । सम्पूर्ण अस्तित्व में, प्रत्येक एक, अपने ''त्व'' सहित व्यवस्था है, समग्र व्यवस्था में भागीदार है क्योंकि अस्तित्व में सम्पूर्ण इकाइयां (अथवा समस्त इकाईयां) सह-अस्तित्व सूत्र में सूत्रित हैं । इसी क्रम में मानव जागृति

पूर्वक (अर्थात जानने, मानने-पहचानने, निर्वाह करने के संगीत क्रम में) अस्तित्व में चार अवस्थाओं में से ''त्व'' सहित व्यवस्था को पहचानने के क्रम में है । जैसे पदार्थावस्था में-

(1) लोहत्व से लोहा, स्वर्णत्व से स्वर्ण, मणित्व से मणियां, मृदात्व से मिट्टी, पाषाणत्व से पाषाण (पत्थर) आदि को पहचाना जाता है । मानव मूल्यांकन करता है ।

(2) दूबत्व से दूब, आमत्व से आम, नीमत्व से नीम, सालित्व से धान, बिल्वत्व से बेल, गोधोमत्व से गेंहू, आदि को प्राणावस्था में, उन उनके ''त्व'' सहित व्यवस्था से पहचाना जाता है । मौलिकताएं मूलतः मूल्य ही है ।

(3) जीवावस्था में गौत्व से गाय, व्याध्रत्व से व्याध्र (शेर), मार्जारत्व से मार्जार (बिल्ली); श्वानत्व से श्वान, सर्पत्व से सर्प, मेषत्व से बकरी आदि जीवों को, उन उन के ''त्व'' सहित व्यवस्था कार्य में पहचाना जाता है ।

(4) ज्ञानावस्था में मानव अपने 'त्व' सहित व्यवस्था है । व्यवस्था में भागीदारी सहित ''मानवत्व'' का प्रमाण प्रस्तुत करना, अभी भी परम्परा रूप में साक्षित होने की प्रतीक्षा बनी हुई है । सम्पूर्ण मानवत्व का सूत्र नियम, न्याय, समाधान (धर्म) और सत्य ही है । नियम, प्राकृतिक, सामाजिक और बौद्धिक नियमों के रूप में अध्ययन गम्य है । न्याय के रूप में ही मानव - परम्परा में सम्बन्ध, मूल्य, मूल्यांकन की सामरस्यता के आधार पर, मानव प्रमाणित होता है ।

इसे प्रत्येक मानव-व्यवहार में प्रमाणित करना संभव है । सम्पूर्ण बौद्धिकता को ही व्यवहार में प्रमाणित करना है, प्रमाणित होना है । जीवन, अपनी जागृति के आधार पर, प्रत्येक मनुष्य में, बौद्धिकता के अर्थ में, प्रमाणित होता है । जीवन में ही बुद्धि का वैभव है, न कि शरीर में । जीवन, मानव-परम्परा में प्रमाणित होने के लिए, शरीर एक माध्यम है । जीवन सहज जागृति, शरीर की स्वस्थता के योगफल में मानव परम्परा का ही स्वस्थ होना, व्यवस्थित

होना, पाया जाता है । पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था में भी, उन उन की परम्परा के आधार पर भी, जातियों का नामकरण किया गया है, जबकि मानव जाति, मानव धर्म (सर्वतोमुखी समाधान) के आधार पर, **''जाति एक, कर्म अनेक हैं।''** चूंकि मानव बहु-आयामी अभिव्यक्ति है, इस कारण कर्म अनेक होना स्वाभाविक है । सम्पूर्ण प्रकार के कर्म, नियमों के प्रमाण में, सह-अस्तित्व को, सह-अस्तित्व सहजता को, न्याय सहज प्रमाण में सह-अस्तित्व को, धर्म (समाधान) की विधि से स्वयं व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी को, और सत्य सहज विधि से, प्रमाण और प्रामाणिकता को, मानव परम्परा में प्रमाणित करना ही, मानव परम्परा का वैभव है । अभिप्राय यही है कि, अभ्युदय के अर्थ में, मानव, बहु-आयामी कार्यकलापों को, सम्पन्न करता ही है । मानव, तृप्ति, समाधान, समृद्धि, अभय (वर्तमान में विश्वास); सह-अस्तित्व, सामरस्यता सहज समाज, न्याय सहित उत्सवित होता है, उत्सवित करता है, उत्सव के लिए निरंतर स्रोत बने रहता है, यही मानव परम्परा का अद्‌भुत वैभव है । ज्ञानावस्था सहज महिमा है । जीव कोटि के वैभवों से सर्वथा भिन्न और मौलिक (धर्म और पहचानने योग्य) वैभव यही है । ऐसे वैभव को प्रत्येक व्यक्ति स्वागत करने के लिए सहज रूप में आकांक्षित है।

35. रुचि - 36. पहचान

परिभाषा : पहचान :- 1. इन्द्रिय सन्निकर्ष में चरितार्थता आवश्यक अथवा अनिवार्य तत्व । 2. वस्तुओं का योग संयोग से प्राप्त फल परिणाम की भी स्वीकृति ।

रुचि :- रासायनिक द्रव्यों से रचित रचनात्मक व्यवस्था में अनुकूल भौतिक रासायनिक वस्तुओं के संयोग से योग में (मिलने से) प्राप्त परिणामों की पहचान ।

जैसा जीभ एक शरीर से अभिन्न अवयव के रूप में भौतिक रासायनिक वस्तुओं से रचि रचना है । इसके संयोग में आने वाली वस्तु भी भौतिक अथवा रासायनिक होती है । इसका फल परिणाम

में ही रूचि की पहचान मन में होना पाया जाता है क्योंकि यह भी एक ज्ञानेन्द्रि है ।

जीवन सहज विधि से, सोचने समझने, कार्य-व्यवहार करने और व्यवस्था सहज कार्य-कलापों को प्रमाणित करने, प्रामाणिकता पूर्वक जीने की अभिलाषा का सर्व मानव में होना पाया जाता है । आदि काल से मानव परम्परा, सर्व शुभ कामना करते ही आई । ऐसी कामनाओं को साकार करने के लिए विविध प्रयास भी हुए । इसके उपरान्त भी व्यवहार में समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व, रूपी सर्व शुभ को चाहते हुए भी, वर्तमान में घटित नहीं हुआ । इसीलिए पुनर्प्रयास की आवश्यकता रही । इसी क्रम में ''मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान'' इस पावन उद्देश्य को सफल बनाने के लिए अर्पित है ।

रुचियों की पहचान :-

(1) इंद्रियों के आधार पर संवेदनाओं के रूप में ।

(2) जागृत मानव में नियम, न्याय, समाधान के आधार पर होती है । जीवन और शरीर की स्पष्ट पहचान के उपरान्त ही, नियम, न्याय, समाधान, सहज रस, सुख, सौंदर्य में अभिभूत होना पाया जाता है। **अभिभूत** होने का तात्पर्य नियम, न्याय, समाधान को जीवन सहज रूप में पहचानने निर्वाह करने मूल्यांकन करने व उभय तृप्ति पाने से है अथवा जीवन सहज वैभव होने के रूप में पहचानने से है। इसी क्रम में मानव का प्रयोजन, यथा व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी का प्रयोजन प्रमाण पूरा पूरा समझ में आता है । इसी क्रम में **नियम रूपी सुख; न्याय रूपी सौंदर्य; व्यवस्था रूपी समाधान;** मानव परम्परा में प्रत्येक व्यक्ति के लिए सहज समीचीन है। इसका सार्थक होना मानव संचेतनावादी मानसिकता से सहज संभव है।

इंद्रिय सन्निकर्षों के आधार पर, शरीर को जीवन मानते हुए स्वीकार किया गया । रूचियां, इन्हीं इन्द्रियों द्वारा, रूचि ग्राही होने के रूप में, भ्रमितमन मान लेने से भी, क्षणिक रूप में सुख भासना, देखा गया है । शरीर संवेदनाओं के आधार पर, सम्पूर्ण प्रकार की रूचियों को, भंगुरात्मक (क्षण-भंगुर) ही पाया गया । इनकी स्मृतियों में विवश होते हुए, मानव ने बारम्बार ऐसे प्रयासों में भ्रम में मग्न रहकर, इसे ही सुख का एक मात्र मार्ग है - ऐसा मानते हुए अधिकांश लोगों ने चलकर देख लिया । निष्कर्ष यही निकला कि ऐसी प्रवृत्तियों के आधार पर कोई :-

(1) व्यवस्था सूत्र से सूत्रित नहीं हुआ ।

(2) सार्वभौम समाज न्याय को पहचानना संभव नहीं हुआ ।

(3) सर्व - समृद्धि का कोई मार्ग, प्रशस्त नहीं हो पाया ।

इस प्रकार मानव की अभीप्साएं अभी भी प्रतीक्षा में ही हैं । मानव सहज अभीप्सा समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व है । इसको प्रत्येक व्यक्ति स्वयं में और समग्र मानव में, निरीक्षण, परीक्षण और सर्वेक्षण पूर्वक स्वीकार के अर्थ में प्रमाणित कर भी सकता है, करा भी सकता है, करने के लिए प्रेरणा भी दे सकता है । इस विधि से यह स्पष्ट हो जाता है कि मानवाकांक्षा सदा दर किनार रही हैं । कुछ लोगों ने आकांक्षायें पैसा, पद, नाम फैलाने के ढंग से राज धर्म, शिक्षा व्यापार गद्दियों में आसीन होकर संसार को दिशा देने गये । ऐसे दिशा निर्देशन, विचार कार्यों के मूल में आदर्शवाद यथा अध्यात्म, अधिदैवी व अधिभौतिक विचार व प्रयास रहते आया।

परिणाम में रहस्य ही हाथ लगा । दूसरा भौतिकवाद विज्ञान के नाम से वंशानुषंगीय सापेक्ष व मात्रा विज्ञान अपने ही शोध के क्रम में अस्थिरता अनिश्चयता के दलदल में फंस गये । जहां तक सार्थक तकनीकी जितने भी हाथ लगी है, अधिकांश अक्रमिक घटनाओं के रूप में घटित हुए । शिक्षा प्रयोग विधि से लोक व्यापीकरण संपन्न हुआ है ।

आदर्शवादी मानसिकता	**भौतिकवादी मानसिकता**
(1) चेतना से वस्तु पैदा होती है । सर्वशक्ति मान ब्रह्म, देवता, ईश्वर से सब कुछ संचालित होता है । सर्वशक्ति से भयभीत होकर ही ग्रह गोल अपना-अपना काम करते हैं ।	(1) वस्तु से चेतना पैदा होती है । प्रकृति सब कुछ है । सब कुछ अस्थिर एवं अव्यवस्था की ओर है ।
(2) अहिंसा का पक्षधर ।	(2) पैसा व पद से प्रबंधन होता है ।
(3) सहिष्णु ।	(3) धरती व इसके वातावरण के साथ अधिकतम अपराध, पर्यावरण के साथ अपराध करना ।
(4) धरती के साथ नहीं के बराबर व जंगलों का आंशिक शोषण ।	
(5) आस्था के लिए पीढ़ी से पीढ़ी पर बल ।	

आदर्शवाद से उत्पन्न विसंगतियाँ	**(भौतिकवाद) तकनीकी कर्माभ्यास से स्वीकृत उपलब्धियां**
(1) ईश्वर रूपी सदग्रन्थों में ।	(1) दूर-श्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन, के लिए यंत्र उपकरण ।
(2) पावन ग्रन्थों पर आधारित विचार शैलियों में ।	(2) घरेलू एवं कृषि प्रौद्योगिकी यंत्र उपकरण ।
(3) ऐसे विचार शैलियों पर आधारितशास्त्रों में ।	
(4) शास्त्रों पर आधारित समुदाय मानसिकता में ।	

(5) समुदाय मानसिकता के आधार पर जीवन की शैली में मतभेद दृष्टव्य है ।

इन दोनों सविरोधी विचारों की स्वीकृत प्रवृत्तियां (पांच)

विरक्ति, भक्तिवादी	लाभोन्मादी, भोगोन्मादी, कामोन्मादी
(प्रयास प्रवृत्ति)	(संघर्ष कर्म प्रवृत्ति)

इस प्रकार कुछ लोगों की आकांक्षाएं, प्रभावशील रही हैं । इन्हीं प्रभावों के आधार पर और इनमें विविधता के आधार पर, अनेक समुदायों में मानव दिखाई पड़ता है, इसलिए पुनर्विचार करना आवश्यक हुआ । पुनर्विचार का व्यावहारिक आधार, मानव सहज आकांक्षा है । यह अस्तित्व सहज रूप में ही समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व है । प्रत्येक मनुष्य में सुख, सौंदर्य, समाधान सामाजिकता की अपेक्षा भी देखने को मिलती है । सौंदर्य, न्याय और समाधान का समीकरण है । नियमों के साथ न्याय का वैभव समझ में आता है । नियम, अस्तित्व सहज, सह - अस्तित्व में सूत्रित, व्याख्यायित है । अस्तित्व में अविभाज्य द्रष्टा सहज इकाई मानव है । इसका साक्ष्य जानने मानने, पहचानने निर्वाह करने की अहर्ता है ।

यह प्रत्येक व्यक्ति में प्रमाणित होना ही जागृति है । इस तथ्य को प्रत्येक व्यक्ति में सर्वेक्षित किया जा सकता है, क्योंकि प्रत्येक मानव संतान जन्म से ही न्याय का याचक, सही कार्य-व्यवहार करने का इच्छुक और सत्य-वक्ता होता है । इसकी तृप्ति के लिए क्रमशः नियम पूर्ण व्यवसाय से समृद्धि, न्याय पूर्ण व्यवहार से अभय, मानव धर्म (समाधान) पूर्ण व्यवस्था से सर्वतोमुखी समाधान है तथा अस्तित्व रूपी परम सत्य-बोध सहज सह-अस्तित्व में, से, के लिए सम्पूर्ण तृप्तियां, मानव सहज रूप में, द्रष्टा पद प्रतिष्ठावश, नित्य समीचीन है।

मनुष्य द्रष्टा पद में सुनिश्चित अभिव्यक्ति है । इस साक्ष्य में

वह जीवों का द्रष्टा है ही । जीवों को पहचानना, सर्वाधिक मनुष्यों से संभव हो चुका है। इसी प्रकार प्राणावस्था, पदार्थावस्था में वस्तुओं को पहचानना प्रमाणित हो चुका है । मानव द्वारा, मानव को पहचानना ही अथक प्रयासों के उपरान्त भी प्रतीक्षित ही रहा है ।

ऐसे पहचान के क्रम में, मानव संचेतना को, उसके कार्य, प्रयोजन, संभावनाओं को, आवश्यकताओं के तारतम्य में अध्ययन करना एक जरुरत रही है । इस विधि से प्रत्येक मनुष्य का, स्वयं में संचेतना को पहचानना संभव हो जाता है । संचेतना का सम्पूर्ण रूप जानना- मानना, पहचानना - निर्वाह करना ही है । द्रष्टा पद का यही साक्ष्य है । ऐसे गुण सबमें विद्यमान हैं ।

अस्तित्व के संदर्भ में मानव सहज रूप में ही अध्ययन करने के लिये प्रवर्तनशील है । मनुष्य अपने में निरीक्षण परीक्षण करता है, तब पता चलता है कि -

(1) प्रत्येक व्यक्ति कल्पनाशील और कर्म-स्वतंत्र है ।

(2) प्रत्येक व्यक्ति कर्म करने में स्वतंत्र, फल भोगते समय परतंत्र है । इनमें फलरूपता को पाना ही जागृति है जैसे कार्य व्यवहार के अनुरूप फल व फल के अनुरूप कार्य-व्यवहार ।

(3) मनुष्य शरीर यात्रा के आरंभ से ही न्याय का याचक, सही कार्य-व्यवहार करने का इच्छुक और सत्य वक्ता होता है ।

(4) मनुष्य मनाकार को साकार करने वाला, मनः स्वस्थता का आशावादी है।

(5) मानव, समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को वरता है।

ये सभी यथार्थ, इन बिंदुओं से इंगित होते हैं और उसका प्रयोजन, सर्व सुलभ होने का आधार जागृति पूर्ण मानव परम्परा ही है। जागृति परम्परा सहज विधि से प्राप्त जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण पूर्वक किया गया कायिक, वाचिक, मानसिक कृत कारित अनुमोदित क्रिया कलापों से समाधान, समृद्धि, अभय,

सह-अस्तित्व, व्यवहार में प्रमाणित होता है तथा नियम, न्याय, समाधान, तथा प्रामाणिकता पूर्ण मानसिकता से नित्य उत्सव होता है। फलतः सार्वभौम व्यवस्था, अखंड समाज की परिकल्पनाएं आचरण पूर्वक प्रमाणित होती हैं । इसी विधि से सम्पूर्ण पहचान और मूल्यों में रूचि सार्थक होना पाया जाता है ।

37. सुख - 38. स्फूर्ति

परिभाषा : समाधान = सुख ।

स्फूर्ति :- समाधान सहज प्रमाण में, से, के लिये नित्य प्रवृत्ति = कायिक, **वाचिक, मानसिक रूप में वह कृत कारित, अनुमोदित रूप में व्यवस्था में** प्रमाणित करने के लिये तत्परता, जीवन जागृति को परावर्तित करने का उत्सव **जागृत जीवन सहज सुख और प्रमाणित करने की स्फूर्ति सहज रूप में होना** पाया गया है । सुख को प्रमाणित करने के लिए जो स्फूर्तियां जागृत मानव में पायी जाती है, यह प्रमाणित होने के क्रम में ही क्रियान्वयन होना पाया गया है ।

मूलतः जीवन सहज समझदारी का प्रमाणीकरण करने के क्रम में ही सुख और स्फूर्ति ही सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी, अखण्ड समाज में भागीदारी, परिवार में भागीदारी, स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, व्यक्तित्व और प्रतिभा में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में स्वावलम्बन का प्रमाण ही वर्तमान में किए जाने वाले अभिव्यक्ति, सम्प्रेषणा और प्रकाशन है ।

हर मानव वर्तमान में प्रकाशित, संप्रेषित अथवा अभिव्यक्त रहता ही है । प्रत्येक वस्तु प्रकाशित रहता ही है । मनुष्य में ही सर्वाधिक संप्रेषणा और मौलिक जीवन सहज अभिव्यक्ति, विचार सहज संप्रेषणा, कार्य-व्यवहार, व्यवस्था में भागीदारी के रूप में जागृत मानव परम्परा का वैभव है । जीवन सहज तथ्यों व सह-अस्तित्व सहज तथ्यों को स्पष्ट कर देना ही अभिव्यक्ति है । जीवन स्पष्टता के मूल में, जीवन नित्य वस्तु के रूप में प्रतिपादित होना पाया जाता है

क्योंकि जीवन का मूल रूप गठनपूर्ण परमाणु होना समझा गया है ।

जीवन में ही आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रामाणिकता रूपी अक्षय शक्तियाँ जागृत मानव में प्रमाणित होता है। इसे प्रमाणित कर लिया गया है । इसी के साथ यह भी स्पष्ट रूप में प्रमाणित होता है कि मन वृत्ति, चित्त, बुद्धि और आत्मा रूपी अक्षय बल होना पाया गया है । इन्हीं जागृत जीवन सहज अक्षय बल, अक्षय शक्तियों की अभिव्यक्ति संप्रेषणा प्रकाशन अनुभव मूलक विधि से होने के तथ्यों को मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया है । जीवन में कार्यरत मन में ही सुख और स्फुर्ति की गवाही अथवा प्रमाण संप्रेषित होता है ।

जीवन ही शरीर को जीवन्त बनाए रखते हुए आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रमाणिकता को वर्तमान में प्रमाणित करता है। यही वर्तमान में विश्वास का तात्पर्य है, यही स्वयं में व्यवस्था एवं समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रमाण है । इसी विधि से जीवन में, से, के लिए सुख, समाधान और व्यवहार व्यवस्था कार्यों में प्रमाणित करने के लिए स्फुर्ति नित्य उत्सव के लिए होना पाया जाता है । यह हर जागृत मनुष्य में प्रमाणित होने की सम्भावना समीचीन है ही ।

जीवन्त शरीर के माध्यम से ही हर जीवन, मानव परम्परा में प्रमाणों को प्रस्तुत करना सार्वभौम अभीष्ट है । **अभीष्ट** का तात्पर्य अभ्युदय को इष्ट के रूप में स्वीकारा जाना । अभी ऐसा अभीष्ट, सहजता का तृप्ति ही सुख, शांति संतोष, आनन्द के नाम से जीवन सहज तृप्ति होता है । **तृप्ति** का प्रमाण समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व के रूप में संप्रेषित-प्रकाशित हो जाता है । इस प्रकार जीवन सहज बलों की अभिव्यक्ति, जीवन सहज शक्तियों की संप्रेषणा और जीवन सहज कार्य-व्यवहार भागीदारियों का प्रकाशन सुस्पष्ट है।

परिभाषा : आशा :- (1) सुखापेक्षा सहित आस्वादन क्रिया। (2) आशयपूर्वक की गई आस्वादन क्रिया । (3) चैतन्य इकाई की अन्तिम परिवेशीय (चतुर्थ परिवेशीय) अक्षय जीवन - शक्ति का वैभव।

सुख :- (1) न्याय के प्रति निष्ठा । (2) समाधान (उत्पादन + विनियम सुलभता रूपी समाधान) (3) सुख = विवेक सम्मत विज्ञान, विज्ञान सम्मत विवेक रूपी पूर्ण विचार शैली = समाधान ।

जीवन जागृति संपन्न प्रत्येक मनुष्य में आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा और प्रामाणिकता सहज क्रिया-कलाप स्पष्ट हैं । जो जीवन जागृत रहता है उसकी स्थिति व गति स्वरूप है, जिसमें से आशय जागृति ही 122 रूपों में मानव परम्परा में प्रमाणित होता है । इसी क्रम में चयन, रूचि, स्वागत, आस्वादन क्रियाओं में तत्पर रहता है । रूचियों में सुख भासता है । फलस्वरूप उसकी निरंतरता की आशा, आवश्यकता का उदय होता है । इसी तथ्यवश सुख की, निरंतरता के लिए प्रयासोदय का जीवन जागृति विधि से ही स्फूर्ति होना, जिसमें अनुभवमूलक विधि प्रमाणित व सार्थक रहना पाया जाता है । सुख की निरंतरता के लिए अनेक प्रकार से प्रयास करना, स्पष्ट है। जैसे प्रत्येक मनुष्य, प्रत्येक कार्य को, सुख की अपेक्षा में करता है । इसका प्रमाण स्पष्ट है कि सभी प्रकार की आशाएं सुखापेक्षा में हैं ।

मानव कुल के निरीक्षण परीक्षण से पता चलता है कि सुख और उसकी निरंतरता, सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन पूर्वक उभय तृप्ति के रूप में प्रभावित होता है । यह क्रिया निरंतर अनुभव में, से, के लिये स्रोत है । यह शुभ है । जीवन में अविभाज्य रूप से कार्यरत मन की प्रवर्तन क्रिया का नाम आशा है, जो मूल्य मूलक प्रणाली के रूप में नित्य सुखद संभावना है ।

सुख :- स्फूर्ति रूपी आशा, आशय (सुख) अपेक्षा के चयन रूपी स्वागत-आस्वादन आदि क्रियाएं सम्पन्न करता है ।

चैतन्य परमाणु में कार्यरत चतुर्थ परिवेशीय अंशों की मान्यता पर आधारित क्रिया का नाम **'मन'** है, जिसका गति रूप आशय सहित परावर्तन-प्रत्यावर्तन क्रिया कलाप है । मूलतः मनुष्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि, सुख के अर्थ में सभी मान्यताएं और मूल आशय भी, सुख रूप होना, अध्ययनगम्य है। मानव जीवन व जीवन जागृति में समानता समता व सह-अस्तित्व की पहचान व निर्वाह,

सुख है । यह अभ्यास सिद्ध प्रमाण है । सह-अस्तित्व, अस्तित्व सहज नियति जागृति सहज समता, जीवन की नित्य अपेक्षा है । नैसर्गिक रूप में यह संतुलन है । सम्पूर्ण प्रकृति व्यापक व वस्तु रूपी सत्ता में नियंत्रित, संरक्षित होने के कारण, सन्तुलन पूर्वक ही स्वभाव गति की, मनुष्य में अभिव्यक्ति है । स्वभाव, गति-पूर्वक है । विकास-क्रम, विकास, जागृति, और भौतिक रासायनिक रचना विरचनायें प्रमाणित होती है। मनुष्य जागृति पूर्वक ही, स्वभाव गति को प्रकाशित, प्रमाणित करता है इसलिए सुख-स्फूर्ति की सफलता, मानव की जागृति पर निर्भर है ।

39. पति/पत्नी - 40. यतीत्व/सतीत्व

परिभाषा : यतीत्व :- यत्न पूर्वक तरने के लिए, जागृति निर्भ्रमता और जागृति सहज निरंतरता के लिए किया गया सम्पूर्ण कार्य-व्यवहार; निर्भ्रमता सहित की गई प्रक्रिया एवं प्रयास । यत्न अर्थात शोधपूर्वक समझना ही तरना ।

सतीत्व :- सत्व पूर्वक तरने, जागृत होने के लिए किया गया कार्य-व्यवहार, समझ, प्रक्रिया समुच्चय; भ्रम मुक्ति । सत्व अर्थात संकल्प निष्ठापूर्वक समझना ही तरना ।

सत्व :- सह-अस्तित्व पूर्वक अस्तित्व को सिद्ध करना ।

विवाह सम्बन्ध को पति-पत्नी सम्बंध के नाम से जाना जाता है । मानव, **मानव से पहचान, निर्वाह करता है, जहां सेवा ली जाती है ।** सभी सम्बन्ध परिवार के ध्रुव है । परिवार में एक से अधिक व्यक्तियों का विश्वास पूर्ण सम्मिलित उत्पादन कार्य करना तथा सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह रूपी व्यवहार करना सुलभ होता है । प्रत्येक सम्बन्ध निश्चित ध्रुव है । जैसे माता-पिता, पुत्र-पुत्री, स्वामी-सेवक, गुरू-शिष्य, भाई-बहिन, मित्र, पति-पत्नी। सम्पूर्ण सम्बन्ध नियति सहज रूप में वर्तमान रहते हैं । इनके प्रति जागृत होना एक अनिवार्य स्थिति है । जागृत और जागृति-पूर्ण कार्य-व्यवहार, विन्यास होना सहज है ।

मानव, परम्परा सहज रूप में बहु-आयामी पहचान प्रवृत्ति वर्तमान है। अस्तित्व ही, सह-अस्तित्व होने के फलस्वरूप पदार्थावस्था ने परिणामानुषंगीय विधि से, विविध तत्वों के रूप में, संतुलन को व्यक्त किया है। प्राणावस्था ने, बीजानुषंगीय विधि से, विविध वनस्पतियों के रूप में संतुलन को व्यक्त किया है । जीवावस्था में वंशानुषंगीय विधि से, अनेक प्रकार की जीव परम्परा ने, संतुलन को व्यक्त किया है । मानव के लिए संस्कारानुषंगीय विधि से, समाधान, समृद्धि, अभय और सह-अस्तित्व को प्रमाणित करना सार्थकता है । इसे स्वराज्य व स्वतंत्रता पूर्वक, मानवीय संस्कृति (सम्बंधों की पहचान, स्थापित शिष्ट मूल्य का निर्वाह), मानवीय सभ्यता (मानव मूल्य व जीवन मूल्यों का वर्तमान में प्रमाणीकरण), विधि (मानवीयता पूर्ण आचारण संहिता) की रक्षा, व्यवसाय आवश्यकता से अधिक उत्पादन सहित (स्वयं व्यवस्था होने में विश्वास और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था जो - (1) शिक्षा संस्कार (2) न्याय-सुरक्षा (3) उत्पादन कार्य (4) विनियम कोष (5) स्वास्थ्य-संयम व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित करना, मानव परम्परा की सार्थकता है । मानव, परम्परा के रूप में अखंड है । मानवीयता पूर्ण संस्कार परम्परा में, मानवीय शिक्षा संस्कार सार्वभौम है । मानव परम्परा में स्व-राज्य, स्वतंत्रता सार्वभौम है । मानव परम्परा में न्याय सुरक्षा, श्रम नियोजन व श्रम विनियम रूपी विनियम कार्य, सार्वभौम प्रमाणित होता है । साथ ही मानव जाति में अखंडता मानव धर्म, इसके अनुसंधान का उद्देश्य, प्रामाणिकता और सर्वतोमुखी समाधान, सार्वभौम है । इसलिए मानव, अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था के रूप में सहज है ।

परिवार ही व्यवस्था के रूप अखंड है । परिवार में समाधान, समृद्धि, अभय और सह-अस्तित्व प्रमाणित होता है । इसलिए सम्पूर्ण मानव परिवार ही, समाज का स्वरूप है ।

प्रत्येक सम्बन्ध का ध्रुव, परिवार रचना का आधार है । परिवार रचना, सम्बन्धों को पहचानना, मूल्यों का निर्वाह करने के रूप में है। सम्बन्ध मानव तथा नैसर्गिक भेद से पाया जाता है । एक से अधिक मनुष्यों का होना ही सम्बन्धों का होना, वर्तमान ही होता

है। इस प्रकार, वर्तमान में जो कुछ भी है, जितना भी है, वह सब परस्परता में सम्बन्धित है । इनमें जागृत होना ही मानव का अधिकार है ।

मानव ही जागृत व जागृति पूर्ण होता है, हो सकता है, होने के लिये इच्छुक है । इस कारण पहचानना निर्वाह करना और जानना-मानना सहज है । इसी क्रम में पति-पत्नी सम्बन्ध भी सहज है । इस सम्बन्ध में शरीर, (अथवा तन) सम्बन्ध, अन्य सम्बन्धों से भिन्नता का आधार है । शरीर सम्बन्ध मानव संतानार्थ सार्थक है । यही व्यसन के रूप में अथवा कामोन्माद के रूप में परिवार के असंतुलन तथा अव्यवस्था के रूप में परिणित होता है ।

परिवार मूलक विधि से ही, स्वराज्य व्यवस्था नैसर्गिक है । व्यवस्था प्रत्येक मनुष्य का अभीष्ट है । इस प्रकार मानव परिवार के ध्रुव के रूप में पति-पत्नी का सम्बन्ध, पहचान व निर्वाह सहज है ।

पति-पत्नी का मानस, परिवार के आकार में, सुदृढ़ होना ही एक मन, दो शरीर का तात्पर्य है । साथ ही जीवन जागृति का संकल्प होना, एक मन दो शरीर का तात्पर्य है । जीवन जागृति प्रत्येक मनुष्य की अभीप्सा है । जीवन जागृति, जीवन-विद्या (ज्ञान) बोध होने के उपरान्त है । यह जीवन क्रिया कलापों के अंतर्सम्बन्ध को, परस्पर जीवन प्रभाव क्षेत्र अनुबन्ध क्रम से स्पष्ट करता है । निरीक्षण, परीक्षण विधिपूर्वक अभ्यास से, द्रष्टा पद प्रतिष्ठा सहज ही प्रमाणित होता है । द्रष्टा पद प्रतिष्ठा को प्रमाणित करना ही यतीत्व व सतीत्व का तात्पर्य है। एक पत्नी व्रत, एक पतिव्रत भी, यतीत्व और सतीत्व का प्रमाण है। इस प्रकार स्वानुशासन के रूप में द्रष्टा पद का, जीवन-जागृति का प्रमाण, मानव सहज है ।

इस धरती में ही चारों अवस्थाओं का वैभव वर्तमान है । इस धरती पर मानव संतान संख्या का नियंत्रण होना, पति-पत्नी का एकत्र निश्चय मानसिकता होना, मानव अखंड समाज के रूप में स्पष्ट होना, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था सार्थक होना आवश्यक है । ये सब एक दूसरे के पूरक हैं । इस प्रकार दाम्पत्य में, उभय

मानसिकता-निर्णयों में, एक रूप होने से सहज ही, सर्वशुभ समीचीन होता है । इसका आधार मानवीयता है । जिसका प्रमाण स्वयं के प्रति विश्वास और श्रेष्ठता के प्रति सम्मान करने योग्य होना है ।

41. माता - 42. पोषण

परिभाषा : पोषण :- इकाई + अनुकूल इकाई ।

माता जब पुत्र-पुत्रियों को पहचानती है, तभी मातृत्व का प्रसव गुण पोषण के रूप में प्रमाणित होता है । स्वभाव गति सम्पन्न प्रत्येक मां अपनी संतान को पहचानती है, फलतः निर्वाह करती है । इसी कारणवश, संतान की शरीर स्वस्थता और मानसिकता का, माता की योग्यता व साधन के अनुसार अथवा परिवार की दक्षता अनुसार पोषण सम्पन्न होता है, जो संस्कार कहलाता है । मां अपनी संतान की, स्वीकृत मानसिकता का स्रोत है । साथ ही भाषा, संबोधन, सम्बंधों की पहचान, संस्कार (स्वीकारने के लिए निर्देशन) का स्रोत भी है । सम्बंधों के आधार पर, संबोधनों का होना सहज है ।

उल्लेखनीय (ध्यान देने योग्य) मुद्दा यह है कि मां ही प्रथम प्रधान कारण है कि वह बोली, भाषा, खान-पान में, संबोधन में विश्वास को स्थापित करती है । संबोधन से सम्बंधों में विश्वास स्थापित करना सहज है । इसी क्रम में जाति, धर्म, कर्म का मूल संस्कार भी, अधिकांश रूप में मां से संतानों को अंतरित-निक्षेपित होता है । शैशव बाल्य अवस्था में बालक विश्वास को आधार मानता है । मां पर संतानों का विश्वास होना एवं पोषण संरक्षण होना सहज रूप में देखा जाता है ।

इस धरती पर जितनी भी समुदाय परंपराएं हैं, वे सब किसी न किसी नस्ल, रंग, रहस्यात्मक धर्म, संप्रदाय, पंथ, मत, भाषा, देशत्व वाली मानसिकता एवं संस्कारों को प्रदान करती हैं ।

अधिकार, पद, शोषण मूलक धन और समर शक्ति के आधार पर ग्रसित समुदाय, जाति और भाषा पर आधारित समुदाय के रूप में स्पष्ट है । जबकि इस धरती पर अनेक समुदाय के लोग रहते हैं । प्रत्येक समुदाय में विभिन्न भाषावादी लोगों के होते हुए, सम्बंधों में,

संबोधन का अर्थ अधिकांश समान है । यह मानव सहज अभिव्यक्ति है। प्रत्येक देश, भाषा, काल में, मनुष्य की परस्परता में, संबोधन सहज रहा है । इसका अर्थ भी सहज रहा है । ये दोनों स्थितियां अपने आप में प्रमाणित करती हैं कि सम्बन्ध अस्तित्व-सहज रूप में रहता ही है । फलतः सम्बोधन व अर्थ प्रकाशित होता है ।

मानव, अस्तित्व सहज प्रकाशन है, साथ ही जागृति क्रम में प्रकाशन है। यह प्रत्येक मनुष्य में प्रमाणित होता है । प्रत्येक मनुष्य सुख धर्मी है । सुख की अपेक्षा में ही मानव समस्त सम्बन्धों को पहचानने व निर्वाह करने के क्रम में है । यह मनुष्य में दृष्टव्य है । मनुष्य का संबोधन के साथ सम्बन्धों का अर्थ एवं आचरण समेत सहज होना पाया जाता है ।

माता ही शरीर का पोषण, भाषा का पोषण, नाम का पोषण, परिचयों का पोषण, संस्कृति का पोषण करने के क्रम में संस्कारों का निक्षेपण सहज रूप में करती है । प्रत्येक मां अपनी संतान को सम्बंधों का सम्बोधन, प्रारंभिक अवस्था में सिखाती है और जैसे ही उम्र बढ़ती है, वैसे ही सम्बोधन के साथ गौरव, विश्वास, सेवात्मक आचरणों को सिखाती है । यहां पर मानव को, मानवीयता के नाते सम्बोधनों एवं आचरणों को सिखाना आवश्यक है । जिससे सभी समुदाय चेतना, मानव संचेतना में विलय हो सके । मानव में मानवीयता पूर्ण संस्कार पोषण, बुनियादी कार्य है । प्रत्येक व्यक्ति में यह महत्वपूर्ण कार्य मां से आरंभ होता है, यही मानव संस्कृति की अंकुरण क्रिया है । मानव जाति और धर्म, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था रूपी सत्य को, स्थापित करना, मानव संस्कार है । सम्बन्धों की पहचान, शिष्टता का अभ्यास, मानव संस्कार है । मानव जाति, मानव में मानवीय सम्बन्ध, मानव समाज, मानवीय व्यवस्था (संविधान मानवीयता पूर्ण मानव का आचरण) के प्रति अवधारणाओं को स्थापित करना शिक्षा संस्कार है ।

आरंभिक अथवा बुनियादी कार्य माता-पिता अथवा अभिभावकों और बंधुओं से सम्पन्न होता है । दूसरा, शिक्षा संस्थानों में दृढ़ होता है । राज्य व्यवस्था, संविधान पूर्वक पूर्ण एवं मूल्यांकित

व प्रमाणित हो पाता है । इस प्रकार मां का पोषण कार्य शरीर, संस्कार, शिक्षा, व्यवहार, आचरण की बुनियाद है ।

43. पिता - 44. संरक्षण

परिभाषा : संरक्षण :- जीवन जागृति के क्रम में निर्बाधता। सुगमता के अर्थ में है । संतान को, संतान के रूप में स्वीकार किये हो, ऐसी स्थिति में वे अभिभावक (अभ्युदय भावना सम्पन्न) अपने बच्चों का संरक्षण करते हैं यह एक सर्वसाधारण क्रिया है ।

प्रधानतः पिता संरक्षण में, माता पोषण में सर्वाधिक रूप में प्रमाणित होते हैं या होना चाहते हैं । संरक्षण का प्रधान कार्य स्वास्थ्य, शिक्षा- संस्कार, संस्कृति-सभ्यता, आचरण और मूल्यों का आस्वादन, ये प्रधान मुद्दे हैं ।

स्वास्थ्य संरक्षण :- सन्तान का संरक्षण शरीर और मानसिकता के अर्थ में स्पष्ट है । शरीर संरक्षण अभ्यास से, संतुलित आहार योजना से रोग निवारण उपायों से संभव हो पाता है । मानवीय संस्कारों से, मानवीय शिक्षा से, मानवीयता पूर्ण आचरण से, मानसिक संरक्षण सहज ही हो पाता है । जहां तक शरीर संरक्षण के क्रिया कलाप है, वह सर्वाधिक लोगों को विदित हैं। यह यथा स्थिति होते हुए, इसका सामान्य विचार करना भी, आवश्यक है।

सन्तान के प्रति पिता का विश्वास सहज व सत्य वर्तमान होना पाया जाता है । अभिभावक, संतान सम्बन्ध को पहचानने मात्र से सम्बन्ध में विश्वास, निश्चित सम्बन्ध के अनुरूप, जीवन सहज है । यह वैभव, ममता, वात्सल्यादि रूप में प्रमाणित होता है। यही मूल्यों के नाम से जाना जाता है। जीवन का अक्षय बल व शक्ति सम्पन्न रहना ही जीवन सहज रूप में मूल्यों को प्रकाशित करता है । ऐसे प्रकाशन क्रम में सम्बन्धों को पहचानना अनिवार्य स्थिति है ।

सम्बन्धों को मनुष्य सर्वाधिक पहचानता है अथवा पहचान के

क्रम में है। सम्बन्धों को पहचानना जीवन का सर्वाधिक प्रयुक्ति है, जबकि निर्वाह करते समय शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में प्रयुक्त होना प्रमाणित है । जीवन विहीन शरीर से, पहचान निर्वाह नहीं होता है । देखने, समझने व पहचानने वाला जीवन है ।

स्व-शरीर सहित सम्पूर्ण वस्तुएं जीवन के लिए दृश्य हैं । इस कारण कल्पना के सहारे किसी सम्बन्ध की पहचान भले ही करें, निर्वाह के लिए शरीर का भी होना आवश्यक है । इसी क्रम में प्रत्येक अभिभावक का, अपने संतान सहज सम्बन्ध को संप्रेषित करने के लिए, मनुष्य की प्रयुक्ति है । जीवन महिमा ही शरीर को जीवन्त बनाए रखती है । जीवंतता सहित ही सम्बन्धों को पहचानने का प्रमाण, निर्वाह करने के रूप में होता है ।

अभिभावक जितना जागृत रहते हैं, उसी के अनुरूप संतानों की सर्वतोमुखी सम्पदा का संरक्षण होना सहज है । शारीरिक, मानसिक रूप से स्वस्थ अभिभावक ही स्वस्थ संतानों को प्रस्तुत कर पाते हैं । **स्वस्थ वे हैं, जिनमें मानवीय संचेतना विकसित हो चुकी हो ।** समुदाय चेतना संपन्न व्यक्ति का, मानसिक रूप से स्वस्थ होना संभव नहीं है । मानवतावादी विचार संपन्न, मानवीयता पूर्ण आचरणरत, मनुष्य ही, स्वस्थ मानस संपन्न होता है। अस्तु प्रत्येक मानव को, मानवीयता के प्रति जागृत रहना अनिवार्य है । यही स्वस्थ संतान को प्रस्तुत करने का सूत्र है । शरीर संरक्षण सामान्य रूप में निर्वाह होता है।

संस्कार, नाम-जाति, धर्म, दीक्षा, शिक्षा सहज रूप में आवश्यक है। नाम संस्कार संबोधन के अर्थ में, जाति संस्कार - मानव जाति के अर्थ में, धर्म संस्कार मानव-धर्म (सर्वतोमुखी समाधान) के अर्थ में, दीक्षा-संस्कार जीवन जागृति, स्वानुशासन के अर्थ में सार्थक है । शिक्षा संस्कार पहले कहे चारों संस्कारों को सार्थकता प्रदान करते हुए -

(1) अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी सहित

(2) स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान

(3) प्रतिभा और व्यक्तित्व में संतुलन का उदय ।

(4) व्यवहार में सामाजिक (धार्मिक) तथा व्यवसाय में स्वावलम्बी प्रमाणित होने के रूप में, मानवीय संस्कार सार्थक होता है ।

फलस्वरूप सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह सहजता से संपन्न होता है । साथ ही मानवीय संस्कृति और सभ्यता स्वाभाविक रूप में सम्पन्न होती है । इसका आधार है अखंड समाज में भागीदारी, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी। इस प्रकार मानवीय शिक्षा संस्कार पूर्वक, पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित होना, सहज है ।

ज्ञानेन्द्रिय - कर्मेन्द्रिय क्रियाएं (45 से 64)

45. मृदु-कठोर - 46. वहन-संवहन

छः प्रकार की रूचियाँ जीभ के संयोग में आई वस्तु चाहे तरल, विरल, ठोस क्यों न हो, परिणाम स्वरूप ही पहचानना होता है। हर जागृत मानव संवेदनाओं के प्रयोजनों को स्वस्थ शरीर के प्रयोजनों के लिए पहचाने रहना स्वाभाविक रहता है ।

47. शीत/उष्ण - 48. पोषण

49. खट्टा - 50. पोषण

51. मीठा - 52. पोषण

53. चरपरा - 54. पोषण

55. कड़ुवा - 56. पोषण

57. कसैला - 58. पोषण

59. खारा - 60. पोषण

61. सुगन्ध/दुर्गन्ध - 62. प्रश्वसन/विश्वसन

63. सुरूप/कुरूप - 64. अपनापन/परायापन

परिभाषा : संवहन - मृदु :- (1) स्पर्शेंद्रिय से कम भार व दबाव को सहने वाली वस्तुएं । (2) संकुचन पूर्वक वहन करने वाली वस्तुएं ।

कठोर :- स्पर्शेंद्रिय से अधिक भार व दबाव को सहने वाली वस्तुएं । पूर्णता के वेदना सहित, गति वहन करना ।

पोषण :- इकाई + अनुकूल इकाई ।

शोषण :- ईकाई - प्रति अनुकूल इकाई ।

मनुष्य में जिव्हा (जीभ) से, हर प्रकार की रूचियों को पहचानता है। नाक से गंध को, सुगन्ध-दुर्गन्ध भेद से, स्पर्श से कठोर-मृदु के भेद से, पहचानना होता है । कानों से भी कठोर - मृदु भाषा को, आंखों से रूप-कुरूप को पहचाना जाता है । आंख, कान, नाक, जिव्हा, स्पर्श से प्राप्त संयोग से, ऊपर वर्णित नामों से इंगित अर्थ प्रत्येक जीवन्त मनुष्य में होना, पाया जाता है ।

शरीर रचना, रासायनिक द्रव्यों से रचित रचना है । शरीर रचना कार्य विधिवत अर्थात् वंशानुषंगीय रूप में गर्भाशय में संपन्न होना पाया जाता है । मनुष्य शरीर भी वंशानुषंगीय विधि से रचना पूर्वक स्पष्ट है, जिसका विरचना होना भी स्पष्ट है । इस प्रकार जीवों का शरीर, वनस्पतियों की रचनाएं अस्तित्व सहज रूप में सम्पन्न हुई हैं । यहां मनुष्य से सम्मिलित अध्ययन है । सम्पूर्ण प्राण कोषाएं स्पंदनशील रहती हैं । प्रत्येक कोषा अपने अनुकूल रसायन रसग्राही और विरल (वायु) द्रव्यग्राही होती है । इस सामान्य स्पष्टता से यह सर्वविदित होता है कि शरीर के सम्पूर्ण अंग अवयव विशेषकर रसायन रचना है । ऐसी प्राण कोषाएं अस्तित्व में, पूरकता उदात्तीकरण विधि से, सह-अस्तित्व सहज रूप में स्पष्ट हैं।

ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों की रचनाएं एक संयुक्त अभिव्यक्ति है। इसी क्रम में जिव्हा एक रासायनिक रचना है । उसके संयोग में

जो द्रव्य समीचीन होता है वह रासायनिक, भौतिक ही हो पाता है। ऐसे संयोग में जिव्हा के साथ, जीवन्तता वर्तमान रहती है या जब तक जीवन्तता रहती है तब तक शब्द, स्पर्श आदि ज्ञानेन्द्रियों व हाथ, पैर आदि कर्मेन्द्रियों से ऊपर कहे सभी परिणामों का नाम दिया जाना, मानव सहज कार्य है । अस्तु जीवन, जिव्हा के संयोग से आई हुई घटना के परिणामों का नाम है - खट्टा, मीठा, खारा, कडुवा, कसैला, तीखा, मानव परम्परा में प्रचलित है । यह एक सहज घटना है कि जीवन्त जिव्हा संयोग में आया हुआ द्रव्योद्देयी परिणाम होते हैं । इसी प्रकार कान में शब्दों का संयोग, दो प्रकार के परिणाम का भाषाकरण है । वह है कठोर शब्द और सार्थक शब्द ।

नाक के संयोग में आए हुए द्रव्यों का पहचान सुगन्ध, दुर्गंध रूप में है । स्पर्श के संयोग से आया हुआ द्रव्य, वस्तुओं का दो परिणाम पहचाना गया है जो मृदु और कठोर रूप में है । चक्षु से भी रूपों का, प्रतिबिंब संयोग होता हुआ सुरुप-कुरूप में वर्णन होता है । ज्ञानेद्रियों के कार्यों की स्वीकृति है ।

पहले कहे अनुसार, सभी इंद्रियों का जागृत जीवन कार्य का अर्थ, समझदारी के रूप में स्पष्ट होता है । समझदारी जागृत जीवन स्वत्व है । शरीर तंत्र सहित सभी अंग अवयवों में, समझदारी का स्थान नहीं हैं, जबकि प्रत्येक मनुष्य में समझदारी से ही सभी कार्य-व्यवहार विन्यास सार्थक होता है ।

मनुष्य में जागृति सहज समझदारी का प्रमाण, जानने-मानने का तृप्ति बिंदु है । प्रत्येक मनुष्य जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन व मानवीयतापूर्ण आचरण सहज समझ पर विश्वास करता है । अन्यथा अपनी समझ पर विश्वास नहीं करता है । सम्मिलित रूप में अंग-अवयव परस्परता सहित रचना-विरचना क्रम में सम्पूर्ण भौतिक

रासायनिक इकाईयां कार्यरत तथा वर्तमान हैं । मनुष्य शरीर, अन्य जीवों का शरीर और वनस्पतियां इसी धरती के रासायनिक-भौतिक वैभव के रूप में हैं, जिनमें रचना, विरचना कार्य संपन्न होता है ।

जीवन को तात्विक रूप में समझने की जिज्ञासा हो; ऐसी स्थिति में परमाणु में होने वाली विकास प्रक्रिया, उसके संक्रमण वैभव को भी, जो चैतन्य इकाई के रूप में प्रतिष्ठित है, को सहज ही अध्ययन, अवधारणा में लाना एवं अनुभव करना आवश्यक है । फलस्वरूप जीवन संचेतना (संज्ञानशीलता, संवेदनशीलता) सहज वैभव पर विश्वास होना पाया जाता है । जीवन संचेतना, प्रत्येक मनुष्य में संपन्न होने वाली, जानने, मानने पहचानने, निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित है । जीवन क्रिया अक्षय बल, अक्षय शक्ति के रूप में, पांच वर्गों में दस क्रियाएं प्रत्येक व्यक्ति में ज्ञात हैं । जैसे चयन-आस्वादन, विश्लेषण-तुलन, चित्रण-चिंतन, बोध-संकल्प, और अनुभव तथा प्रामाणिकता - ये दस क्रियाएं हैं। जिसको निरीक्षण, परीक्षण पूर्वक हम समझते हैं । **अस्तु, जीवन-ज्ञान के फलस्वरूप हर मानव में स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा व व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक तथा व्यवसाय में स्वावलम्बी, अखंड-समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी सम्पन्न हो जाता है ।** जीवन ज्ञान के साथ अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण समाहित रहता है । जीवन ही शरीर को जीवन्त बनाए रखता है । जीवन में अविभाज्य क्रिया है । जीवन एक चैतन्य परमाणु, भार बंधन और अणु बंधन से मुक्त इकाई के रूप में होना पाया जाता है । ऐसे परमाणु में चतुर्थ परिवेशीय अशों का नाम है मन, क्रिया है चयन और आस्वादन या वृत्ति, चित्त, बुद्धि और आत्मा यह भी नाम ही है, इस के साथ ही कार्यरत रहना पाया जाता है, इसलिए मन को जीवन में अविभाज्य कार्य बताया गया । जीवन ही शरीर को जीवंत बनाये रखता है । जीवन ही

अनुभव रूपी संज्ञानशीलता को (जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण सहज अनुभव) मन, शरीरगत मेधस द्वारा प्रसारित करते हुए संकेतिक करते हुए जीवन जागृति के प्रमाणों को कार्य-व्यवहार में प्रमाणित करता है । इसी क्रम में जागृत जीवन सहज संचेतना का प्रमाण सहज सुलभ हो जाता है । प्रमाण मानव परम्परा में ही सम्पन्न हो पाता है । हर मानव में प्रमाण सहज अपेक्षा बना ही रहता है । ऐसे मन में प्रमाणित होने वाली क्रियाओं का आकलन किया गया है । यह सभी क्रियाऐं 64 संख्या में होना पाया गया है । इन 64 क्रियाओं को पहले एक-एक क्रिया की अपनी पहचान अध्ययन पूर्वक समझ में आने के उद्देश्य से स्पष्ट की जा चुकी है ।

॥ नित्यम् यातु शुभोदयम् ॥

जागृति जीवन के एक सौ बाइस आचरण

वृत्ति

जीवन विद्या क्रम में अर्थात जीवन ही, जीवन को, जीवन से, जीवन के लिये समझने के क्रम में जीवन सहज प्रक्रियाओं को जानना-मानना, तदनुसार पहचानना, निर्वाह करना एक जागृत जीवन सहज प्रक्रिया है । मन में 64 आचरण हैं । जिसमें से परावर्तन में 32 तथा प्रत्यावर्तन में 32 हैं । इस रूप में कुल 64 आचरणों को, चयन-आस्वादन सहज क्रियाओं के आधार पर स्पष्ट किया जा चुका है । एक ही निबन्ध में मन की दस क्रियाओं को, बीस आचरणों के रूप में स्पष्ट किया जा चुका है। इसमें मीठा, खट्टा आदि रूचियों के आधार पर, आवश्यकतानुसार, प्रत्येक व्यक्ति, हर आयाम में स्वनिरीक्षण पूर्वक प्रमाणित करता है । इस विधि से इसे स्पष्ट करने की प्रक्रिया को सम्पन्न किया गया है । मन के 64 आचरणों को प्रत्येक मनुष्य अपने में निरीक्षण पूर्वक परीक्षण करता है, यह संभव हो गया है । इसका प्रमाण हम स्वयं जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण सम्पन्न प्रत्येक नर-नारी होना है । ये सभी आचरण, मानव सहज, स्वीकृत आचरण हैं । मन, जीवन की एक अविभाज्य क्रिया है (अथवा अपरिहार्य क्रिया है) । इसी प्रकार जीवन सहज सभी क्रियाओं के प्रत्येक मनुष्य जीवन में प्रमाणित होने की संभावनाएं समीचीन हैं ।

इसीलिए मानवीयता पूर्ण आचरण, अस्तित्व-दर्शन और जीवन-ज्ञान सहज अविभाज्य अभिव्यक्ति क्रम में कही गई । जीवन में नित्य कार्यरत जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने, स्वीकार करने की क्रिया, जिससे हर क्रिया-प्रक्रिया को लक्ष्य के अर्थ में निर्धारित करने और फल परिणाम के प्रति जागृत रहने की क्रिया वृत्ति में, तुलन और विश्लेषण कार्य रूप में संपादित होता हुआ, देखने को मिलता है । देखने का तात्पर्य समझना है । सम्पूर्ण समझदारी ग्राहिता पूर्वक (अर्थात समझने के क्रिया-कलापों के आधार पर) ही संप्रेषणा, अभिव्यक्ति, प्रकाशन सहज परावर्तन क्रियाएं सम्पन्न होती ही रहती हैं । ऐसी जागृत सम्पूर्ण क्रियाएं, मनुष्य में ही प्रमाणित

होना पाई जाती हैं । इसी आधार पर वृत्ति में होने वाली विश्लेषण और तुलन क्रियाकलापों को 18 प्रकार से देखा गया है । जिसका परावर्तन प्रत्यावर्तन विधि से 36 आचरण होते हैं । इन क्रिया-कलापों को आगे, जीवन में जो अविभाज्य हैं, स्पष्ट किया गया है।

<u>वृत्ति में होने वाले 36 आचरण</u>

1. विद्या - 2. प्रज्ञा

परिभाषा : विद्या :- (1) जो जैसा है उसे वैसा ही विधिवत जानने, मानने, स्वीकार करने की क्रिया ।

प्रज्ञा :- परिष्कृति पूर्ण संचेतना । वस्तुगत सत्य, वस्तु स्थिति सत्य के प्रति अवधारणा एवं अनुभव मूलक गति और स्थिति सत्य में बोध एवं अनुभव मूलक गति है ।

मध्यस्थ दर्शन, मनुष्य और अस्तित्व को वर्तमान में प्रमाणित करने की चिंतन धारा है । यहां चिंतन का तात्पर्य साक्षात्कार पूर्वक प्रयोजन के अर्थ में प्रक्रियाओं को स्पष्ट करने से है । इस क्रम में, अस्तित्व और मानव ही, अध्ययन की वस्तु है । अस्तित्व, सत्ता (साम्य ऊर्जा) में सम्पृक्त प्रकृति के रूप में वर्तमान है । फलस्वरूप विकास क्रम में और रचना क्रम में मनुष्य और प्रकृति सहज ही अध्ययन गम्य हुए हैं । जिसमें से मानव के अध्ययन में, जीवन और शरीर का स्पष्ट रूप, कार्य व्यवहार, व्यवस्था व प्रयोजन समझ में आता है । यह अध्ययन गम्य हुआ है । जिसमें से जीवन ही विद्या का केन्द्र बिंदु है । जिसमें विद्या का तात्पर्य समझदारी से है । जीवन ज्ञान, जीवन जागृतिपूर्वक, परिपूर्ण होता है । जीवन जागृति, जानने-मानने के क्रम में सहज रूप में प्रमाणित होती है । जीवन प्रकाश में ही अस्तित्व दर्शन, सहज संभव है । जागृत जीवन प्रकाश ही न्याय, धर्म, सत्य दृष्टि के रूप में, क्रियाशील रहता है । इस प्रकार सह-अस्तित्व ही सम्पूर्ण विद्या का स्वरूप हुआ । अस्तित्व में मानव अविभाज्य है । हर मानव जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में वर्तमान है । मानव समग्र अस्तित्व को, जीवन को, शरीर को जानने, मानने पहचानने, निर्वाह करने के रूप में अभिव्यक्त होने वाला है ।

ऐसी जानने, मानने, पहचानने की क्रिया जीवन में संपादित होती है। निर्वाह रूप में अभिव्यक्ति-क्रिया, मानव परम्परा में शरीर के द्वारा सम्पन्न होती है। इस प्रकार जीवन ही - ज्ञाता होना, सहज रूप में समझ में आता है । ज्ञेय (जानने योग्य) सम्पूर्ण अस्तित्व है । **अस्तित्व कैसा है ?** - यह ज्ञान, सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में, सम्पूर्ण मानव को वर्तमान में, समझ में आता है । इस प्रकार ''अस्तित्व कैसा है ?'' - का उत्तर सहज है । यह अस्तित्व, सह-अस्तित्व के रूप में ही है । क्योंकि सत्ता में संपृक्त प्रकृति ही, अस्तित्व समग्र है। यह सह-अस्तित्व का मूल रूप है । सत्ता में संपृक्त, जड़-चैतन्य प्रकृति रूपी सह-अस्तित्व ही, परमाणु में विकास, विकास क्रम में गठन पूर्णता, (चैतन्य इकाई, जीवन पद) जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम, जीवन जागृति क्रिया पूर्णता व आचरण पूर्णता, रासायनिक भौतिक रचना-विरचना निरंतर क्रिया है । इस प्रकार जीवन और ज्ञान का सम्पूर्ण स्वरूप समझ में आता है । **अस्तु, जीवन ही ज्ञाता है, सह-अस्तित्व ही ज्ञेय है। सहअस्तित्व में अनुभूत होना ही ज्ञान है । अतः जीवन = ज्ञाता = दृष्टा, सह-अस्तित्व = दृश्य, सह-अस्तित्व में अनुभव = ज्ञान = दर्शन ।**

जागृत जीवन दृष्टि ही दर्शन का सूत्र है । जीवन में दृष्टियां प्रिय, हित, लाभ, न्याय-धर्म-सत्य को परिशीलन करने के क्रम में कार्यरत हैं । जिसमें से प्रिय-हित लाभ दृष्टियां इन्द्रिय सन्निकर्ष होने के आधार पर भ्रमात्मक होना अथवा भ्रमपूर्वक ही प्रिय-हित-लाभ को सुख का आधार मानना मूल्यांकित हो चुका है । अतएव जीवन, जागृति पूर्वक, न्याय-धर्म-सत्य पूर्ण दृष्टियों से स्वयं को और अस्तित्व को देखने योग्य होता है । **देखने का तात्पर्य समझने से है । समझने का तात्पर्य, अनुभव से है। अनुभव का तात्पर्य प्रमाणों से है । प्रमाणों का तात्पर्य जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने से व उसकी तृप्ति-बिन्दु की अभिव्यक्ति से है ।**

मनुष्य अपनी दृष्टा पद प्रतिष्ठा में, देश, काल, दिशा को, सहज ही पहचानने व निर्वाह करने योग्य है । रासायनिक-भौतिक रचना में जो विस्तार दिखाई पड़ता है और एक रचना तथा दूसरी

रचना की परस्परता में दिखने वाली दूरी पर, सह-अस्तित्व के रूप में देश है । इसका तात्पर्य यह है कि सत्ता में संपृक्त प्रकृति ही सह-अस्तित्व है । सत्ता रूप साम्य ऊर्जा परस्पर इकाईयों अथवा रचनाओं के बीच दिखने वाली दूरी है और सत्ता हर वस्तु में पारगामी परस्परता में पारदर्शी है । इस प्रकार **देश,** स्पष्ट हुआ । ऐसे 'देश' में, रचना और इकाईयों की परस्परता में दिशा की स्थिरता है । क्योंकि ऊर्जा स्थिर है । सम्पूर्ण रचना और इकाइयां स्थिति और गति सहित व्यवस्था रूप में निश्चित और वर्तमान हैं । इसे प्रक्रिया के रूप में इकाई अथवा रचना में किसी एक ध्रुव बिंदु के आधार पर, अनेक कोणों में निकाला जाता है । ऐसे प्रत्येक कोण, किसी एक दिशा सूचक, दूसरी विधि से, किसी एक की नैसर्गिकता में (अर्थात किसी एक के सभी ओर जो इकाईयां हैं वह सब) उन उनके कोणों से, दिशा के रूप में वांछित इकाई की स्थिति की दिशा को स्पष्ट कर देता है ।

इस प्रकार दिशा परस्पर देश; उसमें भी परस्पर वस्तु के आधार पर स्पष्ट हुई है । काल के सम्बन्ध में - **''क्रिया की अवधि = काल''** । जबकि क्रिया की निरंतरता रहती ही है । किसी एक निश्चित क्रिया की अवधि को पहचानने के उपरान्त काल की गणना की जाती है । काल का ज्ञान, क्रिया के आधार पर होते हुए क्रिया की निरंतरता को भूलने के आधार पर अथवा भूलाने के आधार पर (अथवा न जानने के फलस्वरूप) काल के सम्बन्ध में अनिश्चितता बनी रहती है । यह भी मानव के भ्रमित रहने का साक्षी है । काल की अभिव्यक्ति, क्रिया करती है । प्रत्येक रचना व इकाईयां क्रियाशील हैं । अस्तु यह तीनों देश, काल, दिशा की संयुक्त अभिव्यक्ति वस्तु-स्थिति सत्य के रूप में स्पष्ट है । इस प्रकार वस्तु स्थिति सत्य की अभिव्यक्ति, मानव परम्परा में, अनुभव मूलक विधि से प्रमाण है । इसी प्रकार स्थिति सत्य, वस्तु गत सत्य, अनुभव मूलक प्रणाली से प्रमाणित होता है ।

अस्तित्व में मनुष्य दृष्टा होने के कारण ही (यह) जानने-मानने, पहचानने निर्वाह करने की क्रिया करता है । जिसमें से पहचान निर्वाह क्रिया, मनुष्येत्तर प्रकृति में भी नियम, नियंत्रण व संतुलन के

अर्थ में स्पष्ट होती है। जानने-मानने की क्रिया, मानव में ही देखने को मिलती है । ऐसे मौलिक कार्य वश, मानव-विद, मानव का विद्वान होना सहज है । **अस्तु, जीवन-जागृति उसकी निरंतरता ''विद्या'' है । उसे अभिव्यक्त करना प्रज्ञा है।**

प्रज्ञा की सार्थक अभिव्यक्तियां विज्ञान सम्मत विवेक, विवेक सम्मत विज्ञान है । **विवेक का तात्पर्य प्रयोजनों से है । विज्ञान का तात्पर्य विश्लेषणों से है ।** सामान्य रूप में मनुष्य प्रयोजन परिवार, समाज, व्यवस्था, शिक्षा, संस्कार, संविधान, संस्कृति, सभ्यता, जीव-वनस्पति, पदार्थ, ग्रह गोल, सह-अस्तित्व इन सबका प्रयोजन सम्मत विश्लेषण, विश्लेषण सम्मत प्रयोजनों को जानना-मानना विद्वता की अभिव्यक्ति है । संप्रेषित करना, पहचानना- निर्वाह करना प्रज्ञा है ।

3. कीर्ति - 4. विचार (वस्तु)

परिभाषा : कीर्ति :- वर्तमान में, विकास और जागृति के संदर्भ में की गई, श्रेष्ठता व सुलभता की प्रामाणिक प्रस्तुति ।

वस्तु :- 1. सह-अस्तित्व सहज प्रकाशन संप्रेषणा अभिव्यक्ति। 2. वास्तविकता को प्रमाणित करने वाली इकाई और सत्ता ।

मानव में कीर्ति, जीवन तृप्ति का प्रमाण है । वस्तु, अनुभव व प्रमाणों को, तर्क संगत (प्रयोजन सहित विश्लेषण युक्त) प्रणाली से संबद्ध करना और स्पष्ट करना है ।

जीवन जागृति, अनुभव-मूलक अभिव्यक्ति सहज प्रमाण है । वस्तु (मूलतः विवेक सम्मत विज्ञान) की अपने में सुलभता, मानव कुल के लिए एक आवश्यकता है । यह अनुभव मूलक विधि से सार्थक होना समझ में आया है । आज की स्थिति में विज्ञान, ह्रास-नियम, यन्त्र-प्रमाण के रूप में है जबकि उसे, विकास-नियम और व्यवहार प्रमाण के रूप में होना चाहिए । जो अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतनपूर्वक ही हमें परस्परता में स्थित, प्रत्येक एक दूसरे के

लिए पूरक होना विकास और जागृति नियम के रूप में समझ में आया है ।

विकास-नियम, अस्तित्व में पूरकता के रूप में है । पूरकता विधि से ही, सभी प्रकार के आवेशों का शान्त होना देखा जाता है। इसका साक्ष्य यही है कि यह धरती, अपने आप में समृद्ध है । स्वभाव गति में है । ऐसी समृद्ध धरती पर मानव का अवतरण और परम्परा है। इस धरती के समृद्ध होने का तात्पर्य है - इस धरती में जितने भी पदार्थ हैं, उनका स्वभाव गति में कार्यरत होना, जो भौतिक वस्तुओं के रूप में भी वर्तमान हैं । जिसके फलस्वरूप योग व संयोग होना, रासायनिक रचना-विरचनाएं समृद्ध होती हैं। यह सब क्रियाकलाप, स्वभाव गति प्रतिष्ठा में ही सम्पन्न होना पाया जाता है। जीवन पद में परमाणु का संक्रमित होना भी, स्वभाव गति में ही होता है।

संक्रमण एक ऐसा बिन्दु है जिसे समय का कालखंड, उस अवधि को गिन नहीं पाता है । किंतु अति सूक्ष्मतम कालखंड में ही संक्रमण क्रिया, संक्रमित हो पाती है । ऐसा मानव कल्पना में आता है। गठनपूर्णता रूपी घटनावश, चैतन्य पद में संक्रमित परमाणु, जीवन पद - प्रतिष्ठा को प्राप्त किया रहता है । ऐसे जीवन और शरीर के योगफल में मनुष्य परम्परा के रूप में वर्तमान है ।

मनुष्य में ही, जीवन जागृति को व्यक्त करने योग्य शरीर भी सुलभ हुआ है । मानव, प्रकृति सहज रूप में, जागृति पूर्वक सुखी (समाज न्याय सम्पन्न), समाधानित (सार्वभौम व्यवस्था सम्पन्न), समृद्धि सम्पन्न, प्रामाणिकता पूर्ण (स्वानुशासन सम्पन्न) विधि से मानव परम्परा का वैभवित होना ही जागृति पूर्वक कीर्ति सम्पन्न होना है । **मानवीयता पूर्ण जीने की कला के लिए आवश्यकीय मानसिकता से सम्पन्न होना ही वस्तु का तात्पर्य है**

5. निश्चय - 6. धैर्य

परिभाषा : निश्चय :- (1) लक्ष्य, दिशा और प्रयोजन की ओर गति । (2) सत्यता पूर्ण विचार की निरंतरता ।

धैर्य :- न्यायपूर्ण विचार में निष्ठा एवं उसकी निरंतरता ।

मानव में निश्चय मूलतः स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान है । जिसके प्रमाण में प्रतिभा व व्यक्तित्व में संतुलन, व्यवहार में सामाजिक (समाधान पूर्ण) व व्यवसाय में स्वावलम्बन है। ऐसी सहज अभिव्यक्ति मानव के निश्चय व धैर्य का प्रमाण है ।

मानव का अपने स्वत्व रूपी मानवीयता के प्रति जागरूक होना, धैर्य सम्पन्न होने के लिए परम आवश्यक है । अस्तित्व में प्रत्येक एक, अपने ''त्व'' सहित व्यवस्था है - इस कारण मानव का मानवीयतापूर्ण पद्धति - प्रणाली - नीति पूर्वक व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदार होना सहज है । प्रत्येक व्यक्ति, निश्चय और धैर्य सम्पन्न होना चाहता है । मानव परम्परा, (प्रधानतः शिक्षा, संस्कार, संविधान व स्वराज्य व्यवस्था) में मानवीयता को पहचानने की आवश्यकता है ।

मानवीयता अपने कार्य-व्यवहार रूप में, वृत्ति (ऐषणात्रय) और निवृत्ति (स्वतंत्रता, स्वानुशासन) का अविभाज्य वर्तमान है । मूलतः वृत्तियां, जीवन शक्तियों का अथवा जीवन प्रभाव क्षेत्र का, प्रत्यक्ष प्रभावीकरण है। मनुष्य का सम्पूर्ण कार्य कायिक, वाचिक व मानसिक कृत-कारित व अनुमोदित प्रभेदों के रूप में सर्वेक्षित तथ्य है । जागृत मनुष्य के कायिक, वाचिक क्रिया कलाप के मूल में, आशा, विचार, इच्छा, ऋतम्भरा व प्रमाणिकता का होना पाया जाता है । यह समग्र रूप ही जागृत मानसिकता का तात्पर्य है । अस्तु, मानसिकता सहित ही प्रत्येक मनुष्य, सम्पूर्ण कार्य-कलापों को सम्पन्न करता है । ऐसे कार्यकलाप स्वयं व्यवस्था है व समग्र व्यवस्था में भागीदार हैं । इस रूप में कार्यरत होने की स्थिति में, मानवीय प्रवर्तन होना पाया जाता है । यह तभी सहज संभव होता है जब मानव परम्परा में मानवीयता को पहचानने, निर्वाह करने, व मूल्यांकन करने में, लोकव्यापीकरण हो गया हो । लोकव्यापीकरण का कार्यक्रम, मानवीय शिक्षा, मानवीय संस्कार और मानवीय राज्य-व्यवस्था, मानव परम्परा में सुलभ हो गई हो । इसका प्रमाण यही है (अर्थात यह जब कभी भी, मानव के लिए सुलभ होगा) कि उस स्थिति में

अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था प्रमाणित होगी ।

अभी तक मानव ने समुदाय चेतना तक ही अपने को जागृति क्रम में भ्रमित रूप में पाया है । समुदाय चेतना में, अपने पराए की दीवाल बनी ही रहेगी। ऐसी दीवाल जब तक रहेगी, तब तक युद्ध-शोषण, द्रोह-विद्रोह की प्रक्रियाएं बनी ही रहेंगी । ऐसी प्रक्रियाएं अपने आप में अमानवीयता का द्योतक हैं । अमानवीय मानसिकता पूर्वक, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी संभव नहीं है। इसलिए **अमानवीयता से मानवीयता में संक्रमित होना ही आज की आवश्यकता है ।** अमानवीय चार प्रवृत्तियां विषय, संग्रह, सुविधा और भोग में ग्रसित रहना पाया जाता है ।

मानवीय दृष्टियां न्याय, धर्म (सर्वतोमुखी समाधान) तथा सत्य हैं । इसी के आधार पर अर्थात जीवन प्रकाश प्रभावशील होने की स्थिति में ही समाज न्याय, सार्वभौम व्यवस्था और प्रामाणिकता सहज सुलभ हो जाती है। यही अमानवीयता से मानवीयता की ओर गति भी है । यही मानव की वांछा, आशा व आकांक्षा है ।

सम्बन्धों को पहचानने व मूल्यों का निर्वाह करने के क्रम में, समाज न्याय का उभय तृप्ति के रूप में लोकव्यापीकरण होता है । तभी मानव, परिवार व्यवस्था के रूप में, जीने की कला को, अभिव्यक्त कर पाता है । ऐसी स्थिति में सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी कर पाता है। सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र, परिवार-मूलक विधि से सूत्रित होकर, ग्राम-स्वराज्य में सार्वभौम स्वराज्य व्यवस्था का छोटा रूप प्रमाणित होता है। यही **''परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था''** होने का सूत्र और संभावना है ।

अभी तक इस पृथ्वी पर जितनी भी राजगद्दियां और धर्म गद्दियां हैं, वे रहस्य से मुक्त नहीं हो पाईं हैं । जिस मानसिकता से ये गद्दियां स्थापित हुई हैं, उस मानसिकता के चलते रहस्य से मुक्त नहीं हो सकती और इससे शक्ति केन्द्रित शासनवाद में परिवर्तन नहीं हो पाता। **जबकि सह-अस्तित्व में पूरक विधि और सार्वभौम व्यवस्था (अथवा समग्र व्यवस्था) नित्य वर्तमान है ।** दूसरे शब्दों

में, सह-अस्तित्व ही पूरक विधि से समग्र व्यवस्था के रूप में वर्तमान है । मनुष्य ने ही अपनी कर्म-स्वतंत्रता व कल्पनाशीलता वश अस्तित्व सहज व्यवस्था को अनसुनी, अनदेखी करते हुए, सभी प्रकार से प्रताड़ित होने का, ताना बाना बना लिया है । जैसे - शासन करने का हजारों वर्षों का प्रयास सदा पाश्विक रहा ।

इसका प्रमाण है कि परस्पर शासन कार्य से बैर बढ़ते ही रहा। परिवर्तन की आवश्यकता, हर परिवर्तन के अनंतर भी बनी रही। युद्ध के अनंतर युद्ध की तैयारियां, आश्वासनों के अनंतर आश्वासन की तैयारियां, मतभेदों के अनंतर मतभेद, हर समझौते के अनंतर उसी में प्रश्न चिन्ह, इसी के साथ संग्रह के अनंतर पुनः संग्रह, सुविधा के अन्तर पुनः सुविधा तथा भोग के अनंतर पुनः भोग इसके प्रश्न चिन्ह बन जाते हैं । यह अव्यस्था का द्योतक है।

निश्चय व धैर्य, सह-अस्तित्व, समाधान, अभय, समृद्धि, व्यवस्था में भागीदारी, मानव मूल्य, समाज मूल्यों के निर्वाह, यह सब मानव में सहजता वश सुलभ होता है । परस्पर सम्बन्धों को पहचानने के रूप में, सह-अस्तित्व प्रमाणित होता है । सह-अस्तित्व के आधार पर विश्वास होना, जागृत जीवन सहज अभिव्यक्ति है । स्वयं एक समग्र व्यवस्था में भागीदारी, समाधान के रूप में होना, सह-अस्तित्व व विश्वास के योगफल में सम्पन्न होता है ।

प्रत्येक परिवार अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने योग्य है, इसलिए स्वराज्य व्यवस्था का गति रूप, न्याय सुलभता, उत्पादन- सुलभता, विनियम सुलभता है । इस प्रकार मानव के लिए, अपने निश्चय और धैर्य को, वर्तमान में प्रमाणित करने का स्वरूप आवश्यकता और अवसर स्पष्ट है।

निश्चय, मानसिक रूप में समाधान, समृद्धि, अभय व सह-अस्तित्व के प्रति विश्वास और अनुभव मूलक विधि से स्वीकार है । जो निष्ठा के रूप में व्यक्त होता है । उसके कार्य रूप को ऊपर (अर्थात शरीर और जीवन का संयुक्त रूप) स्पष्ट किया जा चुका है। निश्चय और धैर्य, जीवन रूप में जागृति ही है । जागृति का

तात्पर्य जानना-मानना, पहचानना व निर्वाह करना ही है । इस कार्य का जीवन गत स्वरूप, जागृति है ।

अस्तित्व में धैर्य और निश्चय, अपने में अस्तित्व सहज नित्य वर्तमान और विकास की निश्चयता के रूप में समझा जाता है । इस प्रकार धैर्य व निश्चय सह-अस्तित्व सहज, विकास सहज, जीवन सहज व जीवन-जागृति सहज होना अध्ययनगम्य है । व्यवस्था व व्यवस्था में भागीदारी के लिए यह विश्वास आवश्यक है ।

प्रत्येक मनुष्य को परिवार और परिवार कार्यों की निश्चयता की अपेक्षा व आवश्यकता है । परिवार स्वयं में अखंड समाज एवं सार्वभौम व्यवस्था का बीज और स्रोत रूप है ।

व्यवस्था का प्रमाण प्रत्येक व्यक्ति में वर्तमान में विश्वास है । उसकी अभिव्यक्ति समाज है । समाज गति, सम्बन्धों व मूल्यों को निर्वाह करने के मूल में देखने को मिलती है । यह प्रत्येक मनुष्य की सहज अभीप्सा है क्योंकि यह जीवन जागृति गत क्रिया है । जीवन में ही आशा, आकांक्षा और इच्छाएं प्रसवित व व्यवहार में फलित होना पाई जाती है । परिवार की निश्चयता सम्बन्धों में निहित है और उसके निर्वाह में धैर्य प्रमाणित होता है। यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वागतीय है ।

7. शांति - 8. दया

परिभाषा : शांति :- (1) इच्छा एवं विचार की निर्विरोधिता (2) समाधान पूर्ण विचार की प्रतिक्रिया ।

दया :- पात्रता के अनुरूप वस्तु, योग्यता प्रदायी क्षमता ।

शांति का स्वरूप, अस्तित्व में, सत्ता में संपृक्त प्रकृति स्वभाव गति के अर्थ में पहचाना जाता है । इसके नामकरण के मूल में ''सह-अस्तित्व'' है । इससे यह पता चलता है कि सह-अस्तित्व में ही शान्ति है । जीवनगत रूप में शांति को देखें, चित्त और वृत्ति के बीच संगीत का स्वरूप है । यह निरंतर उत्साह, उल्लास, न्याय व समाधान का स्रोत है । व्यवस्था में यही जागृत जीवन पद का वैभव

मनुष्य को, परिवार को उत्सवित बनाए रखता है।

प्रत्येक मनुष्य शांति व उत्सवपूर्वक, दयापूर्ण कार्य-व्यवहार को सम्पन्न करने में समर्थ होता है । दया का मुख्य कार्य विकास क्रम और जागृति सहज यथा स्थिति को बनाए रखना है । यही जीने देना ही दया है। जीने देने का तात्पर्य भी, जो जैसा है, उसको उसी विकास के बिंदु में सुरक्षित करना है । दया की दूसरी स्थिति और कार्य-अविकसित के विकास में सहायक होना है । इस प्रकार से दोनों कार्य शांति पूर्वक ही सम्पन्न होना मनुष्य में प्रमाणित है । जो लोग अभी तक इस प्रकार के कार्यों को करने में सफल हुए हैं, वे सब शांति सहज जीवन को जिए हैं ।

सम्पूर्ण सम्बन्धों में दया का प्रवाह होता है । मनुष्य, मनुष्य के साथ, सम्बन्धों को जब पहचानता है तब सेवा, अर्पण-समर्पण करने की उमंग अपने आप उमड़ती है । शांतिपूर्ण मानसिकता के धरातल पर ही ऐसा उद्‌गम होना पाया जाता है । यह केवल व्यक्ति में ही नहीं, परिवार समुदाय तक भी ऐसे कार्य-कलापों को देखा गया है । उल्लेखनीय तथ्य यह है कि प्रत्येक मनुष्य शान्ति कामी और गामी है। गामी होने के लिए किसी परिवार, शिक्षा, राज्य व धर्म संस्थाओं में अपने को अर्पित करता है ।

9. कृपा - 10. करूणा

परिभाषा : कृपा :- योग्यता, वस्तु के अनुरूप पात्रता उपलब्ध कराने वाली क्षमता ।

करूणा :- (1) विकास के लिए उत्प्रेरित करना । (2) पात्रता और योग्यता, वस्तु उपलब्ध कराने में सहायक होना ।

दया, कृपा, करूणा - जागृत मनुष्य का सहज स्वभाव है । प्रत्येक जागृत मनुष्य सहज रूप में ही स्वानुशासित रहता है । दया का कार्य रूप पहले स्पष्ट किया जा चुका है और भी स्पष्ट करने के क्रम में यह है कि ऐसा कार्य जिससे हम, पात्रता के अनुरूप वस्तु को उपलब्ध कराते हैं, वह दया है। वस्तु के अनुरूप पात्रता न हो,

ऐसी स्थिति में उनको पात्रता प्रदान करना अथवा पात्रता की स्थापना करना कृपा है । यदि पात्रता व वस्तु दोनों न हो, जिसकी उसे आवश्यकता हो, ऐसी स्थिति में उनको वह दोनों सुलभ करा देना, करूणा है । इस प्रकार कृपा और करूणा की प्रयोजनीयता समझ में आती है ।

कृपा-करूणा परम जागृति की अभिव्यक्ति है । यहां प्रधान बिंदु यह है कि मानव ही अस्तित्व में जागृति पूर्ण, सन्तुलित नियंत्रित हो पाता है। जबकि मनुष्येतर जीव प्रकृति वंशानुषंगीय विधि से अन्न वनस्पतियां बीजानुषंगीय विधि से और सम्पूर्ण भौतिक वस्तुएं परिणामानुषंगीय विधि से नियमित, नियंत्रित, संतुलित होना, वर्तमान में पाया जाता है । मनुष्य जागृति पूर्वक ही संतुलित नियंत्रित, नियमित होना और न्याय, धर्म, सत्यपूर्वक प्रमाणित होना पाया जाता है । जागृति प्रमाण को प्रत्येक व्यक्ति अपने में परीक्षण कर सकता है।

मनुष्य में जागृति जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के रूप में स्पष्ट है । जानने, मानने के लिए मूलतः अस्तित्व ही है । अस्तित्व ही अपने आयामवत् सह-अस्तित्व, विकास क्रम, विकास, जीवन, जीवनी क्रम, जीवन जागृति क्रम, जीवन-जागृति, और रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना के रूप में समीचीन है । प्रत्येक मनुष्य जीवन व शरीर का संयुक्त रूप है । पहचानने व निर्वाह करने के लिए मानव तथा नैसर्गिक सम्बन्ध व मूल्य हैं ।

नैसर्गिक सम्बन्ध जलवायु, धरती, हरियाली, अनंत ग्रह, गोल, नक्षत्र हैं। ग्रह, गोल, नक्षत्रों एवं सूर्य की किरणों से उपकृत यह धरती अपनी समृद्धि के साथ प्रमाणित है । इस धरती पर मनुष्य का अवतरण जीव-वनस्पतियों से समृद्ध होने के उपरान्त ही सहज हुआ है ।

मनुष्य एवं अन्य प्रकृति में मौलिक विशेषता यह है ।

(1) मानवीय परम्परा में जीवन अपनी जागृति को, शरीर द्वारा

व्यक्त कर सकता है, करना चाहता है ।

(2) मनुष्य ही कर्म स्वतंत्र - कल्पनाशील है ।

(3) भ्रमित रहते तक मनुष्य ही कर्म करने में स्वतंत्र, फल भोगते समय परतंत्र है ।

(4) मनुष्य ही मनाकार को साकार करने वाला, मनः स्वस्थता का आशावादी है ।

(5) मनुष्य ही जागृति पूर्वक अपने स्वत्व स्वतंत्रता, अधिकारों को परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और अखंड समान रूपी सार्वभौम व्यवस्था के रूप में प्रमाणित करता है ।

इन पांचों प्रकार से मौलिकताओं की सहजतावश, जागृति पूर्वक ही मानव का संतुलित, नियंत्रित, नियमित होना, स्वानुशासन, स्वयं व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी, सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह सहज उत्साह, स्वयं स्फूर्त उत्सव के रूप में आचरित होगा। ऐसा हर मनुष्य होना चाहता है।

जागृत मनुष्य में दया, कृपा, करूणा, सहज ही प्रवाहित होती है । जो स्वयं सुख, सुन्दर, समाधान है । ऐसी जीवन शैली व परम्परा को, मानव के लिए अनुसंधान करना आवश्यक रहा है । वह सुलभ हो गया है । इसके सर्व सुलभ होने के लिए ही मानवीय शिक्षा-संस्कार परम्परा, मानवीय संविधान, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था, अखंड समाज और उसकी निरंतरता आवश्यक है । यह पूर्णतया कृपा, करूणा पूर्ण स्वभाव का ही कार्यक्रम है ।

11. दम - 12. क्षमा

परिभाषा : दम :- (1) ह्रास की ओर जो आसक्ति है, उसकी समापन क्रिया । (2) भ्रम, भय और अपव्ययता से मुक्ति। और जागृति पूर्ण प्रकृति में निष्ठा ।

क्षमा :- विकास के लिए की जाने वाली सहायता के समय

उसके ह्रास पक्ष से, अप्रभावित रहना ।

''दम'', अस्तित्व गत क्रिया के रूप में, सभी प्रकार के आवेशों से अथवा आवेशित गतियों से मुक्त रहकर स्वभाव गति प्रतिष्ठा में होने, के रूप में वर्तमान है । **अस्तित्व में स्वभाव गति प्रतिष्ठा के अनंतर इसके पूर्व में जो आवेश था, उसका संदर्भ और प्रभाव मिट जाने से है ।** भ्रमित मानव प्रकृति की सर्वाधिक स्मृतियां, मनुष्य के आवेशों, अत्याचार स्मृति सन्दर्भ के रूप में कार्य करता हुआ दिखता है । मानव में कर्म स्वतंत्रता, कल्पनाशीलता सदा ही क्रियाशील है । इन्हीं विकास क्रम में संयोगवश, सर्वाधिक सम्मति-असम्मतियों के मूल में विरोधाभासी स्मृतियां क्रियाशील रहती है । इस प्रकार अस्तित्व सहज रूप में पदार्थावस्था में आवेशों का सामान्य होने का कार्य परस्परता में स्पष्ट है। प्राणावस्था में संयोग-वियोग क्रम में ही रचना-विरचनाओं का होना स्पष्ट है । प्राणावस्था में आवेश का अर्थ ही निष्पन्न नहीं हो पाता । इसका तात्पर्य यही हुआ कि आवेश का सामान्यीकरण रासायनिक क्रिया प्रक्रिया के पहले ही, भौतिक क्रिया-कलाप में ही सामान्य अथवा स्वभाव गति प्रतिष्ठा हुई रहती है । क्योंकि समृद्ध पदार्थावस्था के योग संयोग से ही सम्पूर्ण रासायनिक प्रक्रिया और रचना-विरचनाओं का होना मनुष्य देख सकता है ।

जीवावस्था में शरीर और जीवन का संयुक्त रूप होने के फलस्वरूप, जीवों में कुछ स्मृतियां आंशिक रूप में सजातीयता को पहचानने, विजातीय व विरोधी जाति के जीवों को पहचानने के क्रम में सर्वेक्षित होती है ।

मानव में मानवत्व ही व्यवस्था सूत्र है एवं स्वयं में व्यवस्था तथा समग्र व्यवस्था में भागीदारी होने का ध्रुव है । दूसरा ध्रुव स्थिरता और निश्चयता पूर्ण अस्तित्व ही है । इन दोनों ध्रुवों के बीच में समग्र व्यवस्था में भागीदारी को और स्वयं ही प्रत्येक व्यक्ति एक व्यवस्था है, इस सहज सत्य को अध्ययन कर सकता है ।

मानव में मानवीयता ही उसकी स्वभाव गति है । वर्ग समुदाय

चेतना पर्यन्त, आवेशों की स्मृतियां बनी रहती हैं । यह परस्पर समुदायों के, ऐतिहासिक प्रभावन कार्यों के आधार पर बनी हुई हैं । **इससे यह भी ज्ञान हो जाता है कि एक समुदाय में सभी समुदाय, विलय नहीं हो सकते।** सभी समुदायों की अस्मिता बनी रहेगी । समुदाय परम्परा में दम और क्षमा का प्रमाण, ऐसी स्थिति में नहीं हो पाएगा । दम और क्षमा प्रत्येक मनुष्य के लिए आशित है । यह अखंड समाज परम्परा में ही प्रमाणित होना समीचीन है ।

दम और क्षमा, वह अद्‌भुत जागृत-जीवन सहज अभिव्यक्ति है, जिसमें आवेश की पीड़ा किंचित भी शेष नहीं रह जाती । आवेशित अवस्था के मानव के संदर्भ में, अमानवीय कृत्यों की क्षमा का अधिकार, मानवीयता को पहचानने के उपरान्त ही हो पाता है । मानवीय मानसपूर्ण कार्य-व्यवहार विन्यास व्यवस्था ही हो पाती है । व्यवस्था में, अव्यवस्था विलय हो जाती हैं । **न्याय वर्तमान होने से, अन्याय अपने आप ही विलय होता है ।** सर्वतोमुखी समाधान प्रमाणित होने की स्थिति में सब गलतियां अपराध विलय हो जाते हैं। इस प्रकार मानवीयतापूर्ण चरित्र में कहे गए, चारों प्रयोजन वर्तमान होना, इसके विपरीत चारों भ्रमात्मक चरित्र विलय होना पाया जाता है । तभी दम और क्षमा मानव व्यवहार व्यवस्था आचरण कार्यों पूर्ण मानव परम्परा में ही सम्पूर्ण प्रकार के समुदाय विलय होना सहज है। विलय का तात्पर्य - अभाव के स्थान पर भाव होना है । अभाव का अस्तित्व होता नहीं है अभाव केवल भ्रम है ।

13. तत्परता - 14. उत्साह

परिभाषा : तत्परता :- (1) जागृति, जागृतिक्रम, विकास क्रम में सक्रियता। (2) उत्पादन क्रियाकलाप में लगनशीलता । (3) मानवीय व्यवहार आचरण में निष्ठा । (4) व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी सहज उदय की ओर परावर्तन क्रिया ।

उत्साह :- उत्थान के लिए साहस ।

उत्थान का तात्पर्य मानव, देव मानव, संस्कृति, सभ्यता विधि व्यवस्था में निष्ठा ।

तत्परता, एक जागृत जीवन सहज क्रिया है । अभिव्यक्ति क्रम में तत्परता का अर्थ - जीवन जागृति तथा उसकी निरंतरता को प्रमाणित करने की क्रिया है । तत् से अभ्युदय और निःश्रेयस ही इंगित होता है, यह जीवन जागृति और लक्ष्य का प्रमाण है । जागृत जीवन में जब प्रमाणों को व्यक्त करना होता है इस क्रम में सभी जीवन शक्तियाँ अपने अपने कार्य करना सहज है । इसी क्रम में जीवन शक्तियाँ, विभिन्न प्रयोजनों को सार्थक बनाने के कारण, उन उन क्रियाओं का नामकरण मानव ही करता है । नामकरण किसी अर्थ का प्रतीक है । नाम या प्रतीक प्राप्ति नहीं है । अस्तित्व में विभिन्न स्थिति-गति, परिणाम, विकास, जागृति, प्रयोजन ही सम्पूर्ण अर्थ और प्राप्तियां अनुभूति है । सम्पूर्ण अनुभूति या तृप्ति, उसकी निरंतरता है । यह शब्द या भाषा से इंगित अर्थ को जानने-मानने अथवा जानने-मानने के तृप्ति बिंदु का अनुभव है। जीवन में अनुक्रम पूर्वक होना (वर्तमान) अनुभव है । अस्तित्व में अनुभव ही जीवन में परम जागृति है ।

जागृति की अभिव्यक्ति में, सर्वतोमुखी समाधान प्रमाणित होता है । मानवीयता सहज परम्परा का सूत्र है, जो सार्वभौम व्यवस्था, अखंड समाज के रूप में व्याख्यायित है । इसलिए यह मानव के वैभव का अर्थ है । यही मानव धर्म है, क्योंकि समाधान = सुख है तथा मानव सुखधर्मी है ।

जागृति, भ्रम मुक्ति का प्रमाण है, फलस्वरूप प्रामाणिकता की अभिव्यक्ति स्वानुशासन के रूप में स्पष्ट होती है । ऐसी स्पष्टता को बनाए रखना ही तत्परता है । ऐसी तत्परता नित्य उत्सव को प्रावधानित करती है । इसलिए उत्साह का अर्थ जागृति पूर्वक, जीने की कला में सार्थक होता है ।

उत्साह अपने जीवन प्रयोजन (अभ्युदय निःश्रेयस) के अर्थ में किया गया संकल्प सहित गति है अथवा उत्थान (जागृति) के अर्थ में जीवन सहज रूप में किया गया साहस । इसलिए प्रेम, विश्वास पूर्ण; भाषा, भाव, मुद्रा भंगिमा - अंगहार समेत व्यक्त किया गया क्रिया-कलाप उत्सव है । इस प्रकार तत्परता व उत्साह

का सार्थक प्रयोजन समझ में आता है ।

15. कृतज्ञता - 16. सौम्यता

परिभाषा : कृतज्ञता :- जिस किसी की भी सहायता से उन्नति (विकास और जागृति) की प्राप्ति में सफलता मिली हो, उसकी स्वीकृति ।

सौम्यता :- स्वेच्छा से स्वयं का नियंत्रण ।

जीवन जागृति क्रम में (अथवा विकास में) जिस किसी से भी सहायता प्राप्त हुई हो, उसे स्मरण में रखना और स्वीकारना तथा स्वीकार किये हुए को अभिव्यक्त करना, कृतज्ञता है । यह समाधान में, से, के लिए सहायक प्रक्रिया है । जीवन ही जागृति पूर्वक, समाधान का धारक-वाहक होता है । सम्पूर्ण जागृति, समाधान और प्रामाणिकता के रूप में प्रमाणित हो जाना ही, मानव परम्परा की गरिमा व महिमा है । मानव समाधान पूर्वक ही, सुख और शांति का अनुभव करता है ।

मानव में जीवन जागृति, जानने-मानने, पहचानने व निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित होता है । यह प्रत्येक मनुष्य की एक अपरिहार्यता है । मनुष्य जब भी संतुष्ट होता है तब दूसरे के साथ व्यवहार करना, एक आवश्यकीय प्रक्रिया है । असंतुष्टि आवेशपूर्वक मानव की परस्परता में होने वाला व्यवहार, समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व, चरितार्थ न होने से है । मनुष्य की व्यावहारिक सार्थकता की यही चार उपलब्धियां हैं । इन मानव सहज लक्ष्य के लिए मनुष्य कायिक, वाचिक, मानसिक, व कृत कारित, अनुमोदित प्रभेदों से कार्य करता है । मानव परम्परा की उपलब्धियां यही हैं । मानव परम्परा अर्थात अखंड समाज और सार्वभौम व्यवस्था का लक्ष्य यही है। लोक-न्याय सुलभता से अभय सार्थक होना अर्थात परस्परता में विश्वास होना, स्वयं अभयता है तथा सह-अस्तित्व का द्योतक है । मनुष्य जागृति और उसकी निरन्तरता में, समाधान सम्पन्न होता है । फलस्वरूप लोक न्याय (अभय और सह-अस्तित्व) तथा समाधान जीवन गत स्वत्व है । इसके व्यवहारान्वयन में सर्वतोमुखी समाधान

ही, सम्प्राप्त होता है। इसी के आधार पर जीवन-विद्या व वस्तु-विद्या का, परिष्कृत ज्ञान की, धारक, वाहकता पूर्वक, शिक्षा-पद्धति, प्रणाली, नीति-संगत होकर, लोकव्यापीकरण होता है । यही शिक्षा, प्रकाशन, प्रदर्शन एवं प्रचार का तात्पर्य है । यही जागृति सहज मानव संचेतना का द्योतक है ।

प्रत्येक व्यक्ति कृतज्ञता विधि से ही, सौम्य होना पाया जाता है। **सौम्यता का तात्पर्य, स्वभाव गति-प्रतिष्ठा से है । स्वभाव गति प्रतिष्ठा ही दूसरे शब्दों में शिष्टता कहलाती है ।** सम्पूर्ण शिक्षा व लोक शिक्षा शिष्टता के अर्थ में अर्थात स्वभाव गति प्रतिष्ठा के अर्थ में सार्थक होना पाया जाता है । यह कृतज्ञता पूर्वक, सौम्यता पूर्वक सार्थक हो पाता है । मानव की सहज अभिलाषा अभ्युदय ही है, अथवा समाधान की आकांक्षा है। प्रत्येक मनुष्य समाधान की अपेक्षा में ही, सब कुछ करता है । उसके सफल होने की विधि में, कृतज्ञता व सौम्यता एक अनिवार्य बिंदु है और अभिव्यक्ति है ।

जागृत जीवन ही अपने में सम्पूर्ण होते हुए देश, काल, दिशा, नैसर्गिक जिज्ञासा व आवश्यकताओं को पाकर जीवन ऐश्वर्य का नियोजन करता है । जीवन-ऐश्वर्य को आशा, विचार-इच्छा-संकल्प व अनुभव मूलक प्रामाणिकता के नाम से जाना जाता है । यह सम्मिलित रूप में, संचेतना के अर्थ को, जानने-मानने व पहचानने के रूप में प्रमाणित करता है । यह प्रत्येक व्यक्ति में होने वाली प्रक्रिया है । यही (अर्थात् आशा, विचार, इच्छा, संकल्प व अनुभुव मूलक प्रामाणिकता अपनी अपनी क्रियाओं को स्पष्ट करते समय अथवा स्पष्ट करने की स्थिति में) कमशः दो दो क्रियाओं के रूप में व्यक्त होते हैं । वह है चयन-आस्वादन, विश्लेषण-तुलन, चिंतन-चित्रण, बोध-संकल्प, अनुभूति व प्रामाणिकता ।

इसी के विस्तार रूप 122 क्रियाओं में, यह अध्ययन-गम्य होता है। जिसमें से वृत्ति में होने वाली 36 क्रियाओं में से अर्थात तुलन व विश्लेषण के संयुक्त रूप में होने वाली क्रियाओं में से कृतज्ञता व सौम्यता जीवन सहज क्रिया है । यही सब जागृति का द्योतक है।

जागृत जीवन-सहज क्रियाएं, जीवन तृप्ति के अर्थ में ही हो पाती हैं । जीवन-तृप्ति, प्रामाणिकता व समाधान-सम्पन्नता ही है। इसका सम्मिलित रूप जीवन-जागृति है । यही जीवन-जागृति का व्यवहार प्रमाण और भ्रम मुक्ति है । जीवन जागृति क्रम में, भ्रम मुक्ति का प्रधान उद्देश्य समाया रहता है। जीवन-जागृति पर्यन्त यात्रा है, जागृति की निरंतरता ही जीने का अर्थ है। जागृति पूर्ण मानव परम्परा का ही समाज व व्यवस्था अक्षुण्ण होता है ।

जागृति परम्परा ही, मानव का एक मात्र शरण है । इसकी संभावना नित्य समीचीन है । जागृति परम्परा में ही मानवीय शिक्षा-संस्कार सुलभ होता है । **अध्ययन पूर्वक विकास और जागृति का लोकव्यापीकरण सहज है ।** जागृति क्रम में सहज ही कृतज्ञता-सौम्यता से प्रत्येक व्यक्ति व परिवार सम्पन्न होता है ।

मानव परम्परा में प्रत्येक मनुष्य का जन्म से ही किसी परिवार का सदस्य होना नैसर्गिक है । यह सर्वत्र प्रमाणित है । मानव परम्परा में ही व्यक्ति में समझदारी सहित परिवार; समाधान-व्यवस्था, शिक्षा जैसी परम्परा में से प्रभावित, प्रेरित, प्रमाणित होता है यह एक अनिवार्य स्थिति है ।

मूलतः दर्शन, सह-अस्तित्व मूलक, मानव-केन्द्रित चिंतन होने के कारण, रहस्य का समापन, वर्तमान में, सम्पूर्ण प्रमाण सहज सुलभ हो गया । यह प्रमाण, प्रयोग, व्यवहार व अनुभव में प्रमाणित होता है । यह अध्ययन गम्य होता है ।

जहां तक सह-अस्तित्व वादी विचार शैली है, वह विगत से आयी तर्कों और विसंगतियों लक्ष्य, समझदारी, ईमानदारी और जिम्मेंदारी में विरोधाभास को दूर कर देती है । साथ ही विज्ञान (विश्लेषण का तात्पर्य कालवादी, क्रियावादी, निर्णयवादी तथ्यों को स्पष्ट करना) सम्मत विवेक (प्रयोजन) तथा विवेक सम्मत विज्ञान-विधि से पूरी विचार शैली है । फलस्वरूप विसंगतियां दूर होती हैं। यह सह-अस्तित्व वाद है । जो अस्तित्व सहज है । यह अध्ययन के लिए समर्पित है । **इसके मूल में जो दर्शन है, उसका नाम मध्यस्थ**

दर्शन रखा गया है। यह अध्ययन की मूल वस्तु है।

''व्यवहारवादी जन चेतना''

यह मूलतः मानव कुल की शुभाकांक्षा के अनुरूप, मानव सम्बन्धों, नैसर्गिक सम्बन्धों को पहचानने और मूल्यों के निर्वाह करने के ध्रुव पर आधारित है । इसमें जिन जिन सम्बन्धों को, जैसा जैसा पहचानना है, वह भी जाने अनजाने, मानव-कुल में प्रचलित है, वह निश्चय का आधार है । साथ ही स्वयं कितने सम्बन्धों में, सूचित हो सकता है । उसको आकलित करने पर, उतने ही सम्बन्ध निकल आते हैं, जितना प्रचलित है । इन तथ्यों पर आधारित क्रम से जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव का अध्ययन सहज हुआ । जीवन तृप्ति के लिए, शरीर यात्रा के लिए, सम्बन्ध प्रचलित होना पाया गया । (अथवा आवश्यकता होना पाया गया) । इसलिए व्यवहारवादी जनचेतना को पहचानना अनिवार्य हुआ । पता चला कि जीवन-ज्ञान और अस्तित्व दर्शन ही, जन चेतना है । जीवन ज्ञान के अनुसार जीवन-तृप्ति मूल्यों का परावर्तन व प्रत्यावर्तन ही है। यह समाधान को प्रमाणित करता है । यही समाधान का स्रोत है । इसका लोक-व्यापीकरण करने के लिए, शिक्षा में इसे सुलभ करने की संभावना है।

यह स्पष्ट हुआ कि, जन-चेतना का मूल तत्व, जीवन ज्ञान है। जीवन-विद्या के आधार पर ही, मानवीयता को जीवन-प्रकाश में पहचानना सहज होता है, फलस्वरूप सभी सम्बन्धों में निहित मूल्यों को, यथावत निर्वाह करने की स्वाभाविक क्रिया कलाप सम्पन्न होती है। इसी के साथ यह भी स्पष्ट होता है कि शरीर पोषण, संरक्षण और समाज गति के लिए आवश्यकीय वस्तुओं व उपकरणों को प्राप्त करने व सदुपयोग करने और प्रयोजनशील बनाने की विधियां, अध्ययन गम्य हुई हैं ।

ऐसी वस्तुओं का उत्पादन, जीवन शक्तियों के संयोग से, शरीर के अवयवों द्वारा, श्रम नियोजन पूर्वक संपादित होती है । इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए, जन-मानस को यह भी विश्वास दिलाया है

कि भौतिक वस्तु की आवश्यकता शरीर तक ही है । जीवन-तृप्ति के अर्थ में, उपयोग, सदुपयोग और प्रयोजनशीलता को स्पष्ट किया है । जीवन, शरीर के द्वारा, मानव परम्परा में अपनी जागृति को प्रमाणित करना ही परम उद्देश्य है । यही प्रयोजन है । इसे सार्थक बनाने के क्रम में, शरीर- यात्रा जीवन के लिए एक साधन है, न कि साध्य ।

इस चेतना के आधार पर अथवा जीवन-ज्ञान के आधार पर मानव, मानवत्व को पहचानने के उपरान्त, अखंड समाज में भागीदार और सार्वभौम व्यवस्था में भागादीर होने का सत्य, समझ में आता है। फलस्वरूप सम्बन्धों व मूल्यों की पहचान व निर्वाह सहज होता है ।

मानवता पूर्ण मानव परम्परा में, से, के लिए, सार्थक रूप देने के क्रम में, जो कुछ सहायता मिली उसका स्वीकार होना सहज है । फलस्वरूप सौम्यता, परम्परा में सार्थक परिभाषा के अनुसार वर्तमान होती है । इस प्रकार मनुष्य को कृतज्ञ होने के लिए आजीविका, स्वास्थ्य, विद्या, समाधान, प्रामाणिकता, प्रमाण (जिनमें से समाधान, प्रामाणिकता, इनका स्रोत रूपी विद्या) सुलभता में से, के लिए, जो सहायता मिली उसके प्रति कृतज्ञ होना भी है । संघर्ष में कृतज्ञता का स्थान नहीं है ।

17. गौरव - 18. सरलता

परिभाषा : गौरव :- निर्विरोध पूर्वक, अंगीकार किए गए अनुकरण ।

सरलता :- ग्रंथि व तनाव रहित अंगहार ।

मनुष्य का अभिव्यक्त होना, जीवन सहज कार्य है । अभ्युदय के अर्थ में प्रमाणित होना ही, अभिव्यक्ति है । अभ्युदय, सर्वतोमुखी समाधान, मानव धर्म है क्योंकि समाधान = सुख । समस्या = दुख । अव्यवस्था का प्रभाव = समस्या = पीड़ा । अस्तित्व में प्रत्येक एक अपने ''त्व'' सहित व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदार है । इस धरती पर पदार्थावस्था मृद मृदत्व के साथ, सभी धातुएं धातुत्व

के साथ, पाषाण पाषाणत्व के साथ, मणियां मणित्व के साथ व्यवस्था हैं। यह समग्र व्यवस्था के साथ भागीदारी है ।

हर वस्तु का स्वयं में व्यवस्था होना, उसके परस्परता में सह-अस्तित्व सहित वर्तमान होने से है । यही समग्र व्यवस्था में भागीदारी का सूत्र है । वर्तमान, निरंतरता के अर्थ में है । लोहा, लोहत्व के साथ वर्तमान है। लोहत्व मूलतः अपने ही प्रजाति के परमाणु के रूप में ही है। किसी संख्यात्मक अंशों का (अथवा निश्चित संख्यात्मक अंश) नाभि क्षेत्र में ही उसके सन्तुलन से, उसका आक्षित परिवेश और संख्यात्मक अंशों का क्रियारत रहना पाया जाता है । इसी प्रकार हर प्रजाति के परमाणु अपने मध्यांश, परिवेश में कार्यरत अंशों के योगफल में मात्रा है। भौतिक रूप में अणु (अनेक परमाणुओं के रचित रचना) और रासायनिक अणुओं से रचित रचनाएं सह-अस्तित्व सहज है । मानव में, जीवन जागृति क्रम में यह सब अध्ययन हो पाता है । इस प्रकार ऐसी व्यवस्था को मानव जागृति पूर्वक वर्तमान को पहचानता है, विकास क्रम में पूरक विधि से, मनुष्येत्तर प्रकृति समझ में आता है ।

अस्तित्व, सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में सह-अस्तित्व वर्तमान है । सह-अस्तित्व में ही पूरकता, उदात्तीकरण, विकास, संक्रमण और जागृति व्याख्यायित है । सह-अस्तित्व नित्य प्रभावी है, इसका प्रमाण सत्ता में प्रकृति की अविभाज्यता है । इसी आधार पर अस्तित्व में परस्पर व्यवस्था है । इसका प्रमाण है - वर्तमान में विकास, जागृति, पूरकता और उदात्तीकरण । मनुष्य, अस्तित्व में द्रष्टा होने के कारण प्रत्येक मनुष्य का जागृति पूर्ण परम्परा में होना, वर्तमान है । मनुष्य ही श्रेष्ठता का मूल्यांकन करता है । उपयोग, सदुपयोग व प्रयोजनीयता के आधार पर मूल्यांकन होना सहज है । उपयोगिता का ध्रुव बिंदु जागृति है । मनुष्य की उपयोगिता, स्थिरता व निरंतरता जागृति सहज विधि से, आवश्यकता से अधिक उत्पादन तन, मन व धन रूपी अर्थ का सम्बन्ध व मूल्यों में अर्पण-समर्पण करते हुए, उत्सवित होना पाया जाता है । इसी से मनुष्य सर्वाधिक खुशी का अनुभव करता है और सुख का प्रमाण प्रस्तुत करता है ।

यही उपयोगिता-सदुपयोगिता का मापदण्ड है । सम्बन्ध व मूल्यों में, जीवन जागृति का लक्ष्य समाया रहता है । सदुपयोगिता का आधार मापदण्ड यही है कि परिवार मानव (अथवा मानव परिवार) तन, मन, धन रूपी अर्थ को सम्बंधों में अर्पित-समर्पित कर, प्रसन्नता और समाधान का अनुभव करता है । प्रसन्नता और समाधान का प्रमाण प्रस्तुत करता है । प्रयोजनीयता का प्रमाण, जीवन जागृति सहज, स्वानुशासन है । समझदारी का प्रमाण, मानवीय कर्तव्यों व दायित्वों का निर्वाह करना ही है । यही उपयोगिता एवं सदुपयोगिता का प्रमाण है । मानवीयता का मार्गदर्शक, अतिमानव रूपी देव मानव व दिव्य मानव ही है । यही प्रयोजन है।

इस प्रकार उपयोगिता, सदुपयोगिता व प्रयोजनीयता के अर्थ में प्रमाणों का होना, प्रमाणों की दर्शकता और प्रमाणों की महिमा है। इस प्रकार विकसित जागृत, सार्थक मानव से शिक्षा संस्कार पाने, जागृत होने और प्रमाणित करने के उद्देश्य भ्रमित और अविकसित मानव में भी प्रवर्तन होना पाया जाता है । **भ्रमित (अविकसित) मनुष्य में भी प्रमाण व प्रामाणिकता की अपेक्षा का होना ही, जागृत होने का सूत्र है ।** विकसित, जागृत मनुष्य, मूल्यों का निर्वाह करते हुए मूल्यांकन पूर्वक श्रेष्ठता का गौरव पाता और करता है ।

गौरव स्वयं मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति के अर्थ में (अथवा स्वीकार किया हुआ के अर्थ में) प्रतिपादन, अभिव्यक्ति व संप्रेषणा है। ऐसी अभिव्यक्ति, संप्रेषणा सरलता पूर्वक होना पाया जाता है । सरलता अपने में जिस गौरव को व्यक्त करती है, उसके लिए किया गया शरीर विन्यास, सम्पूर्ण आवेशों से मुक्त स्वभाव गति सम्पन्न मानव सहज गति है । धीरता, वीरता, उदारता पूर्ण, मुद्रा, भंगिमा, अंगहारों की अभिव्यक्ति है । गौरव क्रिया-कलाप में सार्थकता की स्वीकृतियां, सर्वाधिक प्रभावशील रहती हैं । फलस्वरूप सरलता सहज ही सम्यक होती है ।

अस्तु, श्रेष्ठता, मनुष्य के जीवन जागृति पूर्वक में होने वाली अभिव्यक्ति है । श्रेष्ठता, प्रत्येक मनुष्य को स्वीकार्य है । श्रेष्ठता की

अभिव्यक्ति में, सरलता पूर्वक सम्मानित करना पाया जाता है । जागृति पूर्वक ही मानव पद प्रतिष्ठा प्रमाणित होता है । देव मानव का सम्मान करता है और देव मानव, दिव्यमानव का सम्मान करता है । दिव्य मानव, देव मानव का मूल्यांकन करता है । देव मानव, मानव का मूल्यांकन करता है । मानव, मानव का मूल्यांकन करता है । देव मानव, देव मानव का मूल्यांकन करता है। दिव्यमानव, दिव्यमानव का मूल्यांकन करता है । इस प्रकार से परस्पर सम्मान करना सम्मान पाना सहज हो जाता है और सम्मान परम्परा बनी रहती है । यह मानव परम्परा में अक्षुण होता है । इसका परिवार, ग्राम, मुहल्ला से चलकर, विश्व परिवार व्यवस्था तक अनुभव किया जाना, जीवन जागृति सहज भव्यता है ।

19. विश्वास - 20. सौजन्यता

परिभाषा : विश्वास :- (1) परस्परता में निहित मूल्य निर्वाह। (2) व्यवस्था की समझ, समाधान की अभिव्यक्ति और संप्रेषणा।

सौजन्यता :- (1) सहकारिता, सहभागिता, सहयोगिता, पूरकता। (2) पूरकता विधि से ही विश्वास सहज प्रमाण संपन्न होता है । पूरकता हर परस्परता में समीचीन है । मानव सहज परस्परता, नैसर्गिकता सहज परस्परता नित्य विद्यमान है । रासायनिक रचनाओं में विकास का अभिप्राय है । मानव की पहचान, शरीर व जीवन के संयुक्त रूप में होना स्पष्ट हो चुकी है । जिसमें से शरीर के संबध में विकास, जीवन के संबध में जागृति अपेक्षित है । कुछ स्थानों पर विकास शब्द से शरीर व जीवन का संयुक्त तात्पर्य भी है । विश्वास मूलतः स्वयं में, से, के लिए होना अनिवार्य स्थिति है । (3) स्वयं में विश्वास होना ही, सौजन्यता पूर्ण अभिव्यक्ति है । सौजन्यता, अपने आप में, (सुहृदय का तात्पर्य मानवीय लक्ष्यों, विचारों, व्यवहार और कार्य मानसिकता और कार्यक्रम से है ।) सुहृदय सूत्र से अनुप्राणित प्रस्तुति है । सेवा, अर्पण, समर्पण, जिज्ञासा और स्वीकृतियां हैं ।

यह समझदारी पूर्वक प्रमाणित होता है । स्वयं में विश्वास तभी सहज और संभव हो पाता है, जब मानव अपने को पूर्णतया (स्वयं को पूर्णतया) निर्भ्रम रूप में समझ लिया रहता है । इसका मतलब यह हुआ कि स्वयं में, से, के लिए समझे रहना आवश्यक है।

मनुष्य अपने को समझने की क्रिया में, शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में, शरीर यात्रा का मनुष्य में होना पाया जाता है । यही समझदार परम्परा का आधार है ।

(1) शरीर कार्य व प्रयोजन ।

(2) जीवन सहज कार्य व प्रयोजन ।

(3) जीवन और शरीर की संयुक्त अभिव्यक्ति का सूत्रसह-अस्तित्व।

(4) अस्तित्व में मानव अविभाज्य वर्तमान । इन तथ्यों को समझना आवश्यक है ।

शरीर कार्य को अंगों व अवयवों के रूप में देखा जाता है । आंख, कान, नाक, हाथ, पैर ये सभी अंग है । इनका कार्य सर्वविदित है कि आंख से देखना, कान से सुनना, पैरों से चलना इत्यादि । इन सब कार्यों को जीवन, शरीर के द्वारा संपादित करता है, यह देखने को मिलता है । शरीर को जीवन्त बनाए रखते हुए जागृत जीवन, चयन-आस्वादन, तुलन- विश्लेषण, चित्रण-चिंतन, बोध-संकल्प, अनुभव-प्रमाणिकता में प्रमाणित होता है ।

मनुष्य एक ऐसी इकाई है जिसका वास्तविकता व यथार्थता के साथ ही व्यवस्था व व्यवस्था में भागीदार होना बनता है । जागृत मानव सत्यता सहज विधि से सुखी, समाधानित व प्रमाणित होना बन पाता है । इन सहअस्तित्व सहज प्रभाव को देख तथा समझ पाना ही जागृति है । यथार्थता, वास्तविकता व सत्यता के व्यवहार में प्रमाणित करना ही जागृति का प्रमाण है जिससे समाधान और प्रमाणिकता का ही लोक-व्यापीकरण होना है ।

इस धरती में सर्वप्रथम रहस्य मूलक ईश्वर केन्द्रित चिंतन ज्ञान को, विद्या माना गया । उसमें मूलतः रहस्य और रहस्यमय ईश्वर, इन दोनों प्रतिपादनों के कारण मतभेद बना रहा, फलतः विद्वानों को रहस्य मूलक ईश्वर, प्रमाण के रूप में हाथ नहीं लगा । उसके बाद यह भी प्रयास किया गया कि कोई देवी देवता हाथ लगे । उसके आधार पर रहस्य मूलक, देव केन्द्रित चिंतन ज्ञान को प्रस्तुत किया गया । वे देवी देवता भी रहस्य के चंगुल में फंसकर विद्वानों के हाथ नहीं लगे । फलतः सारे विद्वान व्यक्त-अव्यक्त ईश्वर अथवा देवी-देवताओं की बातें करते रहे, उपदेश देते रहे ।

जहां जीने, करने की बात आती रही, वहां सामान्य भौतिकवादी जैसा जीता रहा, वैसा ही जीते, करते देखा गया । यही मूलतः आदि काल से बनी हुई विद्या, विद्वता कहलाती रही । विद्वानों की परस्परता में अंतर्विरोध रहता आया। यह लोक मानस में सुनिश्चित मार्ग, लक्ष्य व कार्य को निर्धारित नहीं कर पाया। इन्हीं कारणों से कुछ लोग आशा रखते है कि निर्धारण हो पायेगा, कुछ सोचते है कि निर्धारण नहीं हो पायेगा ।

अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन बनाम मध्यस्थ दर्शन के द्वारा निर्धारण करने के कुछ आधार बिंदुओ को प्रस्तुत किया है।

(1) अस्तित्व स्थिर, विकास निश्चित है ।

(2) अस्तित्व में स्थिति-गति अविभाज्य हैं । बल, स्थिति में और शक्ति, गति में है ।

(3) सत्ता में संपृक्त अर्थात ऊर्जा में संपृक्त अनंत इकाई रूपी प्रकृति, अस्तित्व सर्वस्व है । सम्पूर्ण प्रकृति के जड़ और चैतन्य, ये दो भाग हैं ।

(4) चैतन्य प्रकृति में मनुष्य व मनुष्येतर जीव हैं ।

(5) जड़-प्रकृति में पदार्थावस्था व प्राणावस्था है ।

(6) पदार्थावस्था में जितने भी प्रजाति के परमाणु, रासायनिक अणु रचना के लिए आवश्यक हैं, उससे वह समृद्ध होते तक, अपने में परमाणु के रूप में विकासरत रहता है ।

(7) समृद्ध पदार्थावस्था के अनंतर ही प्राणावस्था की समृद्धि, प्राणावस्था के अनंतर जीवावस्था की समृद्धि, जीवावस्था के अनंतर ज्ञानावस्था में मनुष्य का सह-अस्तित्व के रूप में वर्तमानित होना, इस धरती पर प्रमाणित है ।

(8) जागृति पूर्णता और उसकी निरंतरता होना, लक्ष्य है ।

(9) जागृति क्रम में अखंड सामाजिकता और सार्वभौम व्यवस्था मानव परम्परा में होना इसलिए आवश्यक है कि मानव को जागृति का अवसर, सहज सुलभ हो सके ।

(10) परमाणु में विकास होता है, विकास क्रम में चैतन्य पद प्रतिष्ठा अथवा जीवन-पद होना पाया जाता है ।

(11) जीवन, गठन पूर्ण परमाणु है, जिसकी निरंतरता वश, जीवन का शाश्वत होना पाया जाता है ।

(12) जीवन-जागृति क्रम में, सर्वतोमुखी समाधान व प्रामाणिकता को प्रमाणित करने के क्रम में, जीवन सदा प्रयासशील है ।

(13) मानव परम्परा की स्थिरता, मानवत्व सहित व्यवस्था ही है । यह जागृति पूर्वक मानव में, से, के लिये प्रमाणित होता है। जागृति स्वयं निश्चित है।

मानवत्व की स्थिरता का तात्पर्य विकास और जागृति का निश्चित ध्रुव प्रामाणिकता, प्रमाण और उसकी अक्षुण्ता से है और सहज रूप में लोक न्याय, सबको मिलने से हैं । लोक-न्याय मिलने के लिए मानव परम्परा को जागृत रहना आवश्यक है ।

इस लक्ष्य को चरितार्थ करने के लिए यह मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान और इससे जुड़ी हुई सभी वांङ्गमय मानव कुल के सम्मुख प्रस्तुत हुआ है । अलंकार, सत्कार, सम्मान, प्रतिज्ञा विधियों से सब

अपने-अपने समुदायों की पहचान कर आधार बना चुकी हैं । ये सभी विधियां अपने को सार्वभौमता में प्रतिष्ठित करना भी चाहती हैं। सार्वभौमता का सूत्र मानवता ही है । इस कारण प्रत्येक समुदाय द्वारा मानवीय संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था को पहचानना आवश्यक है ।

व्यवस्था में न्याय सुरक्षा सुलभता, विनिमय कोष सुलभता, उत्पादन कार्य सुलभता, स्वास्थ्य संयम सुलभता और मानवीय शिक्षा संस्कार सुलभता का संयुक्त रूप है । इसी व्यवस्था में जीने की कला, सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, व्यवस्था में भागीदारी का, संयुक्त रूप में प्रकाशित होना पाया जाता है। यह मानव संस्कृति का मध्य बिंदु है । मानव अपनी संस्कृति को व्यक्त करता है । उस समय आवास, अलंकार, उत्सव, सम्मिलित उत्सव, मानवीयता का प्रकाशन, प्रदर्शन और प्रचार, ये सब प्रधान रूप में रहना स्वाभाविक है ।

मानव में मानवीयता ही नित्य उत्सव का आधार है । उत्सव, उत्साह, हर्ष, उल्लास, विश्वास के आधार पर सहज ही जीवन शक्तियों का प्रवाह है अथवा अभिव्यक्ति है । अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी, स्वयं उत्साह का साक्ष्य है । विश्वास (वर्तमान में स्वयं में व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी) सहज सौजन्यता के संयोग में, नित्य उत्सव होना पाया जाता है।

जीवन सहज उद्देश्य में से उत्सव एक आवश्यक अभिलाषा है अर्थात अभ्युदय क्रम में पाई जाने वाली जीवन सहज क्रिया है। मानवीयता पूर्ण मानव में, जागृत जीवन सहज क्रिया-कलापों में से, जीने की कला एक वास्तविकता और परम्परा है। जिसकी अक्षुण्ता होती है । अनुभव बल, विचार शैली, जीने की कला के योगफल में, मानव प्रमाणित होता है । अस्तु, विश्वास और सौजन्यता वर्तमान में व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी, अखंड समाज में भागीदारी और उसकी मूल्यांकन क्रिया-कलाप है ।

मनुष्य सहज आचरण, व्यवहार व व्यवस्था, मानव की अपनी

जागृति सहित, सम्पूर्ण होने का साक्ष्य है । सम्पूर्ण मनुष्य, जागृति के आधार पर ही अपनी संपूर्णता का मूल्यांकन करते हैं । जीवन के सभी आयाम अभिव्यक्ति क्रम व लक्ष्य के योगफल में प्रमाणित होते हैं । जागृत मानव सहज द्रष्टा पद, प्रामाणिकता व सर्वतोमुखी समाधान के रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है ।

21. सत्य - 22. धर्म

परिभाषा : सत्य :- (1) जो तीनों कालों में एक सा भासमान, विद्यमान एवं अनुभव गम्य है । (2) अस्तित्व विकास, जीवन, जीवन - जागृति, रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना के प्रति प्रामाणिकता का नित्य वर्तमान । (3) अस्तित्व सहज स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य, नित्य वर्तमान ।

धर्म :- (1) **धारणा ही धर्म है** । (2) जिससे जिसका विलगीकरण न हो ।

सत्य अपने स्वरूप में सह-अस्तित्व ही है । सह-अस्तित्व अपनी महिमा के रूप में प्रभावशील और नित्य वर्तमान है । सह-अस्तित्व अपने वैभव के रूप में, व्यापक में अनंत है, जिसको जानने-मानने वाला मनुष्य है। जो कुछ भी अस्तित्व है, उसी में, से, के लिए सम्पूर्ण नामकरण हो पाता है। वांङ्गमय में नामों के साथ ही, वस्तुओं को इंगित करने की, सहज व्यवस्था है । सत्य इंगित हो जाना ही, वांङ्गमय की प्रामाणिकता है । और वांङ्गमय कर्ता की प्रामाणिकता है । इसी विधि से प्रामाणिकता को पहचानने की अपेक्षा सफल हो पाती है ।

अस्तित्व अपने में स्थिर है, इसका प्रमाण वर्तमान ही है । वर्तमान अधिक-कम और अभाव रूपी उपाधियों से मुक्त है । वर्तमान में ही प्रमाण, जागृत मनुष्य द्वारा मनुष्य से और मनुष्य में भी प्रकाशित होने का क्रम है । इसी क्रम में, मनुष्य में जो भी समझ स्पष्ट होती है, वह वर्तमान में ही प्रमाणित होना पाया जाता है । मूलतः अस्तित्व नित्य वर्तमान होने के कारण, वर्तमान अपने में स्थिति, गति, स्पंदन, आशा और आनंद की अभिव्यक्ति है। ये सभी तथ्य मनुष्य को सहज

रूप में अध्ययनगम्य, व्यवहारगम्य व अनुभवगम्य हैं, इसकी निरंतरता होना पाया जाता है । जागृत मानव में समाधान व प्रामाणिकता, समाज-न्याय पूर्वक सुख, शांति, संतोष के रूप में प्रमाणित होता है और उसकी निरंतरता होती है । निरंतरता होने का तात्पर्य, जीवन-सहज रूप में, परम्परा सहज रूप में, सार्थक होने से है । जीवन सहज रूप में आनंद व आनंद की निरंतरता जीवन जागृति में स्पष्ट होती है। जीवन जागृति की, प्रामाणिकता व समाधान को, मानव परम्परा में व्यक्त करता है ।

इसका अनुभव, विचार, व्यवहार व अध्ययनगम्य हो जाना ही, परम्परा सहज होने का स्रोत है । ऐसे स्रोतों को, मानव परम्परा वहन करे, यह भी एक सहज प्रक्रिया है । मानव पंरपरा अपने में शिक्षा संस्कार स्वराज्य व्यवस्था, मानवीयता पूर्ण आचरण रूपी आचार संहिता और संविधान की धारक, वाहक है । यही परम्परा सहज जागृति का अर्थ है । यह प्रत्येक मानव सहज वांछित धटना है । इस प्रकार अस्तित्व सहज विकास और जागृति के योग फल में, मानव परम्परा की प्रतिष्ठा भी, सह-अस्तित्व के रूप में प्रतिपादित है । अस्तित्व स्थिर होना, नित्य वर्तमान सहज है । सह-अस्तित्व में नित्य विकास और जागृति सहज प्रमाण निश्चित है और प्रत्येक अवस्था और पद परम्परा के रूप में स्थिर होना तथा उन उन के ''त्व'' सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में यह व्याख्यायित है । यही अस्तित्व में ंअनंत की व्याख्या, समग्र व्यवस्था के अनुभूत होने का प्रमाण है । साथ ही व्यापक में, अनंत का नित्य वर्तमान होना स्पष्ट है ही ।

मनुष्य भी अस्तित्व में अविभाज्य वर्तमान है । इतना ही नहीं, अस्तित्व में जितने भी पद और अवस्थाएं देखने को मिल रही हैं, ये सब अस्तित्व में अविभाज्य हैं ही और अपने में परम्परा है । मनुष्य के प्रकाशन और संप्रेषणा सुलभता के लिए, अस्तित्व सहज विविधता को एक दूसरे को निर्देशित व इंगित कराते हुए, जाना हुआ को जनवाने, माना हुआ को मनवाने, पहचाने हुए को पहचनवाने, निर्वाह किया हुआ को निर्वाह कराने के क्रम में, उस-

उस का नाम भी दिया जाता है । इसी क्रम में, अस्तित्व में जो भी अवस्थाएं हैं उसे चार रूपों में देखा गया है - जिसे पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था व ज्ञानावस्था का नाम दिया गया है । ये चारों अवस्थाएं, अस्तित्व में अविभाज्य वर्तमान हैं । इनकी निरंतरता स्वयं अस्तित्व में स्थिर है अथवा अस्तित्व सहज रूप में ही, इसका स्थिर और निश्चित होना प्रतिपादित है । मूलतः अस्तित्व ही सम्पूर्ण प्रतिपादन है। प्रतिपादन का तात्पर्य, वर्तमान में प्रमाणित होना, और उसकी निरंतरता होने से है ।

अस्तित्व में जो भी क्रिया स्वरूप है, वह सब स्थिति और गति का संयुक्त व अविभाज्य रूप है । कोई भी क्रिया अपनी स्थिति व गति से विभक्त नहीं हो पाती - जैसे इस धरती की स्थिति व गति अविभाज्य है । एक परमाणु की स्थिति व गति अविभाज्य है । परमाणुओं में निहित अंशों की स्थिति व गति, अविभाज्य है । अनंत ग्रहगोल, अणु-परमाणु, रचना और विरचना विकास, जागृति और जागृति क्रम में जो सम्पूर्ण वस्तुएं हैं, यह सब स्थिति और गति पूर्वक वर्तमान है । इससे यह स्पष्ट हुआ कि अस्तित्व स्थिर होना सहज है और विकास और जागृति निश्चित है । **धर्म अपने में विकास और जागृति सहज अभिव्यक्ति है।** व्यवस्था, इसका मूल प्रमाण है।

प्रत्येक एक, अपने ''त्व'' सहित व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदारी है । **पदार्थावस्था का धर्म अस्तित्व के रूप में, प्रतिपादित है ।** पदार्थावस्था का वर्तमान नित्य है , चाहे ताप परम स्थिति में क्यों न हो । जैसे सूर्य बिम्ब में निहित जितने भी पदार्थ हैं, परम तप्त अवस्था में रहते हुए, उसका नाश नहीं हो पाता। उसमें भी विकास का भ्रूण समाए रहने के कारण ही, वह परिणाम बीज सम्पन्न है। इसी सूत्र से सूर्य बिम्ब भी, कालान्तर में, सूर्य बिम्ब के, निश्चित परमाणु में अपने में सुदृढ़ और भारी नाभियों से सम्पन्न होकर ठोस होने की संभावना बनी ही है । पदार्थावस्था की वस्तुएं, ठोस व विरल रूप में, देखने को मिलती हैं, यह अपने में समृद्ध होकर रासायनिक क्रिया-प्रक्रिया में संलग्न होते हैं, तब रस-

रचना कार्य सम्पन्न हो पाता है । अस्तित्व, अपने में सम्पूर्ण होने के क्रम में सह-अस्तित्व (सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में वर्तमान है) है । सह-अस्तित्व में ही, परमाणु में विकास और गठन पूर्णता तथा उसकी निरंतरता है । ऐसा गठनपूर्ण परमाणु, जीवन पद में संक्रमित प्रतिष्ठित रहता है, साथ ही अक्षय बल-शक्ति सम्पन्न रहता है । फलस्वरूप अणुबंधन, भारबंधन से मुक्ति तथा आशा विचार, इच्छा बंधन में प्रवृत्ति होना पाया जाता है । ऐसा जीवन परमाणु अपने सहज गति-पथ के साथ, एक कार्य गति पथ को स्थापित कर लेता है। यह कार्य-गति पथ, उसकी आशा के अनुरूप होता है । **यही जीवन-पुंज अथवा सूक्ष्म शरीर के नाम से भी, जाना जाता है। स्वयं जीवन, अपने कार्य-गति-पथ सहित एक आकार होना स्वाभाविक है।**

ऐसे आकार वाली रचना, जो जड़ प्रकृति से, प्राण कोशाओं से रचित रचना है, सह-अस्तित्व सहज रूप में, पूरक विधि से संयोग सम्पन्न होती है । ऐसे रचना कार्य का प्रस्तुति रूप जीव शरीर व मनुष्य शरीर के रूप में, वर्तमान में देखने को मिलता है । ऐसे शरीरों में, से, जीवन के लिए सहज व अनुकूल शरीर को संचालित करना, जीवन आरंभ करता है । इस प्रकार विकास विधि से, गठन-पूर्ण परमाणु, चैतन्य पद व जीवन ही जागृति पूर्वक अनुभव प्रमाणों को मानव परम्परा में प्रमाणित करता है, वैभवित रहता है । पहले जड़ प्रकृति में ही रासायनिक-भौतिक रचना-विरचना होती है । यह समझ में आया है। इनमें से रासायनिक रचना के रूप में मानव शरीर भी होना सर्वविदित है । यह गर्भाशय में रचित होता है । गर्भाशय के बाहर होने के उपरान्त पोषण-संवर्धन होना भी स्पष्ट है । ऐसे मानव शरीर को गर्भाशय में ही रचना संपन्न होने के उपरान्त जीवन द्वारा संचालित करना हो पाता है ।

इस प्रकार इन दोनों का सह-अस्तित्व रूप में कार्यरत होना पूरक विधि सहज है । जीवन अपनी निरंतरता में जागृति सहज परम्परा में समाधान, समृद्धि, अभय, सहअस्तित्व लक्ष्य स्वीकृत है। मानव लक्ष्य जीवन जागृति के उपरान्त ही सार्थक होना पाया गया ।

जीवन और शरीर की संयुक्त परम्परा में ज्ञानेन्द्रियों का कार्य सम्पन्न होना सहज है । कर्मेन्द्रियों का आरंभिक क्रिया-कलाप (अथवा सामान्य लक्षण) प्राणावस्था में भी सम्पन्न होता है । ज्ञानेन्द्रियों का कार्य-कलाप, जीवन्तता पूर्वक ही, सम्पन्न हो पाता है । जीवन के योग में ही, शरीर में जीवन्तता का प्रमाण वर्तमान है । इस क्रम में अंग और अवयवों के रूप में रचित, शरीर रचनाओं में से, मेधस भी एक प्रधान रचना रूपी अवयव और तंत्र है । यह अवयव सर्वाधिक, शरीर रचना के शिरोभाग में होना, देखा जाता है । इन्हीं मेधस पर, जीवन सहज आशा, विचार, इच्छा, संकल्प, अनुभवों और प्रामाणिकताओं को प्रमाणित करना, मनुष्य परम्परा में स्पष्ट है । इस विधि से प्रत्येक मनुष्य जीवन व शरीर के, संयुक्त रूप में, कार्यरत रहते हुए जानने, मानने, पहचानने व निर्वाह करने का क्रिया-कलाप, मानव सहज रूप में प्रमाणित होता है । इसमें से जानना-मानना मौलिक है । जानने-मानने का क्रिया-कलाप, जागृति का प्रमाण है । जीवन ही जागृति पूर्वक, सम्पूर्ण क्रिया को समाधान के रूप में अभिव्यक्त करता है । **जानने मानने की वस्तुएं-परम सत्य रूपी सह-अस्तित्व और धर्म ही प्रधान हैं ।**

धर्म अपने स्वरूप में ''त्व'' सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में हरेक एक में देखा जाता है । **ऐसा धर्म, पदार्थावस्था में अस्तित्व, प्राणावस्था में अस्तित्व सहित पुष्टि, जीवावस्था में अस्तित्व, पुष्टि सहित आशा एवं मानव में अस्तित्व, पुष्टि व आशा सहित सुख जागृति पूर्वक प्रमाणित होना पाया जाता है ।** भ्रमित अवस्था में भी सुख सहज आशा बनी रहता है । समाधान = सुख । समस्या = दुख । अस्तित्व में किसी समस्या का स्रोत न रहते हुए भी, मनुष्य जब तक जीवों के सदृश्य जीने के लिए अपनी कर्म स्वतंत्रता व कल्पनाशीलतावश प्रयास करता है, तब तक उसका समस्या से पीड़ित होना पाया जाता है । **मनुष्य सहज व्यवस्था, मानवत्व सहित ही सम्पन्न हो पाती है । यही अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था का सूत्र है ।** मानवत्व की व्याख्या, मानव में अखंड समाज व सार्वभौम व्यवस्था ही है । अखंड समाज

का आधार, ''मानव जाति एक'' के आधार पर सम्बन्धों की पहचान एवं मूल्यों के निर्वाह क्रम में सम्पन्न होता है और प्रमाणित होता है। यह जीवन जागृति पूर्वक, वर्तमान सहज है । यही विश्व परिवार का सहज रूप और अखंड समाज का सहज रूप है । परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था मानव धर्म का प्रमाण है । मानव धर्म सहज अभिव्यक्ति ही, समाज न्याय का स्रोत है । विश्व परिवार ही अखंड समाज है ।

फलस्वरूप परिवार का पहचानना परिभाषित है । परिवार में समाहित व्यक्ति में, परस्पर सम्बन्धों को पहचानना और मूल्यों को निर्वाह करना, एक अनवरत उत्सव सहज क्रिया है । मानवीयता पूर्ण आचरण सहज व्यक्ति, समाज-न्याय अथवा लोक-न्याय के रूप में सार्थक है । **अस्तु, व्यवस्था ही सर्वतोमुखी समाधान (अभ्युदय) है ।** इससे समाज में लोक न्याय और सुख है । इस प्रकार अभ्युदय, व्यवस्था क्रम में, सर्वतोमुखी समाधान होना समाधान ही व्यवहार में न्याय सहज और सुख, शांति, संतोष का अनुभव होना, उसकी निरंतरता परम्परा रहना ही, मानव परम्परा की मौलिकता है । अस्तु, मानव धर्म पूर्ण (सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न) परम्परा ही, मानव परम्परा है ।

अस्तित्व में मानव परम्परा की एक सहज गति है । यह मानवीय शिक्षा सह-अस्तित्व सहज जीवन विद्या व वस्तु विद्या (वस्तु विद्या रासायनिक भौतिक क्रिया कलापों के रूप में प्रमाणित है) से परिपूर्ण, मानवीय संस्कार (सम्बन्धों व मूल्यों की पहचान व निर्वाह) परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था है, और मानवीयता पूर्ण आचार संहिता रूपी, समाधान है। ऐसी मानव परम्परा में प्रत्येक मनुष्य, परिवार में और परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में, भागीदारी सम्पन्न होता है । यही मानव परम्परा, अस्तित्व में सहज वर्तमान, प्रभावी होता है। अस्तित्व में जीवावस्था, प्राणावस्था व पदार्थावस्था में भी सहज परम्परा है । सहज परम्परा का तात्पर्य नियमित, नियंत्रित, सन्तुलित रूप में होने से है, जिसका प्रमाण, प्रत्येक एक अपने ''त्व'' सहित व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी से है । यह ही सह-

अस्तित्व में होने का प्रमाण है । **इस प्रकार सत्य, नित्य वर्तमान रूपी सह-अस्तित्व है ।** यही शाश्वत धर्म है । ज्ञानावस्था में होने के कारण अस्तित्व सहज विधि से जागृति पूर्वक मानव, द्रष्टा पद प्रतिष्ठा में है । द्रष्टा पद, सहज रूप में, अस्तित्व को जानना-मानना समीचीन है । इससे मनुष्य का प्रमाणित होना ही सत्य द्रष्टा कर्ता, भोक्ता होने का प्रमाण है । साथ ही, मनुष्य द्वारा ही, अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था को पहचानना, निर्वाह करना, जागृति सहज अभिव्यक्ति है । यही मानव धर्म परायण होने का प्रमाण है। **मानवता ही, मानव धर्म है ।** मानवत्व सर्व मानव में, से, के लिए समान वस्तु है, व्यवहार है और महिमा प्रयोजन है । मानव धर्म जागृति परम्परा के रूप में है। मानव धर्म और राज्य, अविभाज्य है । मानव धर्म (सर्वतोमुखी समाधान) अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में, सामरस्यता की निरंतर गति है ।

अखंड समाज का कार्य रूप, सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, **''मानव जाति एक, मानव धर्म एक''** के आधार पर परस्पर सभी मनुष्यों की परस्परता में, सम्बन्ध पहचानने में आता है । अस्तित्व में जड़-चैतन्य प्रकृति, परस्पर सम्बन्धित है । क्योंकि सह-अस्तित्व, नित्य प्रभावी है । सह-अस्तित्व में अनुभव ही, मानव में परम जागृति है । सह-अस्तित्व ही परम सत्य है । परम जागृति के अनंतर उसकी निरंतरता वर्तमान होती है । अस्तित्व नित्य वर्तमान है ही । **सत्य में अनुभव का प्रमाण ही स्वानुशासन है ।** स्वानुशासित मनुष्य सहज ही, मानवीयता का प्रेरक, दिशा दर्शक होता है । इस प्रकार सत्य-धर्म, व्यवहार रूप में, चरितार्थ होने की व्यवस्था है । अस्तु मानव ही सत्य धर्म के प्रमाण के रूप में धारक वाहक है।

23. न्याय (सौजन्यता) - 24. संवेदना

परिभाषा : न्याय :- (1) मानवीयता के पोषण, संवर्धन एवं मूल्यांकन के लिए सम्पादित क्रिया-कलाप । (2) सम्बन्धों व मूल्यों की पहचान व निर्वाह तथा मूल्यांकन व उभय तृप्ति क्रिया ।

संवेदना :-(1)पूर्णता के अर्थ में वेगित होना । (2) नियम-

त्रय सहित किया गया कार्य, व्यवहार, विचार । (3) विकास व जागृति के प्रति वेदना = जिज्ञासा, अपेक्षा, आशा । (4) जाने हुए को मानने के लिए, पहचाने हुए का निर्वाह करने के लिए, स्वयं स्फूर्त जीवन सहज उद्देश्य और प्रक्रिया । (5) सभी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाह्य संकेतों को, ग्रहण करने की क्रिया । (6) व्यवस्था के प्रति तत्परता । (7) जागृति सहज विधि से प्रमाणित होने के क्रम में ज्ञानेन्द्रियों को संवेगित (पूर्णता के अर्थ में गतित प्रदान क्रिया) करना, क्रिया के रूप में संप्रेषित होना (दूसरे मानव कोस म झ ा ने योग्य, इंगित होने योग्य विधि से प्रस्तुत होना)। न्याय, कार्य रूप में सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, मूल्यांकन, उपलब्धि के रूप में उभय तृप्ति है । न्याय मानव में जीवन सहज जागृति है । जो जानने, मानने, पहचानने-निर्वाह करने में समझदारी है । मनुष्य का समझदारी सहित सफल होना सहज है । समझदारी, जीवन जागृति का प्रमाण है ।

न्याय, नियति-क्रम सहज अभिव्यक्ति है । नियति विकास, रचना व जागृति है । इसमें पूरकता का होना, देखा जाता है । परस्परता में पूरकता होती है।

परस्परता का नाम है, सम्बन्ध ।

ऐसी परस्पता को नियम, नियंत्रण, संतुलन और जागृत विधियों में, समझा जाता है । नियम नियंत्रण-विधि, जड़-प्रकृति में अध्ययनगम्य है । क्योंकि प्रत्येक एक अपने ''त्व'' सहित व्यवस्था के रूप में व्यक्त है । जीवावस्था ने संतुलन और प्राणावस्था ने नियंत्रण को स्पष्ट किया है । ज्ञानावस्था का मानव, जागृति पूर्वक ही नियम, नियंत्रण, संतुलन पूर्वक जानने-मानने, पहचानने व निर्वाह करने की साक्षियों सहित, न्याय, धर्म, सत्य सहजता को प्रमाणित करता है । प्रत्येक मनुष्य का प्रत्येक प्रमाण, मानव परम्परा के लिए प्रेरक होता है । इस प्रकार जागृति पूर्वक मानव, प्रामाणिकता प्रेरकता को प्रमाणित कर पाता है ।

मानव परम्परा में, प्रमाणों की अभिव्यक्ति ही अखण्ड समाज,

सार्वभौम व्यवस्था के रूप में व्याख्यायित हो जाती है । अनुभव के आधार पर ही, प्रमाण व प्रामाणिकता, मानव परम्परा के लिए, सहज समीचीन है । **अनुभव सत्य में, से, के लिए होता है । सह-अस्तित्व ही परम सत्य है** और जीवन जागृति पूर्वक मानव में सत्य का अनुभव होना पाया जाता है। जागृति का साक्ष्य जानने-मानने, पहचानने व निर्वाह करने के रूप में अभिव्यक्त, संप्रेषित व प्रकाशित होता है । ऐसी प्रकाशमानता, सहज ही, सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, स्वयं में व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में ही होती है। यही संवेदना (सौजन्यता) का अर्थ है । संवेदना (सौजन्यता) अपने में न्याय का प्रकाशन और संप्रेषणा है ।

न्याय, प्रत्येक व्यक्ति के लिए जीवन सहज रूप में अपेक्षित शुभकारी वर्तमान है । वर्तमान का तात्पर्य, स्थिति-गति की निरंतरता है । सह- अस्तित्व, अपने में, स्थिति-गति सहित वैभवित है । उसकी निरंतरता ही वर्तमान है । अस्तित्व स्वयं सत्ता में संपृक्त प्रकृति है । इसका, सह-अस्तित्व रूप में होना, वर्तमान सहज है । सह-अस्तित्व ही, स्थिति व गति के रूप में देखने और समझने को मिलता है । सत्ता, अर्थात साम्य रूप में स्थित ऊर्जा में सम्पूर्ण प्रकृति अर्थात सम्पूर्ण इकाईयां संपृक्त हैं । संपृक्त होने के फलस्वरूप अविभाज्यता व सह-अस्तित्व प्रमाणित है । सत्ता, अपने स्वरूप में व्यापक-साम्य है, यह समझ में आता है । ''व्यापक'' - इस नामकरण का तात्पर्य यह है कि - ''सत्ता कहां तक फैली है ? इसका अंत कहां है ? - इसका पता नहीं लगता । सत्ता में प्रत्येक एक का, स्थिति-गति में होना, देखने को मिलता है । इस प्रकार सत्ता, व्यापक रूप में, स्थिति पूर्ण है, तथा इसकी निरंतरता है । सत्ता में संपृक्त प्रकृति, स्थिति और गति के, अविभाज्य रूप में संपूर्णता व पूर्णता के अर्थ में स्थितिशील है । ऐसी प्रकृति इस धरती में चार अवस्थाओं में स्पष्ट हो चुकी है । चौथे पद में जागृत मानव, द्रष्टा पद को पा चुका है । द्रष्टा पद के आधार पर ही, यह अस्तित्व कैसा है ? यह समझ में आ गया है । कितना है ? - इसका उत्तर

मनुष्य की आवश्यकतानुसार मिलता ही रहेगा, यह भी समझ में आया है । इस प्रकार, आवश्यकतानुसार अस्तित्व में सब कुछ समझ में आता है । इसी क्रम में न्याय, धर्म, सत्य मानव कुल सहज अभिव्यक्ति, संप्रेषणा व प्रकाशन है ।

न्याय और सौजन्यता ही, पहचानना तथा निर्वाह करने की क्रिया है क्योंकि इसका मूल्यांकन होता है । यह जागृत मानव सहज मानव की अभिव्यक्ति-संप्रेषणा है । इसको जानना, मानना समझदारी का स्वरूप है, यही मानव में जागृति का प्रमाण है ।

मानव सहज रूप में, जाने-माने हुए के आधार पर संविधान व निर्वाह करना चाहता है । यह प्रत्येक मनुष्य में पाई जाने वाली कर्म-स्वतंत्रता, कल्पना शीलता की महिमा है । मानव में यह अनुस्यूत क्रिया है । यह मानव सहज मौलिकता में से एक महिमा है । ऐसे वैभव के आधार पर, उसकी तृप्ति के अर्थ में, मनाकार को साकार करने, मनः स्वस्थता का आशावादी होना सहज हुआ है । यह हर मानव में अपेक्षा और जागृत मानव ही प्रमाण है । इस प्रक्रिया के क्रम में, मनुष्य को तृप्ति और उसकी निरंतरता के लिए, उन्मुख करना सहज रहा । फलस्वरूप चिंतन और मानसिक क्रियाओं को हमने अपनाया व प्रयोग प्रक्रिया को अपनाते आया । इस वर्तमान में मेरा भी प्रयास चल रहा है ।

यह निश्चित है कि जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण में पारंगत होने के उपरान्त ही मानव का न्याय के प्रति जागृत होता है। जीवन का सहज ऐश्वर्य ही जागृति होने के कारण नैसर्गिक न्याय, समाज-न्याय, व्यवस्था न्याय, मानवीयता पूर्ण आचरण के रूप में समझ में आता है। नैसर्गिक-न्याय अपने में, धरती और धरती के वातावरण को नियमित, नियंत्रित और संतुलित रहने देकर, जीने की कला के रूप में है ।

यह धरती विकास क्रम में, नियम पूर्वक संतुलित रहने की स्थिति में, मानव का अवतरण इस धरती पर हुआ । मानव इस धरती पर रहने योग्य रहा ही तभी परम्परा पनप पाई । मानव-परम्परा, बहु

संख्या में फैल तो गई, किन्तु धरती के साथ मानव ने, जो कुछ अभी तक किया है, उससे धरती का संतुलन बिगाड़ने का सर्वाधिक काम किया । यह धरती सीमित है। इस धरती की सम्पदा भी सीमित है । इसका संतुलन, इसमें विकसित सभी धातु, उपधातु, रस-उपरस रूपी खनिज और वनस्पतियों का अनुपात ही, इसके नियंत्रण को बनाए रखता है । आदि काल से धरती पर मनुष्य निवास कर रहा है, उसे इस धरती के नियंत्रण के लिए अनुपातीय ज्ञान न रहा, इस कारण जैसा बन पड़ा, वैसा ही वह मनमानी करते आया । जैसे ही विज्ञान, लोकव्यापीकरण के रूप में विकसित होते आया उसी अनुपात में धरती के साथ अत्याचार बढ़ता ही रहा । मानव का मानव के साथ आदि काल से अत्याचार रहा ही है । उल्लेखनीय बात यही है कि विज्ञान आंरभ होने के उपरान्त ही, इस धरती को सर्वाधिक शोषण करने का कार्य सम्पन्न हुआ ।

यह विदित हो चुका है कि **परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था** में भागीदारी करने के क्रम में मानव संचेतना (संवेदनशीलता, संज्ञानशीलता) सहज मानसिकता सार्थक होने के स्थिति गति के रूप में यह मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान शास्त्र अध्ययन के लिए प्रस्तुत है । इस मानसिकता से ही समाज और व्यवस्था में न्याय संतुलन नियंत्रण सहज प्रमाणित होता है और नैसर्गिक प्राकृतिक क्रिया-कलापों के साथ न्याय पूरकता विधि के साथ मानसिकता सहित प्राकृतिक न्याय, नैसर्गिक न्याय निश्चित होना पाया जाता है । इन्हीं निश्चयन के साथ-साथ जनसंख्या नियंत्रण, प्रकृति-प्रदूषण निवारण प्रक्रिया, वन, वन्य पशु और पालतू पशुओं के साथ न्याय, वन खनिज संरक्षण, जल संरक्षण, भूमि संरक्षण प्रवृतियां क्रियान्वयन होगी।

युद्ध मुक्ति के साथ-साथ अनाचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार, मिलावट, तनाव ग्रसित मानसिकताओं का निराकरण प्रक्रिया वैभवित होगी । मानव जाति को अखण्ड समाज के रूप में और मानव धर्म को सार्वभौम व्यवस्था के रूप में पहचानना आवश्यक है । इसके

पहले जानना मानना अनिवार्य है ही ।

मानव परम्परा में, न्याय का लोकव्यापीकरण होने के लिए अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था और मानवीयता पूर्ण आचरण ही प्रमाण है । अस्तु, समाज न्याय व व्यवस्था सुलभ होने के साथ ही नैसर्गिक न्याय सार्थक होता है। इससे पता चलता है कि सर्वतोमुखी समाधान, न्याय, जीवन - जागृति पूर्वक होने वाली सहज सार्थकता है ।

25. तादात्मता - 26. साहस

परिभाषा : तादात्मता :- नित्यता के अर्थ में स्वीकार सहित किया गया निर्णय।

साहस :- सहनशीलता समेत प्रसन्नता सहित किया गया व्यवहार क्रियाकलाप ।

वृत्ति में तुलन और विश्लेषण क्रिया निरंतर सम्पन्न होता ही रहता है। यह हर जीवन में जागृति के अनंतर निश्चय के अर्थ में ही सार्थक होना पाया जाता है । निश्चयता का ध्रुव बिन्दु जीवन में वहन क्रिया के रूप में ही होना समझ में आता है । वहन क्रिया क्षमता का द्योतक होता है । वही प्रकाशन और संप्रेषण क्रिया योग्यता के अर्थ में होना पाया गया । प्रकाशन, सम्पूर्णता के अर्थ में जाना माना जाता है । इस प्रकार जागृत जीवन में जो वैभव निरंतर निहित रहता ही है उसी में से एक आयाम अथवा कोण का स्वरूप तादात्मता और साहस के रूप में पहचान होता है । तादात्मता में जागृत मानव का कार्यरूप इस प्रकार से स्पष्ट होता है कि स्वयं में, से, के लिए नित्यता स्वीकार रहता ही है क्योंकि जीवन नित्यवस्तु है । नित्यवस्तु का तात्पर्य परिणाम से मुक्त वस्तु है ।

इस प्रकार जिनके साथ हम कार्य व्यवहार सह-अस्तित्व विधि से सार्थक रूप देते हैं इसी क्रम में तादात्मता स्पष्ट होती है । तादात्मता का मुख्य रूप एकता समानता के ध्रुवों पर नियत रहता है । तादात्मता एकता का द्योतक होता है । एकता का ध्रुव जीवन में अपने स्वरूप

में एक गठनपूर्ण परमाणु के रूप में नित्यता को प्रकाशित किए रहता है । जीवन शक्ति और बलों में समानता की स्वीकृति लक्ष्य में समानता की स्वीकृति, कार्यरूप में देखने को मिलता है तभी तादात्मता का वैभव मानव परम्परा में स्पष्ट होता है।

तादात्मता का प्रमाण परस्पर मानव में ही स्पष्ट होती है । इसका तात्पर्य यही हुआ परस्पर मानव एकरूपता स्वीकृति सहित कार्य व्यवहारों को निश्चय कर पाना जागृति की महिमा होता है । तादात्मता और उसकी चरितार्थता के रूप में पहचान में आने वाले साहसिकता सहित हर निश्चय कार्य व्यवहार विचार समान सूत्रों से सूत्रित व्याख्यायित रहता है । सह-अस्तित्व में जीने में क्रम में मानव सहज परस्परता में जीवन सहज एकरूपता ही तादात्मता का आधार है । शरीर, मानव में जीवन के साथ अविभाज्य रहते हुए तादात्मता का आधार नहीं बन पातीं क्योंकि बदलता हुआ शरीर, कार्य परस्परता तादात्मता का कोई आधार नहीं बनता । इसके साथ यह भी देखा गया है कि हर मानव तादात्मता सहित जीना चाहता है। जीवन के सभी, आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्य जागृति सहज प्रकाशन में नित्य तृप्ति समाधान सम्पन्नता प्रमाणित होती है ।

वहन क्रिया में सहनशीलता प्रमाणित रहता ही है । जीवन अपने जागृति को प्रमाणित करने के क्रम में सहनशीलता को सुख, शांति, संतोष, आनन्दपूर्वक स्पष्ट करने के क्रम में सम्पूर्ण विचार सहित किया गया कार्य व्यवहार साक्ष्य रूप में स्पष्ट हो जाता है ।

मानव का अध्ययन में यह स्पष्ट होता है कि कुछ भी कायिक, वाचिक, मानसिक रूप में करता है वह प्रसन्नतापूर्वक सार्थक होता हुआ देखने मिलता है । हर भ्रमित मानव भी प्रसन्नता के चाहत में ही होना पाया जाता है । प्रसन्नता में न्याय संगत, समाधान और समृद्धि संगत का द्योतक है। मानव परम्परा में प्रसन्नता का आधार इन्हीं तीन तथ्य आधार बिन्दुओं के रूप में अध्ययनगम्य होता है । इनमें से समाधान और न्याय, जीवन सहज प्रसन्नता, सुख, शांति, संतोष के रूप में और समृद्धि, शरीर पोषण-संरक्षण समाज गति के

अर्थ में सार्थक होता हुआ समझ में आता है ।

जो जिस को समझ में आया रहता है उसे वह प्रमाणित करने के क्रम में ही होता है । समझ में आने का सारा स्रोत सह-अस्तित्व ही है । सह-अस्तित्व में ही जीवन भी अविभाज्य वर्तमान है । सह-अस्तित्व में नित्य समाधान, नित्य सम्बंध, निरंतर न्याय मानव कुल में, से, के लिए समीचीन रहता ही है । इसे सार्थक रूप देते ही रहना साहसिकता का तात्पर्य है । साहसिकता के साथ उत्साह बना रहता है जो दिशा सहित गति को प्रशस्त किया रहता है ।

हर मानव सुखी होने के अर्थ में ही सह-अस्तित्व में तादात्मता और साहस को प्रमाणित करता है । सत्य, नित्य शाश्वत वर्तमान होने के आधार पर ही जीवन जागृति और मानव जागृतिपूर्वक प्रमाणित होने की आवश्यकता सतत समीचीन है । मनुष्य अपने सम्पूर्ण आचरण को आवश्यकता के आधार पर ही गतिशील बनाए रखता है । मानव का सम्पूर्ण दिशा, कोण, आयाम, परिप्रेक्ष्य, देशकाल, अभिव्यक्ति, संप्रेषणा प्रकाशन मानव लक्ष्य और जीवन लक्ष्य के अर्थ में ही स्पष्ट होना पाया जाता है ।

यह जागृति सह-अस्तित्व में अनुभव का वैभव है। अनुभव मूलक विधि से ही जीवन सहज सम्पूर्ण क्रिया कलाप लक्ष्य की आपूर्ति के लिए सम्पूर्ण कार्य विन्यास विचार किया जाना पाया जाता है । इस विधि से सम्पूर्ण कार्य व्यवहार, विचारों का मूल्यांकन होना सहज है । परस्परता में मूल्यांकन निरंतर सम्पन्न होने वाली प्रक्रिया है । मानव प्रवृत्तियां विचारों के रूप में, साक्षात्कार के रूप में बोध के रूप में और आशा योजना के रूप में कार्य व्यवहार का रूप धारण करता है। यह परस्परता में सम्पन्न होना पाया जाता है।

परस्परता में स्वीकृति, तृप्ति एवं मूल्यांकन की परिणामों में अपेक्षा है। ये अपेक्षाएं सार्थक होने के क्रम में परिवार सम्बंध, समाज सम्बंध, व्यवस्था सम्बंध, सार्थक रूप में गतिशील होना सहज है । कुंठा, परस्परता में मूल्यांकन सहित स्वीकृति, प्रसन्नता, तृप्ति

की न्यूनता का द्योतक है।

इसकी आपूर्ति जीवन जागृति के अनंतर, निरंतर वैभव के रूप में सार्थक होता ही रहता है। इसको इसी स्वरूप में देखा जा सकता है । एक बार मानव अपने सही कार्य व्यवहारों में प्रमाणित हो जाता है वही उसका आगामी कार्ययोजनाओं का आधार बन जाता है । इन्हीं सहज प्रमाणों के साथ मिसाल के साथ हमें यह बोध होता है और बोधपूर्वक तुलन, विश्लेषण सहज निर्णयों के रूप में तादात्मता और साहसिकता की जीवन सार्थकता और मानव सार्थकता के अर्थ में स्पष्ट और प्रमाणित कर देना बनता है ।

27. संयम - 28. नियम

परिभाषा : संयमता :- मानवीयतापूर्ण विचार, व्यवहार एवं व्यवसाय में नियंत्रित होना ।

नियम :- नियंत्रणपूर्वक स्वयं स्फूर्त विधि से, व्यवस्था में जीते हुए समग्र व्यवस्था में भागीदारी करने की प्रवृत्ति और प्रमाण ।

संयम, नियम, नियंत्रण, सन्तुलन और जागृतिपूर्वक दायित्व और कर्तव्य निर्वाह होना पाया जाता है । इन प्रक्रियाओं को नियम के नाम से जाना जाता है । नियम, मनुष्य सहज रूप में, दायित्वों के प्रति होने वाली उदात्तीकरण, स्वयं स्फूर्त संप्रेषणा, प्रकाशन कार्य व्यवहार है । ऐसे संयम व नियम, व्यवहार कार्यो व्यवस्था के अर्थ में सार्थक होना सहज है । जबकि अक्षय बल व अक्षय शक्ति सहज जागृति की अभिव्यक्तियां हैं । मानव सहज बहुमुखी अभिव्यक्ति, वृत्तियों-प्रवृत्तियों का होना पाया जाता है । इसी क्रम में, जागृति पूर्ण एक प्रक्रिया, पद्धति, प्रणाली और नीति को पहचानना सहज है, अध्ययन की सार्थकता है ।

मनुष्य अपनी सार्थकता के क्रम में, संयम और नियमपूर्वक अपने आचरण, व्यवहार, व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी से प्रमाणित होता है । अध्ययन अभ्यास व अनुसंधान कार्यो से जागृत होने का प्रमाण प्रकाशित, संप्रेषित तथा अभिव्यक्त होता है । समझदारी पूर्वक

इन तथ्यों को प्रकाशित करते समय, सहज रूप में ही, सयंमता व नियम स्वयं स्फूर्त रूप में प्रकाशित होता है। यह शुभ, सुन्दर, समाधान सहज स्फुरण है । प्रत्येक मनुष्य शुभ, सुन्दर-समाधान सहज सह-अस्तित्व को अनुभव करना चाहता है । ऐसी अनुभूति के लिए अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन अध्ययनार्थ प्रस्तुत है जिसके लिए हर मानव प्रतीक्षारत है । ऐसी अनुभूति ही सुख-शान्ति, संतोष और आनंद का स्वरूप है ।

'मानवीयतापूर्ण आचरण' मूल्य, चरित्र, और नैतिकता का संयुक्त रूप है । मूल्य, जागृत मानव सहज अभिव्यक्ति में जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्य, मानव के संदर्भ में है। उपयोगिता मूल्य, कला मूल्य प्राकृतिक ऐश्वर्य पर निपुणता कुशलता पूर्ण श्रम नियोजन पूर्वक उपयोगिता मूल्य और कला मूल्य मूल्यांकित होता है । मूल्यों के आधार पर ही मानव लक्ष्य निर्धारित होता है । मानव लक्ष्य समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व समझदारी और जागृति ही है । जिसमें से मानव मूल्य धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा है । **धीरता** अर्थात् न्याय के प्रति निष्ठा और दृढ़ता से है। **''वीरता''** न्याय के प्रति निष्ठा रखते हुए, उसमें (दूसरों में भी) निष्ठा स्थापित करना है । वीरता को स्थापित करने में उसमें जितनी भी बाधाएं है, उसका निवारण करना है, यही वीरता का प्रमाण है । समझदारी सहित अनुभव बल, विचार शैली, जीने की कला ही धीरता, वीरता, उदारता, और दया, कृपा, करुणा का प्रमाण है । यही न्याय व समाधान सहित किया गया, सम्पूर्ण अर्पण-समर्पण भी है । **दया** अर्थात पात्रता के अनुरूप वस्तु को सुलभ करने की क्रिया-कलाप है । **कृपा** अर्थात वस्तु हो पात्रता न हो ऐसी स्थिति में पात्रता को स्थापित करने की क्रिया है । **करुणा** अर्थात वस्तु और पात्रता दोनों न हो, ऐसी स्थिति में उसे उपलब्ध कराने की सहज क्रिया है।

चरित्र स्वधन, स्वनारी / स्वपुरुष तथा दया पूर्ण कार्य-व्यवहार विन्यास है ।

स्व-धन प्रतिफल, पारितोष, पुरस्कार के रूप में प्राप्त धन

है।

स्व-नारी या **स्व-पुरुष** विवाह पूर्वक प्राप्त, दाम्पत्य पति-पत्नी सम्बंध है । दयापूर्ण कार्य-व्यवहार के सम्बन्ध में, पहिले कहा जा चुका है ।

नैतिकता मानव कुल में तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग और सुरक्षा सहज प्रमाण है । सदुपयोग से सुरक्षा, सुरक्षा से सदुपयोग सहज है । निपुणता कुशलता पूर्वक तन-मन के नियोजन से उत्पादित वस्तुओं में कला व उपयोगिता मूल्य स्थापित होता है । फलस्वरूप वस्तुओं का उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता का सूत्र पांडित्यपूर्वक स्वयं स्फूर्त विधि से उदय होता है । धन का सदुपयोग रूप, शरीर पोषण, संरक्षण और समाज गति में अर्पित-समर्पित होने की क्रिया है। जिनके पोषण के अर्थ में वस्तुओं का अर्पण-समर्पण किया जाता है; उनकी सुरक्षा सहज है । जो अर्पण करता है, उनके द्वारा सदुपयोग है। उसके लिए अर्पण करने वाले को सदुपयोग संतुष्टि मिलती है तथा धन की सुरक्षा होती है ।

इस प्रकार धन की सार्थकता, समझ में आती है । **तन का उपयोग, सदुपयोग मन के साथ सम्पन्न होता है।** जीवंतता, मानसिकता सहित ही, शरीर संचालित होना पाया जाता है, मानसिकता का सदुपयोग तभी हो पाता है जब जीवन जागृत होता है इतना ही नहीं, मानसिकता, जीवंतता सहित ही, धन का भी सदुपयोग, सुरक्षा, समझ में आती है । समझदारी के अर्थ में ही परिणामों का मूल्यांकन होता है ।

शरीर की जीवंतता और मानसिकता का मूल रूप जीवन और उसकी महिमा है । जागृत जीवन ही तन, मन और धन का द्रष्टा, कर्ता और भोक्ता है। इस प्रकार, मनुष्य से संपन्न होने वाली सभी क्रियाएं फल परिणाम है । जीवन मूलक अभिव्यक्ति, संप्रेषणा और प्रकाशन है । इस प्रकार मानसिकता पर आधारित तन, मन और धन के अनुरूप कार्यकलाप व उसके अनुसार परणितियां होना, सहज है । इस प्रकार मानवीयता है । स्वयं मानसिकता का सदुपयोग,

निर्दिष्ट रूप में, स्वयं व्यवस्था तथा समग्र व्यवस्था में भागीदारी है।

व्यवहार, मानव में सहज प्रक्रिया है कि मनुष्य, मनुष्य के साथ व्यवहार करता है । मनुष्येतर प्रकृति के साथ (मनुष्य) श्रम नियोजन पूर्वक उत्पादन करता है । मनुष्येतर प्रकृति के साथ श्रम-नियोजन पूर्वक उपयोगिता व कला मूल्य को स्थापित करना ही **उत्पादन** है । उत्पादन क्रम में नैसर्गिकता के सहज संतुलन को बनाए रखना जागृति का प्रमाण है । जीवन शक्तियों का आवश्यकता के अनुसार प्रवर्तन और परावर्तन होता है । एक से अधिक मनुष्यों के साथ जीने के क्रम में शरीर पोषण संरक्षण के आधार पर उत्पादन व निर्माण कार्य करना एक आवश्यकता रही है ।

परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था का स्वरूप एक समझदार परिवार से सम्पूर्ण परिवार मिलकर विश्व परिवार का रूप है । प्रत्येक मनुष्य, सम्पूर्ण मनुष्यों से सम्बन्धित है । प्रत्येक एक, अनंत के साथ सम्मिलित है । अस्तित्व में सब, सबसे सम्बन्धित है । इन्हीं सम्बन्धों को पहचानना और मूल्यों का निर्वाह करना ही **सामाजिकता है । विश्व परिवार व्यवस्था ही, अखंड समाज है ।** विश्व परिवार व्यवस्था ही सार्वभौम व्यवस्था है । मानव सुखधर्मी है, परिवार की परिभाषा यह है कि परिवार के सभी सदस्य परस्पर परिवार गत उत्पादन कार्य में, परस्पर पूरक हैं । सम्बन्धों को पहचानना, मूल्यों का निर्वाह करना, यही विश्व परिवार की भी परिभाषा है । परिवार में व्यवस्था का प्रमाण, वर्तमान होता है ।

मूलतः, मानव जागृति पूर्वक अपने मानवत्व सहित स्वयं से व्यवस्था है और समग्र व्यवस्था में भागीदार है । व्यवस्था के प्रकाशन, संप्रेषणा और अभिव्यक्ति का प्रमाण, मनुष्य की परस्परता में है । अस्तित्व ही, सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में सामरस्य पूर्ण नित्य व्यवस्था है । नियमित, नियंत्रित, संतुलित, जागृति, सहज ही व्यवस्था का प्रमाण है । यही स्वभावगति का स्वरूप है ।

इस प्रकार पदार्थ अवस्था का नियमित रहना ही उसकी स्वभाव गति है । प्राण अवस्था का नियमित, नियंत्रित रहना ही

उसकी स्वभाव गति है । जीवावस्था के सम्पूर्ण जीवों का नियमित, नियंत्रित व संतुलित रहना उनकी स्वभाव गति है। ज्ञानावस्था के मानव का नियमित नियंत्रित, संतुलित व जागृत रहना ही मानव की स्वभाव गति है । इस प्रकार मानव, का अपने में संयम व नियम को प्रमाणित करना जागृति पूर्वक सहज है । जागृति का तात्पर्य न्याय, धर्म, सत्य को प्रमाणित करना ही है । इसकी आवश्यकता है ही ।

जागृत मनुष्य, व्यवसाय में नियमित रहता है । आचरण में नियंत्रित रहता है, विचारो में संतुलित व समाधानित रहता है अनुभव में जागृत रहता है । व्यवहार में प्रमाणित रहता है । समग्र व्यवस्था में भागीदार रहता है तथा स्वानुशासन के रूप में जागृति का सम्पूर्ण प्रमाण स्पष्ट होता है । इसे सर्व-सुलभ करना ही मानवीयता पूर्ण कार्य-क्रम है।

29. वीरता - 30. धीरता

परिभाषा : वीरता :- (1) अन्य को न्याय दिलाने की क्रिया में, स्व शक्तियों का नियोजन । (2) दूसरों को न्याय उपलब्ध कराने में, अपनी भौतिक एवं बौद्धिक शक्तियों का नियोजन करना ।

धीरता :- न्याय के प्रति निष्ठा एवं दृढ़ता ।

''वीरता'' अपने में न्यायपूर्ण आचरण, व्यवहार व्यवस्था व व्यवस्था में भागीदारी उसकी निरंतरता है, साथ ही न्याय के, लोकव्यापीकरण करने में सक्रियता है । **लोक न्याय का आधार मानवीयता है ।** मानव अपने जन्म सहज रूप में ही न्याय का याचक है । न्याय का याचक होने का तात्पर्य, दूसरों से सतत ही न्याय की अपेक्षा है । स्वयं को सुरक्षित रखने के रूप में और पोषण सहज रूप में (अथवा पोषण सहज सुलभ होने की अपेक्षा के रूप में) प्रत्येक मनुष्य में अध्ययनगम्य है । विशेषकर परम्परा से, इसकी अपेक्षा, प्रत्येक मानव संतान में होना पाया जाता है । धीरता, वीरता अपनी परिभाषा के अनुसार महत्व और आवश्यकता स्पष्ट हो चुकी है। इसमें जीवन जागृति पूर्वक न्याय को सम्बंधों में पहचानने, निर्वाह

करने, मूल्यांकन करने, और मानव अपनी परस्परता में उभय तृप्ति सहज अनुभव करने, नैसर्गिक सम्बंधों में मूल्यांकनपूर्वक नैसर्गिकता में नियम, नियंत्रण, संतुलन को अनुभव करने और स्वयं में तृप्ति पाने का कार्यक्रम है।

मानव मनोविज्ञान अपने में मानव संचेतना के अर्थ में सार्थक है। संचेतना में ही संज्ञानशीलता मानव में, से, के लिए मौलिक अधिकार अभिव्यक्ति स्वत्व स्वतंत्रता के रूप में जाना माना पहचाना निर्वाह करना जागृति है । फलस्वरूप यही व्यवहार के लिए आवश्यक और उत्तम प्रवृत्ति के रूप में वृत्ति के रूप में प्रमाणों के रूप में पहचाना गया । हम अपने में तृप्त होने के उपरान्त ही समग्र मानव तृप्ति को स्रोत के रूप में मूल्यांकित करते हैं। फलस्वरूप इसे अभिव्यक्त संप्रेषित करने के लिए उद्देश्य बना । हम यह भी अनुभव कर चुके है कि हर नर-नारी, शिशु, बाल, कौमार्य युवा और प्रौढ़ अवस्थाओं को गुजरता हुआ वृद्धावस्था तक पहुंचता है । यह सब शरीरगत रचना और परिणामों के आधार पर नाम है । शरीर रचना प्राण कोशाओं से रचित होते हैं । यह मूल रूप में गर्भाशय में भ्रूण अवस्था से आरंभ होकर सम्पन्न होना सर्वविदित तथ्य है अथवा विदित होने योग्य तथ्य है। ऐसे शरीर में ही मेधस तंत्र सहित अंग अवयव और तंत्रों सहित मानव शरीर रचना उसकी संपूर्णता को पहचाना गया। ऐसी समृद्धिपूर्ण मेधस सम्पन्न शरीर, जीवन संचालित करने के तथ्य को बारम्बार स्मरण में ला चुके है । इस प्रकार प्रत्येक नर नारी जीवन और शरीर का संयुक्त रूप में होना स्पष्ट है हमें विदित है। सर्वविदित होने की आवश्यकता भी है ।

जीवन और शरीर में से **मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान जीवन और जीवन कार्य; जीवन प्रवृति; जीवन विचार, जीवन सहज विधि से होने वाले विश्लेषण, उसमे संज्ञानशीलता विधि उसका मानव प्रयोजन; जीवन प्रयोजन को स्पष्ट करना प्रधान लक्ष्य है ।** मानव प्रयोजन के रूप में यह पहचाना गया है कि मानव अपने मौलिक रूप में नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय धर्म, सत्य सहज संप्रेषणा, अभिव्यक्ति, प्रकाशन है । यह मानव शरीर संयोगपूर्वक

मानव परम्परा में ही मूल्यांकित है। इसकी आवश्यकता उपयोग सदुपयोग को सम्बंधों में पहचाना गया है । सम्बंधों को मानव सम्बंध, प्राकृतिक (नैसर्गिक) सम्बंध के रूप में पहचाना गया है । इनमें इन तथ्यों का उपयोग, सदुपयोग, खूबी पहचाना गया ।

फलस्वरूप नैसर्गिक सम्बंधों में संतुलन, असंतुलन बनाये रखने के सर्वाधिक कारक तत्व के रूप में पहचाना गया इसलिए नैसर्गिक संतुलनकारी समझ, शरीर और जीवन संतुलनकारी समझ, परिवार संतुलनकारी समझ, अखंड समाज संतुलनकारी समझ, सार्वभौम व्यवस्था संतुलनकारी समझ, धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा, सहज समझदारी पूर्वक निर्वाह होना पहचाना गया । इस सभी क्रिया-कलाप का मूल तत्व जागृति पूर्ण समझदारी होना अनुभव में आया । इन पांच संतुलन बिन्दुओं को बताया गया है इसमें से शरीर और जीवन संतुलन एक मानव के रूप में पहचानने की आवश्यकता है। 'मानव' शब्द में नर-नारी समाहित रहते ही हैं । इतना ही नहीं सभी आयु वर्ग में भी निर्देशित होते हैं ।

उक्त विभिन्न आयु वर्ग को इंगित होने वाले क्रम में युवावस्था की प्रवृत्ति, स्वयं स्फूर्त निश्चयन उसकी गति के साथ पाया जाता है। शरीर की अवस्था से अधिक महत्वपूर्ण पहचान यही है कि स्वयं स्फूर्त विधि से मनुष्य हर आयाम कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्यों में अपने प्रवर्तन लक्ष्य कार्य विधि और प्रक्रिया को प्रमाणित करने के लिए तत्पर । इसे हर साथी, सहयोगी, मित्र, बंधु, परिवार में पहचानना स्वाभाविक है । पहचानने में सर्वाधिक भाग मूल्यांकन के रूप में है। मूल्यांकन में सर्वाधिक भाग संतुलन असंतुलन के रूप में ही है।

ऐसे संतुलन असंतुलन का मूल्यांकन, सार्वभौम लक्ष्य अथवा और किसी लक्ष्य के आधार पर जो सार्वभौमता से वंचित है, के आधार पर होना पाया जाता है । जो सार्वभौम लक्ष्य नहीं है इस प्रवृति प्रक्रिया को असंतुलन के रूप में हर जागृत मानव पहचानता है । सार्वभौम लक्ष्य की ओर वृत्ति, प्रवर्तन कार्य प्रणाली को संतुलन के रूप में पहचानना सहज है । यह जागृत मानव और भ्रमित मानव दोनों को समझ में आता है । इन सभी क्रियाकलापों का मूल

जीवन जागृति है । जीवन में ही मानसिकता का होना स्वाभाविक है। मानसिकता पूर्वक ही हर आयु वर्ग में स्थित नर-नारियों में प्रवृत्ति, कार्य और अपेक्षाएं सर्वेक्षित मूल्यांकित हो पाती है।

जागृत जीवन सहित हर मानव, शरीर और जीवन में संतुलन को प्रमाणित करता ही है । जागृति सहज विधि से ही जानना, मानना, पहचानना निश्चय करना और निर्वाह करना बन पाता है । हर नर-नारी के लिए वांछित जीवन जागृति का स्रोत मानव परंपरा ही है । मानव परम्परा ही बहु आयाम विधि से कार्यरत रहना देखने को मिल रहा है । इन सभी आयामों में जागृति संतुलन प्रमाणित होना मानव में, से, के लिए नियति सहज विधि है । नियति सहज विधि का तात्पर्य सह-अस्तित्व सहज विधि है । यही सम्पूर्ण स्थिति गति का सूत्र है ।

इस घरती पर मानव की स्थिति अस्तित्व सहज, सह-अस्तित्व क्रम में अवस्थित रहना स्पष्ट किया जा चुका है । दूसरी विधि से यह स्मरण में रहना आवश्यक है तभी जीवन सहज मनोविज्ञान को जागृति प्रामाणिकता, प्रयोजनों के अर्थ में समझना सार्थक होता है । इसमें जीवन जागृत होना ही सर्वोपरि पहचान है । ऐसी जागृत मानसिकता के अर्थ में ही मानव संचेतना कार्य विधि और प्रयोजनों को स्पष्ट किया जाना इस मनोविज्ञान शास्त्र की अभिव्यक्ति में निहित है। शास्त्र का तात्पर्य भी यही है कि समझ, विचार, कार्य, व्यवहार, फल-परिणाम पुनः समझ के अनुरूप तृप्तिदायी, तृप्तिकारी और इसकी निरन्तरता होना यह स्वानुशासन स्वतंत्रतापूर्वक प्रमाणित होता है ।

मानव अपने अधिकार पूर्णयथा स्थिति को जीवन जागृति और समझदारी के आधार पर अनुभव करना है । यही मनोविज्ञान की अभिलाषा है । समझदारी के क्रम में ही हम प्रकारान्तर से अस्तित्व, जीवन और मानवीयता पूर्ण आचरण को समझ चुके हैं । यही समझ का स्वरूप है । समझदारी के अनुरूप विचार विश्लेषण एवं योजना रूपी ईमानदारी का पक्ष है। फलस्वरूप कार्य व्यवहार रूप में प्रमाणित होना बनता है । इसी क्रम में शरीर और जीवन संतुलन को मूल्यांकित करना मूल्यांकित होना स्वाभाविक है । शरीर का संतुलन अपने में

जीवन जागृति को प्रकाशित करने के अर्थ में सार्थक होना पाया गया है। यह भी देखा गया, समझा गया कि जीवन जागृति को प्रकाशित, संप्रेषित अभिव्यक्त करने के क्रम में शरीर में व्यतिरेक निम्नतम होना पाया गया । जो कुछ भी व्यतिरेक होना पाया गया वह नैसर्गिक घटना क्रम में ही घटित होना पाया गया । अस्तु, शरीर और जीवन मानसिकता का संतुलन सहज होने में स्पष्ट नजरिया समझ में आता है ।

धीरता-वीरता पूर्वक ही **परिवार संतुलन**, परिवार संतुलन को ही परिवार में भागीदारी करने वाले सभी मानव सम्मिलित रहते है । ये सभी समझदार हैं अथवा होना चाहते हैं । ऐसी स्थिति में परिवार संतुलन सहज रूप में प्रमाणित होता है । हर समझदार मानव सम्बंधों को पहचानता ही है जैसे माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नि । यह तीन सम्बंध स्पष्ट रहता ही है। माता-पिता का भी माता-पिता होना वांछित संभावित रहता ही है । उनका भी भाई-बहन होना स्वाभाविक है इस प्रकार वंशानुक्रम में अर्थात संतान के अनन्तर पुनः संतान क्रम में ये सब सम्बंध स्पष्ट रहता ही है । इन्हीं को हम दादा-दादी चाचा-चाची आदि नामों से संबोधित किया करते है । इनमें प्रयोजनों को समझना ही समझदारी है, फलस्वरूप परिवार संतुलन होना सहज है । परिवार में ही न्याय का अपेक्षा बनी रहती है । यह अपेक्षाएं पूरा होने के मूल में सम्बंधों को प्रयोजन के मूल में पहचान लेना उन सम्बंधों में निहित मूल्यों को निर्वाह करना ।

माता-पिता के साथ सम्बंध निर्वाह परिवार का उद्देश्य समाधान समृद्धि के रूप में पहचान लिए रहते है । परस्पर व्यवहार में हर पुत्र-पुत्री सम्मान कृतज्ञता पूर्वक विश्वास निर्वाह करना बन पाता है । जबकि परस्पर परिवार के उद्देश्य के लिए कार्यकलाप बना रहता है और व्यवहार बना रहता है । व्यवहार की अभिव्यक्ति हर जागृत मानव में तन-मन-धन का अर्पण-समपर्ण सहित उत्पादन के लिए नियोजन कार्य सहित निर्वाह होना पाया जाता है । फलस्वरूप परिवार सहज समाधान समृद्धि निरंतर प्रमाणित होना स्पष्ट हो जाता है । इसी प्रकार भाई-बहन के परस्परता में भी परिवार सहज उद्देश्य ही प्रधान

रहता है इसमें भागीदारी करना ही परिवार संतुलन का प्रमाण है । परिवार में भागीदारी करने वाले हर व्यक्ति में परस्पर और आगंतुक रूप में आये हुए लोगों के साथ जो समाधान समृद्धि का भरोसा सदा-सदा प्रमाणित होना ही परिवार संतुलन है ।

ऐसे परिवार संतुलन के साथ ही नैसर्गिक संतुलन की योजना कार्य समाहित रहता है और समझदार सभी मानव परिवार के साथ सम्बंध निर्वाह लक्ष्य के संदर्भ में हो पाता है । इस धरती के सभी परिवार समझदार होने की स्थिति में विश्व मानव परिवार होने की संज्ञा पाते हैं । परस्पर हर परिवार एक दूसरे के पूरक होना सार्थकता के अर्थ में मूल्यांकित होता है । मानव सहज सार्थकता अथवा सार्वभौम लक्ष्य, समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व ही अतएव सम्पूर्ण कार्य योजना, विचार विधि, उसके मूल में समझदारी, ये सब एक दूसरे के पूरक और संतुलनकारी होना पाया जाता है । इस मनोविज्ञान शास्त्र का उद्देश्य भी यही है । हर मानव परिवार समझदार होना ही है, होंगे ही ।

इसका आधार है कि हर मानव समझदार होना चाहता है । तभी समाज और व्यवस्था के संतुलन को प्रमाणित करना बनता है । जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयतापूर्ण आचरण सहज हर जागृत मानव अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में संतुलन को पहचान सकते है । इसी तथ्य वश इस मनोविज्ञान शास्त्र का अभिव्यक्ति, संप्रेषणा प्रस्तुत है ।

अखंड समाज में संतुलन का स्वरूप जागृति पूर्वक, जागृति विधि से समझ में आता है कि सम्पूर्ण परिवार में कार्यरत प्रत्येक मानव, मानवीयता पूर्वक मानव प्रतिष्ठा संपन्न है । मानव प्रतिष्ठा में परस्पर परिवार और परिवार में कार्यरत प्रत्येक इकाई का सम्बंध पहचानने में आता है । यही जागृति है । पुनः इस प्रत्येक मानव मानवीयता पूर्ण प्रतिष्ठा से सहज वैभव है इसे स्वीकारना, पहचानना तदनुसार सम्बंधों को निश्चय करना व्यवस्था और प्रयोजन सूत्र से सूत्रित रहना और इसे प्रयोग करना ही पूरकता विधि है हर जागृत

मानव अपने को पूरकता विधि से ही प्रस्तुत करता है । अतएव अखंड समाज सूत्र मानवत्व के रूप में सार्थक होना हर भ्रमित व्यक्ति को कल्पना में आता है, जागृत व्यक्ति को समझ में आया रहता है।

समझदार व्यक्ति, समझदार व्यक्ति के साथ पूरक होना परिवार में चिन्हित हो जाता है प्रमाणित होता है । फलस्वरूप समाधान समृद्धि हर जागृत परिवार में प्रमाणित होता ही है । ऐसे परिवार में हर व्यक्ति **उपकार अर्थात् उपाय पूर्वक उत्थान** (जागृति और विकास के अर्थ में किया गया तन, मन, धन रूपी अर्थ का प्रयोग उपयोग) से है । जागृति पूर्वक अर्थ का सदुपयोग होना प्रयोजनशील होना, प्रमाणित होता है । इसी तथ्यवश समझदार परिवार में भागीदारी करने वाले उपकार कार्य में प्रवृत और कार्यरत होते है । यह समाधान समृद्धि का वैभव रूपी प्रमाण है । **वैभव का तात्पर्य स्वीकारने योग्य प्रयोजन, आचरण, और समझदारी से है ।** इस प्रकार उपकार करने वाले होने वाले का योग, संगीत अर्थात सार्थकता के अर्थ में उभय स्वीकृति के रूप में सम्पन्न होना पाया जाता है । इस प्रकार प्रयोजनशील सार्थकवादी उपकार कार्यक्रम शिक्षा संस्कार के रूप में ही सार्थक होना पाया जाता है । हर मानव समझदारी से संपन्न होने के उपरांत ही स्वायत्त सम्पन्न होता गया । ऐसी स्वायत्तता को छः प्रकार से पहचाना गया प्रमाणों के रूप में विदित कराया जा चुका है । ऐसे समझदार मानव की पहचान पहले समझाये गये छः समाधान सहज गति के रूप में होने के आधार पर ही हर आयाम दिशा कोण के परिपेक्ष्यो में लिया गया निर्णय समाधानकारी होना स्वाभाविक है। स्वाभाविक का तात्पर्य व्यक्ति जो समझदार हुआ रहता है उनमें समाधानकारी न्यायकारी, प्रयोजनकारी निर्णय बिना दूसरे के सहायता के सम्पन्न होता है । फलतः उपकारकारी होता है । इस प्रकार समझदार परिवार में भागीदारी करने वाले सभी नर नारी उपकारकारी कार्य में प्रवर्तित होते हैं । उपकार कार्य में तीन स्वरूप को पहचाना गया है वह समझा हुआ को समझाना, किया हुआ को कराना, सीखा हुआ को सिखाना ही है । सीखा क्रिया के मूल में समझदारी ही सबल, सार्थक प्रवर्तन है । मानव का प्रवर्तन सह-अस्तित्ववादी

विचार शैली के आधार पर सार्थक होना पाया गया। फलस्वरूप समझकर सीखने का सिद्धांत अपने आप सार्वभौम हो जाता है । सार्वभौमता का तात्पर्य सर्वमानव में स्वीकार होने से है । अतएव उल्लेखनीय बिन्दु यही है कि हर नर-नारी समझदारी पूर्वक ही परिवार में भागीदारी करता है । फलतः परिवार सार्थकता रूपी समाधान, समृद्धि रूपी उपकार हर समझदार परिवार में स्वस्फूर्त विधि से प्रमाणित होता है । उपकार विद्या ही मुख्य बिन्दु है । धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा का प्रमाण सर्वविदित होने और सर्वसुलभ होने का तथ्य है । धीरता वीरता पूर्वक मानव सम्पूर्ण उपकार कार्य करता है ।

उपकार विधि से ही मानव परम्परा सार्थक होती है । मानव परम्परा की सार्थकता का तात्पर्य समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व लक्षित समझदारी, ईमानदारी और जिम्मेंदारी ही है । इसका प्रमाण विधि व्यक्ति सम्पदा के रूप में वैभवित होने और मूल्यांकित होने के रूप में है, ऐसे समझदार मानव परिवार में समाधान, समृद्धि, उपकार वैभवित होने और मूल्यांकित होने, समाज में अर्थात् विश्व परिवार में समाधान, समृद्धि, अभय, सार्थक होने और मूल्यांकित होने, विश्वमानव व्यवस्था सहज फलन समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व प्रमाणित होने और मूल्यांकित होने के रूप में ही हर मानव सम्पूर्ण मानव है । सम्पूर्ण मानव अपनी सार्थकता को अनुभव करते हैं । हर मानव में सार्थकता की अनुभूति जागृति प्रामाणिकता सहित छः ऐश्वर्यो को समाधान समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व के रूप में प्रयोजित नियोजित होने, उसकी निरंतरता के रूप में मूल्यांकित होने से है । इस विधि से हम अपने अवधारणा में धीरता, वीरता, उदारता को परिवार में और परिवार लक्ष्य के रूप में मूल्यांकित कर सकते हैं । विश्व परिवार रूपी समाज में धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा को मूल्यांकित कर सकता है।

31. भाव - 32. संवेग

परिभाषा : भाव :- मौलिकता = मूल्य ।

संवेग :- संयोग से प्राप्त गति । संयोग = पूर्णता के अर्थ में प्राप्त योग ।

अस्तित्व में भाव, मौलिकता के रूप में विद्यमान है । उसका कार्य रूप, अपने ''त्व'' सहित व्यवस्था ही है । इसी आधार पर अस्तित्व सम्पूर्ण एक (अथवा अस्तित्व समग्रता) अपने में सम्पूर्ण समग्र व्यवस्था है । यही अस्तित्व सहज, सह-अस्तित्व सहज भाव है। अस्तित्व में सम्पूर्ण व्यवस्था समस्त एक एक है । ''अस्तित्व'' अपने स्वरूप में व्यापक सत्ता में संपृक्त अनंत इकाईयाँ है । अस्तित्व ही चार अवस्थाओं में स्पष्ट है, वह पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था तथा ज्ञानावस्था है । ज्ञानावस्था में मानव इस धरती पर, शरीर और जीवन के संयुक्त रूप में वर्तमान है । शरीर, वंश परम्परा है। जीवन, विकास-जागृति क्रम में, सह-अस्तित्व सहज संयोग है । इसका प्रमाण गठनपूर्णता, क्रियापूर्णता, आचरणपूर्णता ही है और प्रत्येक एक अपने वातावरण सहित सम्पूर्ण होना ही है । जीवन-परमाणु, **विकास क्रम में चैतन्य पद में संक्रमित जागृति पूर्वक ''त्व'' सम्पन्न इकाई है ।** इस प्रकार मानव, ज्ञानावस्था की, जीवन जागृति और जागृति क्रम में सहज अभिव्यक्ति है। मानव, जागृति पूर्वक ही व्यवस्था है और व्यवस्था में उसका भागीदारी सम्पन्न होना पाया जाता है ।

मानव, जागृति क्रम में जागृति सहज आवश्यकता संपन्न है । इसका साक्ष्य है कि मानव परम्परा में ही, जानने-मानने, पहचानने-निर्वाह करने का वैभव और आवश्यकता, जागृत संचेतना के रूप में वर्तमान है । अजागृत अर्थात् भ्रमित व्यक्ति में भी जागृति की आवश्यकता बनी ही रहती है । जीवन जागृति परम्परा, अनुभव मूलक प्रणाली है । जागृति परम्परा में ही मानव सर्व शुभकारी को चिराकांक्षित स्वतंत्रता और स्वराज्य सहज सुलभ रूप में प्रमाणित होना पाया जाता है । तभी जागृत मानव में मानवीयता, सहज ही चरितार्थ होती है । मानवीयता, मानव की मौलिकता है । यही मानव का स्वभाव व मानव भाव है । मानवीयतापूर्ण भावों के अनुरूप (मूल्यों) प्रवर्तन (परावर्तन, प्रत्यावर्तन) कार्य, व्यवहार, विचार,

उत्पादन, विनिमय, उपयोग, अपेक्षा, व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी के रूप में प्रमाणित होता है । ऐसी मानसिकता का नाम **संवेग** है । संवेग पूर्णता व उसकी निरंतरता को प्रतिपादित, प्रकाशित करने वाली, जीवन जागृति सहज क्रिया है ।

प्रत्येक इकाई में भाव स्थिति में, संवेग गति में है । अस्तित्व में प्रत्येक एक अपने ''त्व'' सहित व्यवस्था है । **मूलतः ''त्व'' भाव है।** उसका प्रकाशन संवेग है । हरेक एक अपने में प्रकाशमान है और स्थिति गतिशील है, इसलिए प्रकाश मानता है । प्रत्येक ''एक'' में रूप, गुण, स्वभाव व धर्म अविभाज्य वर्तमान है । अखंड और व्यापक में अनंत रूपी प्रकृति व्याख्यायित व प्रतिपादित है । प्रत्येक इकाई एक बिम्ब है फलस्वरूप प्रतिबिम्ब सभी कोणों में रहता ही है । प्रत्येक एक अनंत कोण संपन्न है । नित्य वर्तमान सहज अस्तित्व, स्थिति व क्रिया के रूप में है । अस्तित्व में सत्ता, व्यापक, नित्य, शाश्वत, शांत स्थिति में होना, वर्तमान में प्रमाणित है क्योंकि सत्ता स्वयं तरंग और दबाव नहीं है । सत्ता में संपृक्त प्रकृति ही तरंग और दबाव गति स्थिति रूप में है । गति से वातावरण में तरंग, स्वयं में कंपन प्रमाणित होता है । सत्ता में संपृक्त प्रकृति का, नित्य क्रियाशील होना भी, वर्तमान है। इस प्रकार व्यापक सत्ता में, अनंत प्रकृति का नित्य वर्तमान, प्रमाणित है । सभी जागृत मनुष्य इसे जान व मान लेते हैं । यही सह-अस्तित्व का सम्पूर्ण रूप है । अस्तित्व स्वयं स्थिति में सत्ता, गति में प्रकृति है । इससे पता चलता है कि अस्तित्व ही, सह-अस्तित्व के रूप में नित्य प्रभावी है क्योंकि सत्ता में संपृक्त प्रकृति, अपने में, से, परस्परता में कोई विरोधाभास न रहते हुए, परम संगीत, परम सामरस्यता, परम नियम नियंत्रण, संतुलन के रूप में दिखाई पड़ता है क्योंकि इसकी निरतंरता है इसलिए परम है।

यही सत्ता में संपृक्त प्रकृति की नित्य कार्य व्यवहार सहज कार्यक्रम है । प्रकृति की नित्य कार्य-व्यवहार सहज कार्यक्रम का तात्पर्य-सत्ता में संपृक्त प्रकृति विविध पदों एवं अवस्थाओं में होते हुए एक दूसरे के लिए पूरक, विकास व उदात्तीकरण जागृति और उसका निरंतरता के लिए पूरक होने का क्रिया-कलाप और उसके

नित्य, सहज फलन से है । इसी क्रम में सम्पूर्ण प्रकृति चार अवस्थाओं में, इस धरती पर स्पष्ट हो चुकी है । यही चार पदों में गण्य होते हैं। ये प्राणपद, भ्रांतिपद, देवपद व दिव्यपद के रूप में स्पष्ट होते हैं। इन सभी पदों और अवस्थाओं में जो अनंत इकाईयां हैं वे सब अपने अपने पदानुसार अपने ''त्व'' सहित व्यवस्था में हैं और समग्र व्यवस्था में भागीदारी का प्रतिपादन सहज रूप में किया करते हैं :-

अध्ययन के लिए, सह-अस्तित्ववादी, विश्व दृष्टिकोण, अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान, समीचीन हुआ है । इसके आधार पर जीवन ज्ञान सम्पन्न होकर, स्वयं के प्रति विश्वास, और श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, प्रतिभा व व्यक्तित्व का संतुलित उदय, व्यवहार में सामाजिक, व्यवसाय में (उत्पादन में) स्वावलम्बी बनता है। फलस्वरूप अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी को निर्वाह करने की अर्हता स्थापति हो पाती है और अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था, सहज सफल होती है । मानव सहज मौलिक भाव और संवेग पूर्वक इसी क्रम में जीवन अपने सम्पूर्ण वैभव को जानने, मानने के क्रम में भाव और संवेगों को पहचानने के क्रम में यह मनोविज्ञान प्रस्तुत है। इसीलिए मानवत्व रूपी भाव सहित, मानवीय आचरण व्यवहार को और मानवीय शिक्षा संस्कार को पहचानना ही एक मात्र उपाय है। इन सबके मूल में, अस्तित्व में मानव का अध्ययन ही प्रधान बिंदु है । सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व ही सम्पूर्ण भाव है । शिक्षा स्वयं में भाव है, वह सम्पूर्ण वस्तु (वास्तविकता) का स्रोत है । जागृत शिक्षा सहज अध्ययन से सम्पूर्ण भाव विदित होता है, विदित हुआ है । **मूल्य स्वयं भाव है, अखंड समाज** का यह सूत्र है । **व्यवस्था एक भाव है ।** न्याय सुलभता, विनिमय सुलभता, उत्पादन सुलभता, स्वास्थ-संयम सुलभता और मानवीय शिक्षा संस्कार सुलभताएं उसके रूप, गुण, स्वभाव, धर्म, मात्रा, उपयोग, सदुपयोग प्रयोजनशीलता के आधार पर ध्रुवीकृत होता है, परम्परा में सार्थक होता है । हरेक क्रिया के मूल में रूप, गुण, स्वभाव व धर्म अविभाज्य है । **रूप और गुण में से गुण ही अर्थात गति ही संवेग है, स्वभाव व धर्म भाव है।**

स्वभाव व धर्म ही मानव परम्परा में, से, के लिए प्रयोजनीय है, रूप और गुण उपयोगी है । यह समझदारी से निर्धारित होता है । व्यवस्था, व्यवहार, आचरण, उत्पादन, उपयोग, सदुपयोग, सुरक्षा, अस्तित्व, सह- अस्तित्व, विकास, जीवन, जागृति और रासायनिक भौतिक रचना-विरचनाएं भाव हैं । सभी वस्तुएं, सहज रूप में, मानवीयता पूर्ण परम्परा में, से, के लिए प्रधान सार्थक सूत्र है । यही अध्यायन की सम्पूर्ण वस्तु है । मानव की सार्थकता अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में प्रमाणित होता है । सार्वभौमता व अखंडता भी भाव है । इस प्रकार भावों की अभिव्यक्ति, संप्रेषणा ही, प्रामाणिकता, प्रमाण के रूप में स्पष्ट होती है । भावों को, जीने की कला में सार्थक बनाने योग्य प्रारंभ और निरंतर प्रायोजित होने वाली मानसिकता ही, संवेग है ।

33. जाति - 34. काल

परिभाषा : जाति :- 1. रूप, गुण, स्वभाव व धर्म की विशिष्टता, भौतिक क्रिया, एकता, विविधता । 2. भौतिक वस्तुओं में अनेक प्रजाति के परमाणु ।

अणु अणु रचित पिंड अनेकता के रूप में है यही जाति है । प्राणावस्था में बीजानुषंगी विधि से अनेक प्रकार की प्रजातियों अपने अपने मौलिकता के साथ दृश्टव्य है । यह जातियाँ है । जीववास्था संसार में अनेक प्रजातियों वंशानुषंगीयता के आधार पर दृश्टव्य है । ज्ञानावस्था के मानव संस्कारानुषंगी (समझदारी के अनुसार) आधार पर प्रमाणित होने वाले मानव जाति का एक ही होना पाया जाता है।

काल :- क्रिया की अवधि ।

मानव जाति अपने स्वरूप में मानव में, से, के लिए मौलिकता का प्रकाशन है । मौलिकता में हर जागृत मानव का ''त्व'' सहित व्यवस्था समाहित रहती है । यह विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम और जागृति का प्रमाण है । इस वर्तमान में अर्थात बीसवीं सदी की दसवीं दशक में सर्वाधिक मानव भ्रांतिपद में होते हुए ज्ञानावस्था में

है। अर्थात ज्ञान समृद्ध होने के लिए उम्मीदवार के रूप में है इसलिए जागृति क्रम में होना स्वीकार होता है । सर्व मानव ही ज्ञानावस्था की इकाई के रूप में वर्तमान है ।

जातियों का दर्शक मानव है अर्थात समझने वाला मानव है। पदार्थावस्था से, ज्ञानावस्था के जागृत मानव पर्यन्त जातियों की विविधता वर्तमान है । इन विविधताओं के मूल में जो मौलिक वस्तु है, यही जाति व समुदाय का आधार है । मानव परम्परा के अतिरिक्त और सभी अवस्था के यथा जीवावस्था, प्राणावस्था, पदार्थावस्था में प्रत्येक एक-एक समुदाय अपने-अपने जाति के अनुसार आचरण करता हुआ देखने को मिलता है यही ''त्व'' सहित अवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी का सूत्र है । मनुष्येत्तर प्रकृति में हर जाति अपने-अपने समुदाय के रूप में मौलिक है क्योंकि व्यवस्था सूत्र से सूत्रित है । मानव को अखंड जाति के रूप में प्रदिपादित संबोधित करने के क्रम में यह शास्त्र है ।

मानव जब मानवत्व को पहचानता है, स्वीकारता है, निश्चय करता है तभी जागृति के प्रमाण के रूप में स्वंय में व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी करता है । मानव का स्वत्व मानवत्व है ही, इसलिए मानवजाति का आधार मानवत्व है । स्वतंत्रता व स्वराज्य ही मानवत्व का लक्ष्य है । प्रत्येक मनुष्य मानवीयता पूर्ण आचरण में सहज विधि से मानव है । इसे हर देश काल परिस्थिति में परखा गया है । यह जागृति का वैभव है । इस प्रकार हर एक जागृत मानव का भी ''त्व'' सहित व्यवस्था के रूप में जागृत मानव परम्परा सहज होना स्पष्ट है । अस्तु, मानवत्व सहज समानता के आधार पर मानव का भी परम्परा के रूप में स्पष्ट होना ही, व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी होने का तात्पर्य है । मानवीयतापूर्ण मानव परम्परा में ही, मानव जाति की अखंडता वर्तमानित होती है । यही अखंड समाज का सूत्र है । जागृत मनुष्य की मौलिकता यही है । यह सम्बंधों को पहचानने व मूल्यों को निर्वाह करने के क्रम में, से, के लिए स्पष्ट है । सम्बंधों को पहचानना, निर्वाह करना तभी संभव हो पाता है जब जीवन ज्ञान अस्तित्वदर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण

में पारंगत हो जाये इसी के लिए मानव परम्परा में बहुआयामी प्रयास की आवश्यकता है । अतएव जागृत विधि से व्यवस्था सूत्र अपने-आप निष्पन्न और प्रमाणित होता है । जागृत परिवार मानव ही अखंड समाज में भागीदारी करने में तत्पर होते है । मनुष्य मूलतः परिवार मानव है, क्योंकि परिवार में ही आरंभिक व्यक्तित्व और प्रतिभा के संतुलन की अपेक्षा एवं प्रमाण सहज होना पाया जाता है। परिवार में सम्बन्ध और मूल्यों की पहचान और निर्वाह होने के क्रम में, व्यवस्था सूत्र स्पष्ट होना पाया जाता है। ऐसे परिवार में नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय सहज ही प्रमाणित होता है। न्याय का प्रामाणिक होना ही प्रधान रूप है । फलस्वरूप परिवारगत व्यवसाय भागीदारी सहज हो जाता है । व्यवसाय के साथ विनिमय की अनिवार्य स्थिति बनती है । विनियम सहजता के लिए विभिन्न वस्तुओं को श्रम मूल्य के आधार पर विनियम कार्य को स्थापति कर लेना मानव सहज कार्य है । इस क्रम में श्रम मूल्य और श्रम को पहचानना, एक अनिवार्यता बन पाती है । श्रम मूल्य का स्रोत, प्रत्येक मनुष्य में स्वस्थ शरीर के द्वारा, स्वस्थ मानस ही है । स्वस्थ मानस का स्वरूप, प्राकृतिक ऐश्वर्य पर श्रम नियोजन पूर्वक उपयोगिता व कला मूल्य स्थापित करने, सम्बंधों व मूल्यों को पहचानने व निर्वाह करने, व मूल्यांकन करने के रूप में प्रमाणित होता है । इसी के साथ अस्तित्व, अस्तित्व में सह-अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन-जागृति, रासायनिक-भौतिक रचना-विरचनाओं के प्रति समझदारी, जो जानने-मानने के रूप में प्रमाणित होती है, यही स्वस्थ मानस का स्वरूप है। इसे निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य के नाम से इंगित कराया जाता है । निपुणता = प्राकृतिक ऐश्वर्य पर उपयोगिता व कला मूल्य को स्थापित कर प्रमाणित करना । कुशलता = प्राकृतिक ऐश्वर्य पर उपयोगिता मूल्य स्थापित करना । पांडित्य = ज्ञान विज्ञान विवेक सम्मत सूझ-बूझ तैयार करने तद्नुसार प्रमाणित होने से है । यह प्रत्येक मनुष्य में, से, के लिए संभव है। ऐसी संभावना को सर्वसुलभ बनाए रखना मानव परम्परा है । ऐसी मानव परम्परा के आधार पर ही मानव जाति की एकता, अखंडता व अक्षुण्णता सहज ही होना पाया जाता है । **इस प्रकार मानव जाति एक ही है ।** यह अपने

आप स्पष्ट है । परम्परा का वैभव अथवा मानव परम्परा का वैभव, ज्ञानावस्था का मानव, संस्कारानुषंगी अभिव्यक्ति होने के कारण मानवीय शिक्षा, संस्कार, मानवीय संविधान, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था मानवीयतापूर्ण संस्कृति-सभ्यता परम्परा का प्रधान आयाम है । जागृत मानव संस्कृति सभ्यता सहित सार्वभौम व्यवस्था और अखंड समाज में भागीदारी का प्रमाण है। उसकी सार्वभौमता सहज है ।

ये सब संगतियाँ मानव को जागृति के लिए उत्प्रेरित करती हैं। हर संतान के लिए परम्परा ही जागृति का स्रोत है । परम्परा के चारों आयामों का, जागृति-सूत्र और व्याख्या होना ही स्वस्थ मानव परम्परा है । हर मानव संतान के लिए पीछे पीढ़ी परम्परा के रूप में सुलभ सार्थक होने का स्रोत है। अस्तित्व मूलक, मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान पूर्वक जीवन-ज्ञान सहित मानवीय शिक्षा संस्कार, मानवीय आचार संहिता रूपी संविधान व सार्वभौम व्यवस्था को पहचानना सुलभ हो पाता है । इस प्रकार जागृत परम्परा में, मानव जाति का एक होना, स्पष्ट हो जाता है ।

काल :- काल, क्रिया की अवधि के रूप में गणना किया जाता है। नित्य वर्तमान ही काल है । सम्पूर्ण क्रियाएं निश्चित अवधि के अनंतर पुनः आवर्तित होती हैं अथवा परिणाम और परिवर्तन समस्या समाधान को प्राप्त करती हैं । इसी क्रम में काल गणना का होना पाया जाता है । इसलिए, **क्रिया की अवधि = काल** की पहचान मानव ने की है । इसी आधार पर प्रत्येक क्रिया को, काल की अवधि में देखने का प्रयास मानव करता है । प्रत्येक क्रिया अपने में नियति सहज निरंतर है । मनुष्य जो काल की अवधि में, क्रियाओं को प्रमाणित करने गया, वह केवल जड़ प्रकृति के साथ आंशिक रूप में सफल हो पाया, जो यंत्र संसार है । उल्लेखनीय बात यह है कि, सम्पूर्ण यंत्र मनुष्य की कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों की गति को, विपुल (अर्थात अधिकाधिक गति) बनाने के क्रम में सार्थक हुए हैं । यही दूर संचार क्रिया कलाप है । कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों की स्वभाव गति जीवन जागृति पूर्वक सामाजिक हो पाती हैं । जागृति हर मनुष्य को स्वीकृत है । काल का द्रष्टा मानव है इसलिए किसी क्रिया की

अवधि में अर्थात् भौतिक क्रिया की अवधि में मानव व्याख्यायित नहीं हो पाता । अस्तित्व नित्य वर्तमान है, सह-अस्तित्व नित्य वर्तमान है । भौतिक रासायनिक क्रिया-कलाप नित्य वर्तमान है, जीवन नित्य है ही । इस प्रकार काल की अवधि में किसी भी वस्तु की सटीक व्याख्या संभव नहीं है । क्योंकि वस्तु की क्रियाशीलता निरंतर है । सहज तथ्य यही है कि हर अवस्था पद में स्थित हर वस्तुओं को वर्तमान के आधार पर पूर्णतया समझा जा सकता है क्योंकि हर एक वस्तु अपने रूप, गुण स्वभाव सहित अपने वातावरण सम्पन्न पाया जाता है यह अध्ययनगम्य है । इसी सत्यतावश अध्ययनगम्य कराने के क्रम में ही यह मनोविज्ञान शास्त्र प्रस्तुत है। मनुष्य अपने द्रष्टा पद प्रतिष्ठा क्रम में ही सम्पूर्ण क्रिया, स्थिति, गति, विकास, परिणाम, परिवर्तन और जागृति को पहचानता है । प्रमुख बात यह है कि मनुष्य ही काल का द्रष्टा होता है, न कि काल मनुष्य को व्याख्यायित कर पाता है । कालखंड की सीमा में मानव व्याख्यायित नहीं हो पाता । क्रिया की अवधि को काल के रूप में गणना करना इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक संयोग-वियोग घटनाओं को, फल परिणाम घटनाओं को, परिवर्तन घटनाओं को काल और संख्या क्रम में गणना करते है । जबकि सम्पूर्ण वस्तु क्रिया निरंतर बना ही रहता है । जैसे - शरीर रचना की एक निश्चित अवधि में आरंभ होना, शिशु, बाल्य, कौमार्य, यौवन, प्रौढ़ और वृद्ध अवस्थाओं को पार करता हुआ एक दिन शरीर विरचित हो ही जाता है । इस अवधि को हम काल के नाम से जानते है । जबकि रचना-विरचना अनुस्युत क्रिया है। रचना-विरचना नित्य निरंतर होने वाली घटना है साथ ही रचना में सम्मिलित होने वाली वस्तुएं अस्तित्व में रहती ही हैं । अस्तु काल गणना, किसी क्रिया की अवधि के रूप में पहचानी गई है जैसे यह धरती अपने में सूर्योदय से सूर्योदय तक । **काल का द्रष्टा होने का तात्पर्य क्रिया, और क्रिया की अवधि, धटना, परिणाम, स्थिति, गति, अनंत, व्यापक का द्रष्टा होने से है । इस प्रकार अस्तित्व द्रष्टा भी मानव है ।** अस्तित्व सहज रूप में नित्य वर्तमान है । अस्तित्व अपने में न कोई शुरूआत है, न कोई अंत है । ग्रह गोलों के सम्बंध में वे कितनी संख्या में अस्तित्व में है इसकी

आवश्यकता मानव जाति को नहीं है । जितनी आवश्यकता बनती है उतने में से कुछ ग्रह-गोलों को मानव समझने का प्रयत्न करता ही है। अभी तक इस धरती के मानव ने जो पता लगाने की कोशिश की है उसमे सकारात्मक सार्थक उद्देश्य कुछ भी नहीं रहा । इन प्रयासों के चलते दूरसंचार कार्य सार्थक हो गया । यही सकारात्मक भाग है । हर छोटी से छोटी या बड़ी से बड़ी वस्तु का अस्तित्व बना ही रहता है । विकास क्रम और रचना क्रम में जो परिणाम होते हैं, उसकी अवधि को समझा जाना संभव है। जैसे एक बीज बोकर नैसर्गिकता के संयोग सहित पुनः बीज पर्यन्त अवधि को पहचाना जा सकता है । विभिन्न द्रव्यों का संयोग कर, रासायनिक रूप में परिणामों को देखा जा सकता है । इसकी अवधि भी समझी जाती है । किसी वस्तु को अम्लीय-क्षारीय संयोग में लाकर उसके परिणाम को पहचाना जा सकता है इसकी अवधि को आकलित किया जा सकता है । जीव और मनुष्य शरीर, प्राणकोषाओं से रचित भ्रूण सूत्रों का रासायनिक वैभवों के संयोग से विपुलीकरण विधि और ऐसे भ्रूण सूत्रों से संपादित एवं रचित रचनाओं की अवधियों को पहचानना सहज है, इसका आकलन संभव है । इस प्रकार हर रचना की विरचना का भी आकलन होता है । इन्हीं सहज तथ्यों के आधार पर, सम्पूर्ण यंत्रों की रचना विधि, कार्य विधि, उपयोग विधि पहचानने में आती है। जिसका आकलन सहज है । इस प्रकार मनुष्य के द्वारा पहचानी हुई क्रिया की अवधि रूपी काल की महिमा के वर्चस्व को मानव सुविधा के रूप में देखा जाता है । यही सब मानव से मान्य काल का प्रयोजन है । इन सबकी अवधित कार्य की निरंतरता से नित्य वर्तमान स्पष्ट होता है।

अस्तित्व नित्य वर्तमान होने के कारण, वर्तमान अक्षुण्ण सहज है, इसलिए इसका काल खंड संभव नहीं है । मानव सहज कल्पनाशीलता का प्रयोग करने के उपरान्त ही, वर्तमान समझ में आता है, साथ ही कल्पना का सम्पूर्ण आधार और प्रेरणा, अस्तित्व और वर्तमान ही है । अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व होना ही विकास,

जीवन, जीवन-जागृति, पूरकता, उदात्तीकरण, रचना व विरचानाएं सतत वर्तमान हैं । कितने भी विखंडन के उपरान्त, एक का सहज रहना, वर्तमान रहता है । समग्र अस्तित्व का भाग पूर्वक, मनुष्य जितना भी प्रयत्न करे, प्रत्येक ''एक'' अस्तित्व में अविभाज्य होना प्रमाणित है । सम्पूर्ण अस्तित्व सत्ता में संपृक्त सहज अस्तित्व होना वर्तमान है । सत्ता स्थितिपूर्ण व्यापक है, सत्ता में संपृक्त अनंत एक एक प्रकृति है । मानव कितना भी नापे और नापने की वस्तु समीचीन रहती ही है। और कितना भी गिने पुनः गिनने के लिए वस्तु समीचीन रहती ही है । इसलिए अस्तित्व व्यापक, अनंत के रूप में वर्तमान है । अस्तु, अस्तित्व, अविरत वर्तमान है । सम्पूर्ण भावों का होना, वर्तमान सहज महिमा है । वास्तविकता यथार्थता व सत्यता, स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य, सहज रूप में जानने-मानने, पहचानने-निर्वाह करने के रूप में है । प्रत्येक एक का अपने रूप, गुण, स्वभाव, धर्म सहज अविभाज्यता ही भाव है। भाव सहजता भी वर्तमान में होना ही है । सत्तामयता ही अस्तित्व में स्थिरता सहज भाव है और सत्ता में संपृक्त प्रकृति विकास और जागृति सहज निश्चयता का प्रमाण है । सत्ता का व्यापक होना स्थिरता का और सत्ता में संपृक्त प्रकृति, विविधता सहित जागृति रूप में, विकास में निश्चयता का प्रमाण नित्य वर्तमान है । ऐसी स्थिरता, निश्चयता सहज वर्तमान है । यह मानव संचेतना, जीवन-जागृति, द्रष्टा पद वैभव का सहज प्रमाण है ।

मानव संचेतना व यांत्रिकता एवं यंत्र सहज प्रामाणिकता, जागृति व जागृति क्रम में होने वाला, प्रमाण व प्रामाणिकता है । यन्त्रवाद के क्रम में मनुष्य द्वारा, क्रिया की अवधि के रूप में काल गणना सहज हुई है । जो आवश्यक रहा है । इस प्रकार जागृत मानव, अस्तित्व सहज जागृति के रूप में वर्तमान है । जो जागृति सम्पन्न, जीवन संचेतना का प्रमाण है । यन्त्रों का संधान-अनुसंधान, मनुष्य सहज जागृति क्रम में संभावित है । इसी क्रम में मानव क्रिया की अवधि को काल मान लेता है जो यांत्रिकी गणित ग्राही है ।

35. तुष्टि - 36. पुष्टि

परिभाषा : तुष्टि :- समझदारी पूर्वक छह सद्गुणों से सम्पन्न होना, परिवार में समाधान, समृद्धि को प्रमाणित करना, अखण्ड समाज, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी करना निरन्तर तुष्टि का स्वरूप है ।

पुष्टि :- तुष्टि का निरंतर मूल्यांकन में निरीक्षण, परिक्षणपूर्वक किया जाना । पूर्णता की निरंतरता ही जीवन सहज संतुष्टि है । मानव परम्परा के रूप में उसका लोकव्यापीकरण होना ही पुष्टि है । यह जागृति पूर्वक ही प्रमाणित होता है।

मानव, शरीर और जीवन का संयुक्त रूप है यह विदित है । यह स्वयं जड़ चैतन्य प्रकृति की सह-अस्तित्व सहज साक्षी है । एक एक शरीर में अनेकानेक प्राणकोशाएं रचनाकार्य में भागीदारी करते रहते है यह सभी कोशाएं विधिवत करते ही रहते है । इसका साक्ष्य हर शरीर और वनस्पतियों की रचना अपने में एक व्यवस्था के रूप में होना पाया जाता है । जैसे मनुष्य शरीर में मेधस तंत्र, हृदय तंत्र, रक्त तंत्र, वसा तंत्र, फेफड़ा तंत्र, यकृत तंत्र, मूत्र तंत्र, वृक्क तंत्र, गर्भाशय तंत्र, रस तंत्र, मांस तंत्र ये सब एक साथ गर्भाशय में रचित संयोजित होते हैं । परिणाम स्वरूप रक्त संचार, श्वास संचार बिना जीवन के ही सम्पन्न होता हुआ देखने को मिलता है । तंत्र का तात्पर्य उर्मि और स्पंदन से है हर प्राणकोशाएं स्पंदनशील है । इसकी साक्षी हर कोशाओं में होने वाली श्वसन क्रिया है । रासायनिक द्रव्य में परस्पर योग-संयोग पूर्वक उत्सवित होना, तरंगति होना, ठोस, तरल, विरल के रूप में पाया जाता है इसी का नाम उर्मि है । अर्थात् रसायन तत्व में पाये जाने वाला उत्सव है । ऐसे उत्सव पूर्ण रसायन द्रव्य ही अनेक प्रजाति प्रयोजन सहज रचना के रूप में इसी धरती पर प्रमाणित है । इन्हीं के संयोग से अर्थात् रासायनिक उर्मि और प्राणकोशाओं का स्पंदन के संयुक्त रूप में पूरे शरीर में अंगाग और अवयव रूपी रचनाओं में तंत्रणा अपने अपने निश्चित कार्य करता हुआ देखने को मिलता है । जैसे रक्त प्रणाली (हृदय धड़कना)

श्वास लेना गर्भाशय में स्थित शिशुओं में भी होना पाया जाता है । यही तंत्र का तात्पर्य जीवन संयोग के उपरांत ज्ञानेंद्रियाँ कार्यरत होना पाया जाता है । इस कारण शरीर द्वारा ही मानव परम्परा में, जीवन जागृति का प्रमाण सहज है । जीवन संतुष्टि का प्रथम चरण, सम्बंधों की पहचान व मूल्यों के निर्वाह के रूप में देखने को मिलता है । दूसरी स्थिति में विश्वास की अभिव्यक्ति सहज है । **यह अखंड समाज का सूत्र है ।** सम्बन्धों व मूल्यों को पहचानने व निर्वाह करने के क्रम में, समाज सूत्र स्पष्ट हो पाते हैं । इस को दूसरी विधि से प्रक्रिया रूप में नाम भी मानव सम्बन्ध व नैसर्गिक सम्बन्ध के रूप में पहचाना जाता है ।

मानव सम्बन्धों का सम्बोधन भले ही कितने ही प्रकार का हो, तरीके भिन्न भिन्न क्यों न हो, सभी सम्बन्धों को पहचानने के प्रमाण में, जीवन सहज रूप में मूल्य व्यक्त होता है । ऐसा मूल्य जागृत जीवन में नौ स्वरूप में उत्प्रेरित उत्सवित रहता ही है । सम्बन्धों को पहचानना ही मानव परम्परा का एक प्रधान कार्य है। यही निर्वाह के रूप में संस्कार है । सम्बंधों को पहचानने के क्रम में ही संस्कार सफल हो पाते हैं ।

अस्तित्व में नैसर्गिकता के साथ मनुष्य का पूरक सम्बन्ध बना ही रहता है । मानव ही इस धरती पर सर्वाधिक विकसित इकाई है । सर्वाधिक का तात्पर्य प्राणावस्था, पदार्थावस्था व जीवावस्था से अधिक विकसित से है । शरीर के रूप में यह नियति क्रम में, मानव सहज घटना और मौलिकता है । नियति क्रम का तात्पर्य विकास व जागृति-क्रम से है । विकास शरीर के अर्थ में, जागृति जीवन के अर्थ में प्रमाणित होता है । ऐसी मौलिकता प्रत्येक मनुष्य में कर्म स्वतंत्रता व कल्पनाशीलता के रूप में वर्तमान है । इनका प्रयोग प्रत्येक मनुष्य करता है । ये नियति सहज रूप में मानव में प्रकाशित होते है । हर भ्रमित मानव में यह प्रश्न सहज ही उभर आता है कि अंततोगत्वा इस कर्म स्वतंत्रता व कल्पनाशीलता का क्या प्रयोजन है ? क्यों यह सर्वसुलभ हुआ है ? ऐसा सोचने पर पता चलता है कि इनके तृप्ति बिंदु को पहचानना है । यही संतुष्टि का सूत्र और व्याख्या का सूत्र

है। संतुष्टि मनुष्य की कर्म स्वतंत्रता और कल्पनाशीलता का ही होता है । अनुसंधान और शोध से पता चला कि कल्पनाशीलता का तृप्ति बिंदु, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था है । इसका परम स्वरूप विश्व परिवार व्यवस्था ही है ।

जब परिवार मूलक स्वराज्य होना ही निर्देशित हो गया तब परिवार को समझना अर्थात परिवार की परिभाषा व व्याख्या को समझना और उसके योग्य अहर्ता को प्रत्येक व्यक्ति जानना, मानना, पहचानना एक अनिवार्यता है। निश्चित संख्या में जागृत (नर-नारी) मनुष्य जो परस्पर सम्बन्धों को पहचानते व मूल्यों का निर्वाह करते हैं और परिवार गत उत्पादन कार्य में परस्पर पूरक होते हैं । ऐसे कम से कम 10 व्यक्तियों का समूह परिवार की संज्ञा है । ऐसी परिभाषानुरूप ग्राम परिवार, ग्राम समूह परिवार, क्षेत्र परिवार, मंडल परिवार, मंडल समूह परिवार, मुख्य राज्य परिवार, प्रधान राज्य परिवार, ''विश्व-स्वराज्य परिवार'' के रूप में सहज ही गण्य होता है । इस क्रम में सम्बन्धों व मूल्यों का निश्चयन होता है । फलस्वरूप प्रत्येक अवधिगत परिवार व्यवस्था अपने आप में सभी स्तरीय परिवारों में सूत्रित हो जाता है । यही परिवार- मूलक का तात्पर्य है ।

'स्वराज्य'' का तात्पर्य न्याय सुलभता, विनिमय सुलभता व उत्पादन सुलभता, स्वास्थ्य संयम सुलभता, मानवीय शिक्षा संस्कार सुलभता से है । न्याय सुलभता का स्वरूप, सम्बंधों के अनुरूप अर्थात जिससे जिनका जो सम्बन्ध पहचाना गया है, उनसे उन उन सम्बन्धों के अनुरूप मूल्यों का निर्वाह होने से है। मूल्य जीवन सहज हैं । सम्बन्धों की पहचान परम्परा सहज है । भले ही मानव अभी तक अंतर्द्वन्दों सहित समुदाय चेतना में ग्रसित है फिर भी सम्बन्धों को पहचानने का प्रयास नैसर्गिक रूप में उभरते आया है, इच्छुक है ही । अंतर्द्वन्दों और समुदायों की परस्परता में, घृणा उपेक्षा की ध्वनि व मुद्राएं समावेशित होने के फलस्वरूप सम्बन्धों के प्रति निष्ठा स्थिर नहीं हो पाई । फलतः मूल्यों का आकाल नासमझी के रूप में त्रस्त

करते ही आया । इस समीक्षा से यह पता चलता है कि मानव सम्बन्धों में निष्ठान्वित होने के लिए, समाज को ही पहचानना आवश्यक है । इसी विधि से विश्व परिवार सम्बन्ध भी है । एक परिवार को पाँचों आयाम सम्बंधी क्रिया-कलाप में भागीदारी करना अनिवार्य है पांचों आयाम को ऊपर वर्णित कर चुके है तालिका निम्न है । यह कहे गये सभी स्तरीय 10 संख्यात्मक परिवार से, विश्व परिवार तक आवश्यकता है ही । यह तथ्य भली प्रकार से समझ में आता है ।

इन सम्बन्धों के प्रति निर्भ्रम होने के उपरान्त सहज ही विश्वमानव व्यवस्था की आवश्यकता व स्वरूप समझ में आता है, फलतः कर्तव्य व दायित्व निश्चित होता है । इस प्रकार सम्बन्धों व मूल्यों को, पहचानने व निर्वाह करने के क्रम में, मूल्यों की मूल्यांकन विधि अपने आप स्पष्ट होती है। किसी भी संबध को, चाहे माता-पिता, पुत्र-पुत्री, गुरू-शिष्य, पति-पत्नी, स्वामी-सेवक, मित्र-मित्र सम्बन्ध सभी हो अथवा एक से अधिक हो उनमें विश्वास साम्य मूल्य है । इसका निर्वाह होना ही विश्वास की गवाही है। यद्यपि सम्बन्धों के अनुरूप कृतज्ञता, गौरव, श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, वात्सल्य, ममता, सम्मान, स्नेह ये जो स्थापित मूल्य सार्थक होता है । फलतः सम्बंधों का स्वरूप, कर्तव्य व दायित्व की महिमा व निर्वाह सहज वर्तमान होता है । इसके योगफल में न्याय अपने आप सूत्रित, व्याख्यायित व वैभवित होता है । यही न्याय सुलभता का तात्पर्य है।

उत्पादन सुलभता, प्रत्येक परिवारगत आवश्यकता का निश्चय होने के आधार पर सपन्न होना पाया जाता है । मनुष्य को उत्पादन सुलभता में शरीर पोषण, संरक्षण और समाज गति की आवश्यकता है। इसी अर्थ में सार्थक होता है । सम्पूर्ण उत्पादन का सदुपयोग, सुरक्षा क्रम में सार्थक होता है । उल्लेखनीय यह है कि लाभोन्माद, कामोन्माद, भोगोन्माद क्रम में सर्वाधिक वस्तु का अपव्यय होता है । सम्पूर्ण मानवोपयोगी वस्तुओं का स्रोत चिन्हित रूप में, धरती में पाई

जाने वाली सम्पदा में है । सदुपयोग क्रम में और आवर्तनशील प्रक्रिया सहित, उपयोग सहज (की) विधि से इस धरती की सम्पदा अपने में अक्षुण्ण है और पर्याप्त है । इसके साक्षी में हर जागृत मानव परिवार इस धरती पर जितने भी संख्या में है इनमें से प्रत्येक परिवार आवश्यकता से अधिक उत्पादन और समृद्धि का अनुभव कर सकता है। इसके विपरीत भ्रमपूर्वक छीना झपटी, संग्रह सुविधा लिप्सा और संघर्ष के वशीभूत होकर दरिद्रता की पीड़ा से पीड़ित होता है । सदुपयोग सुरक्षा विधि से ही उत्पादन सुलभता और लाभ-हानि मुक्त विनियम कोष सुलभता सहज ही प्रमाणित होती है । यह जागृत मानव का ही वैभव है ।

परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था की अक्षुण्णता के लिए मानवीय शिक्षा संस्कार व स्वास्थ्य संयम की अनिवार्यता है । तभी न्याय सुरक्षा, उत्पादन कार्य और विनियम कोष कार्य सुचारू रूप में संचालित हो पाता है, यही पाँचों आयाम परिवार मूलक स्वराज व्यवस्था की नित्य गति है । यह समझदारी और जागृति पूर्वक ही सार्थक होना पाया जाता है । मानवीय शिक्षा संस्कार अस्तित्व मूलक, मानव केन्द्रित चिन्तन-ज्ञान सहज उद्यम है, जिससे पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था व ज्ञानावस्था (मनुष्य) का अध्ययन, सह-अस्तित्ववादी विधि से सम्पन्न होता है । स्वास्थ्य संयम का तात्पर्य मानवीयता पूर्ण मानसिकता बनाम मानव संचेतना सहज रूप में, शरीर के द्वारा प्रकाशित, संप्रेषित, अभिव्यक्त होने योग्य शरीर व्यवस्था से है। आवश्यकता से अधिक उत्पादन समृद्धि के रूप में प्रमाणित होता है । तन-मन-धन रूपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा है न्याय के रूप में प्रमाणित होता है। ऐसी स्वराज्य व्यवस्था सहज ही कल्पनाशीलता की संतृप्ति और मानव परम्परा में उसकी पुष्टि सहज है ।

कर्म स्वतंत्रता का तृप्ति बिंदु स्वतंत्रता है जो स्वानुशासन के रूप में प्रमाणित होता है । स्वानुशासन जीवन-जागृति, मानव जागृति, अस्तित्व में जागृति का प्रमाण है । जबकि स्वतंत्रता, मानव परम्परा

अर्थात मानवीय शिक्षा संस्कार, संविधान, राज्य व्यवस्था का सामरस्यता है । यही अस्तित्व में, मानव के जागृत होने का साक्ष्य है। जागृत परम्परा की धारक वाहकता सहज प्रमाण, स्वराज्य के आधार पर मानवीय आचरण व्यवस्था, व्यवस्था में भागीदारी, परिवार, समाज, व्यवहार, न्याय व सर्वतोन्मुखी समाधान ही, सतत तृप्ति का स्रोत बना ही रहता है । फलस्वरूप प्रामाणिकता अर्थात अस्तित्व, सह-अस्तित्व, विकास, जीवन, जीवन जागृति, रासायनिक और भौतिक रचना-विरचना सहज सत्य को जानना, मानना, उसकी तृप्ति बिंदु में जीना, उसका निरंतर वर्तमान होना ही प्रामाणिकता है । जागृति, भ्रम मुक्ति और मुक्त जीवन है । मुक्ति समझदारी और प्रमाणिकता प्रमाण सहज योगफल में होना पाया गया है ।

जागृत जीवन मानसिकता स्वयं जीवन मूल्य, मानव मूल्य, स्थापित मूल्य, शिष्ट मूल्यों को मूल्यांकित करने, व्यवहार और विनिमय में प्रमाणित करने में सार्थक होने में पाया जाता है । तभी मानव का अवतरण अर्थात् मानव शरीर परम्परा का आरंभ होना स्वाभाविक है। प्रारंभिक मानव का अवतरण जलवायु, भौगोलिक परिस्थिति सौर व्यूह सहज उष्मा का दबाव के योगफल में किसी जीव शरीर में से मनुष्य शरीर का निष्पत्ति होना स्वाभाविक है क्योंकि प्राणकोशाओं में रचना विधियों का अनुसंधान होना साक्षित है । यह अनेक प्रजाति सहज अन्न वनस्पतियों के रूप में और अनेक प्रजातियों के रूप में जीव जंतु और पक्षी समूह के रूप में द्रष्टव्य है ।

इसी क्रम में प्राण सूत्र सहज प्रकृतिगत विधि से मानव शरीर रचना विधि, प्राण सूत्र में उर्मि सहज प्रक्रिया सम्पन्न होता है । प्राण सूत्र में उर्मि सहज प्रक्रिया का तात्पर्य जिस रचना विधि में प्राण सूत्र सम्पन्न रहता है उसके संयोग में आये रासायनिक उत्सव प्रवृत्ति ब्रह्माण्डीय किरण-विकिरण और उष्मा संयोगवश ही प्राण सूत्र के रचना विधि में परिवर्तन होना स्वभाविक है। इसी क्रम में मानव शरीर का पोषण और विकास आदि मानव से अभी तक संभव हो

पाया है । इसका साक्षी यही है जीवन सहज जागृति और समझदारी को जीवन ही अपनी संतुष्टि (सुख-शांति, संतोष, आनंद के अर्थ में) को प्रकाशित संप्रेषित अभिव्यक्त सहज विधि से प्रमाणित करना संभव हो गया है, सहज हो गया है। इसका साक्ष्य हम स्वयं है । हम स्वयं का तात्पर्य समझदार मानव से है । अस्तु अखंड-समाज, सार्वभौम व्यवस्था, आवश्यकता से अधिक उत्पादन, लाभ-हानि मुक्त विनिमय, प्रामाणिकता, मूल्य व मूल्यांकन विधि, स्वास्थ्य संयम प्रक्रिया, मानवीय शिक्षा संस्कार प्रणाली, पद्धति, नीति ये सब सहज पहचानने, निर्वाह करने में सुलभ होता है ।

अस्तित्व, सत्ता में संपृक्त अनंत ब्रह्माण्ड, सौर व्यूह वस्तु व पदार्थ के रूप में विद्यमान है । अनंत ब्रह्माण्डों में से एक ब्रह्माण्ड का अंगभूत यह धरती अपने में सर्व समृद्ध संपन्न हो चुकी है । किसी भी धरती की सर्वसंपन्नता का तात्पर्य भौतिक व रासायनिक रचनाएं पर्याप्त हो और जड़ तथा चैतन्य प्रकृति का कार्यकलाप, जीवनी क्रम का कार्यक्रम संपन्न हो गया हो ।

इस धरती में भौतिक व रासायनिक क्रियाकलाप परम्परा के रूप में स्थापित होने के उपरान्त तक, पदार्थावस्था व प्राणावस्था का समृद्ध होना, भ्रमित मनुष्य पहचानता है । इसी क्रम में जीवावस्था के जलचर, नभचर, भूचर जीवों को पहचानता है । इतना ही नहीं, मानव परम्परा को अथवा मानव प्रकृति को भी इस धरती पर होना, मानव भली प्रकार से पहचानता है। ऐसी भ्रमित अवस्था तक में भी मनुष्य शरीर सर्वाधिक विकसित है यह पहचानता है । अपनी परम्परा को अभी तक समुदाय चेतना में ग्रसित रहते हुये भी, संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था के नाम पर (अर्थात शिक्षा-संस्कार, संविधान और राज्य व्यवस्था के रूप में) परस्परता को पहचानने का प्रयास सुदूर विगत से भ्रमित मानव ने किया । अभी जिस प्रकार से मनुष्य है, वह सर्वविदित है । मनुष्य की सम्पूर्ण संप्रेषणा, अनुभव, विचार, व्यवहार, उत्पादन व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के रूप में है ।

इसलिए जागृति-विधि साधना को व्यवस्था में जीने के रूप में पहचानना एक अपरिहार्यता समीचीन है । संभावना और समझदारी सहज आपूर्ति के अर्थ में यह मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान शास्त्र है। **''जागृति विधि साधना''- अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन का फल है । यह ''जीवन-विद्या'' पूर्वक, जीवन-ज्ञान अस्तित्व दर्शन, मानवीयतापूर्ण आचरण पूर्वक संपन्न होने वाली प्रक्रिया है ।** प्रत्येक मनुष्य, जीवन और शरीर के, संयुक्त साकार रूप में है, यह जीवन-विद्या में स्पष्ट हो जाता है । जीवन सहज रूप में चयन, आस्वादन, विश्लेषण, तुलन, चित्रण व चिंतन, संकल्प, बोध और प्रामाणिकता अनुभव है । यह अक्षय रूप मानव में है, यही जीवन विद्या का सार और स्वीकृत है । इसीलिए यह सार्वभौम होना स्पष्ट है, आवश्यक है । ये सभी क्रियाएं जीवन में अविभाज्य हैं । ऐसी अविभाज्यता को मानव परम्परा में प्रमाणित करना ही जीवन सहज न्याय, सुख, शांति, संतोष, आनंद के रूप में है और मानव सहज न्याय सूत्र, मानवीयतापूर्ण आचरण के रूप में सूत्र प्रमाणित होता है। जीवन क्रियाकलाप अविभाज्य रहते हुए न्याय अर्थात मानव धर्म (सर्वतोमुखी समाधान) और सत्यपूर्ण प्रणाली से कार्य करने की व्यवस्था प्रत्येक मनुष्य में, से, के लिए समीचीन है ।

प्रत्येक जागृत मनुष्य न्याय दृष्टि से (न्याय रूपी तुलन क्रिया से) निरीक्षण परीक्षण करता है । यह क्रिया जागृति विधि साधना का प्रथम सोपान है। साधना का तात्पर्य अभ्यास से है । अभ्यास का तात्पर्य कर्माभ्यास, व्यवहाराभ्यास, चिन्तनाभ्यास से है । व्यवस्था के मूल में जो विचार रहता है, उसको मनुष्य के हर कार्य में चिंतनाभ्यास पूर्वक न्याय-दृष्टि से निरीक्षण परीक्षण करना - ''जागृति विधि'' है। चिन्तन का तात्पर्य समझ और प्रयोजन के तृप्ति बिन्दु का साक्षात्कार करने से है ।

प्रत्येक जागृत मनुष्य में, जीवन सहज रूप में, तुलन क्रियायें न्याय- अन्याय, धर्मा-धर्म, सत्या-सत्य क्रम से प्रिय, हित, लाभ

न्याय संगत सम्मत सहज संपन्न होती है । न्याय सम्बन्धों रूपी सह-अस्तित्व पर आधारित है । धर्म (सर्वतोमुखी समाधान = मनुष्य स्वयं मानवत्व सहित व्यवस्था है, समग्र व्यवस्था में भागीदार है ।) इस आधार पर ''सत्य'' अस्तित्व रूपी परम सत्य में, अनुभव अर्थात जानने-मानने के तृप्ति बिंदु, अभिव्यक्ति सहित रूप में प्रमाणित है। इस प्रकार जीवन जागृति का स्रोत, प्रक्रिया, प्रयोजन स्पष्ट है । सत्य, धर्म, न्याय सहज अभिव्यक्ति, मानव परम्परा में, से, के लिए परम आवश्यक है । इसी सत्यतावश अवसर समीचीन है ।

न्याय सम्मत चयन, आस्वादन, विश्लेषण, इंद्रिय कार्यकलाप नियम नियंत्रण के रूप में स्वास्थ्य, वस्तुओं का आवश्यकता से अधिक उत्पादन, आवर्तनशील आर्थिक कार्य व्यवहार न्याय संगत होने के उपरान्त ही जागृति सहज विधि से समाधान समृद्धि सम्पन्न होता है । न्याय सम्मत आचरण (जो स्वधन, स्वनारी/स्वपुरुष, दया पूर्ण कार्य व्यवहार के रूप में है) तन-मन-धन रूपी अर्थ का सदुपयोग एवं सुरक्षा, सभी सम्बन्धों की पहचान एवं मूल्यों का निर्वाह ही मूल्य, चरित्र, नैतिकता रूपी आचरण वैभव है । यही सार्वभौम मानव है तथा स्वयं में व्यवस्था रूपी जागृत मनुष्य है । ऐसे जागृत मनुष्य ही समग्र व्यवस्था में भागीदार होते हैं ।

॥ नित्यम् यातु शुभोदयम् ॥

जागृति जीवन के एक सौ बाइस आचरण

पृष्ठ सं.

चित्त

चित्त की चिंतन-चित्रण रूपी 16 क्रियाकलाप

1. श्रुति - 2. स्मृति

परिभाषा : श्रुति :- (1) यथार्थ जीवन व दर्शन पूर्ण अभिव्यक्ति। (2) यथार्थ जानकारी का भाषाकरण । (3) सह-अस्तित्व सहज यथार्थो का भाषा सहज संप्रेषणा, अभिव्यक्ति ।

स्मृति :- (1) जाने हुए की आवश्यकतानुसार अभिव्यक्ति। (2) बार बार आवश्यकतानुसार भाषा पूर्वक जानकारी का प्रस्तुतीकरण। (3) भाषा से इंगित वस्तु को साक्षात्कार सहित चित्रण समेत की गई स्वीकृति जिसको बार बार दोहराया जाना प्रमाण है ।

श्रुति सह-अस्तित्व सहज अभिव्यक्ति है । सह-अस्तित्व सहज, अस्तित्व नित्य वर्तमान है । वर्तमान में ही मानव ने अपनी कर्म स्वतंत्रता, कल्पनाशीलता का प्रयोग किया है, कर रहा है, करता रहेगा । मानव में ही श्रुति, स्मृति सहज प्रकाशन प्रमाणित होना पाया जाता है । जिससे भास- आभास प्रतीति पूर्वक अनुभव होना पाया जाता है । इसी कारणवश उसे, उसके सहज रूप में समझना कार्यक्रम है । इसका प्रमाण यह है कि मनुष्य ही अस्तित्व में ध्वनि, शब्द, नाद, भाषा व वस्तु सहज प्रभेदों को जानता, मानता, पहचानता है अथवा इसके योग्य है । जैसे-पदार्थ अवस्था में पाई जाने वाली, व्यवस्था का मूल रूप परमाणु में भी ध्वनि और वस्तु को पहचानता है ।

फलतः अणुओं के रूप में होना स्वाभाविक है । प्राणकोशाओं में ध्वनि व कार्य संकेतों को परस्पर कोशाएं पहचानते है फलस्वरूप रचनाएं संपन्न होती हैं । उसी भांति जीवों में भी, शब्द, ध्वनि और नाद उनके परस्पर पहचान में होना पाया जाता है । मनुष्य में शब्द, ध्वनि, नाद व भाषा ये सहज ही परस्पर वस्तुओं को इंगित करने के अर्थ में जानने, मानने, पहचानने को मिलता है । भाषा का तात्पर्य

होता है, जिससे वस्तु सहज सत्य भास हो जाय । मानव भाषा में सत्य भास, आभास, प्रतीति सहित अनुभव होने के अर्थ में ही प्रयोग किया जाता है । यही जागृति सहज संप्रेषणा है । इसी क्रम में भाषा के प्रति विश्वास हो पाता है । मनुष्येतर प्रकृति में भी अपने अपने ''त्व'' सहित व्यवस्था को प्रमाणित करने के क्रम में सम्पूर्ण ध्वनि, नाद व शब्द को देखा जाता है । जागृत मनुष्य परस्पर भाषा द्वारा इंगित होना चाहता है या इंगित कराना चाहता है ।

भाषा, ध्वनि, नाद व शब्द के मूल में देखने पर पता चलता है कि इकाई में स्वयं स्फूर्त अभिव्यक्ति है । मूल इकाई का तात्पर्य परमाणु ही है । परमाणु ही विकास पूर्वक जीवन, जीवन जागृति पदों में और परमाणु ही विकास क्रम में अणु, कोशा रचना व विरचना के क्रम में अस्तित्व में होना पाया जाता है । परमाणु ही मूलतः व्यवस्था का मूल है । भौतिक क्रियाकलाप, रासायनिक क्रियाकलाप, जीवन क्रियाकलाप के मूल में परमाणु ही व्यवस्था का धारक-वाहक होना पाया जाता है । मनुष्येतर तीनों अवस्थाएं अपने ''त्व'' सहित व्यवस्था के रूप में इस धरती में विद्यमान हैं । मनुष्य भी मानवत्व सहित व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होने के लिए प्रयत्नशील है इसकी संभावना समीचीन है ।

सम्पूर्ण श्रुति, प्रत्येक एक अपने ''त्व'' सहित व्यवस्था को बनाए रखने के लिए ही उद्‌गमशील है । श्रुति को ध्वनि, शब्द, नाद व भाषा के रूप में मनुष्य पहचानता है इसकी सार्थकता को पहचानना शेष रहा। इसी क्रम में गति, लय, तरंग को भी पहचानता है । यह विविध प्रकार से श्रुति को ही वस्तु के रूप में समझने का प्रयास सार्थक होता है । श्रुति का तात्पर्य स्थिति सत्य, वस्तु स्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य को इंगित करने, बोध करने के लिए ही सुनने योग्य व सुनाने योग्य संभाषण है । पूर्णता को इंगित करने कराने के अर्थ में प्रयोग किया गया भाषा एवं परिभाषा है । सुनने, सुनाने के लिए स्वयं स्फूर्त मानव अपेक्षा है । सुनाने योग्य भी स्वयं स्फूर्त संप्रेषणा है । संप्रेषणा का तात्पर्य, पूर्णता के अर्थ में प्रस्तुत होने की प्रक्रिया है । सुनने के क्रम में भी पूर्णता को पहचानने,

सहज अपेक्षाएं बनी ही रहती हैं । पूर्णता अपने में निरंतर है । इसका सामान्य स्वरूप, अस्तित्व में पूर्णता, परम्परा के रूप में प्रकाशित है। अस्तित्व में पूर्णता, गठन पूर्णता, क्रिया पूर्णता, आचरण पूर्णता ही है । रासायनिक भौतिक इकाईयां अपने-अपने वातावरण सहित सम्पूर्ण है ही । पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था की परंपराएं, उन उन की 'त्व' सहित व्यवस्था के रूप में सूत्रित व्याख्यायित है। यह परंपराएं पूर्णता संपूर्णता सहज ही, निरंतरता को प्राप्त किए हैं । वह 'त्व' सहित व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी है । यही वैभव-सूत्र है ।

मानव ऐसी श्रुति परम्परा को चाहता ही है कि इससे यथार्थता, वास्तविकता और सत्यता सहज ही समझ में आये । जीवन सहज जिज्ञासा क्यों है ? कैसा है? कबसे है ? कैसा बना है ? इस प्रकार के प्रश्न अपने आप उदय होते ही हैं । यह कल्पनाशीलता की गरिमा है, इसका उत्तर पाना, समाधान पाना, प्रमाण पाना, प्रमाणित होना यह ही श्रुति समुच्चय की सार्थकता में होना पाया गया ।

सम्पूर्ण वांङमय अर्थात श्रुति (सुनने योग्य, सुनाने योग्य, भाषा, परिभाषा जो सोच विचार निश्चय और समझदारी प्रवर्तन भाषाकरण सूत्रीकरण, वाक्य प्रबंधन, संवाद के रूप में प्रचलित रहता ही है ।) यथार्थता का स्वरूप जैसा जिसकी मौलिकता है उसे इंगित करने, निर्देशित करने और चिन्हित करने के रूप में श्रुति का प्रयोजन सार्थक होता हुआ नजर आता है । जिसका जो अर्थ का स्वरूप प्रत्येक एक में रूप, गुण, स्वभाव के रूप में व्याख्यायित होना पाया जाता है । इन चारों आयामों की अविभाज्यता में प्रत्येक एक व्यवस्था के रूप में मूल्यांकित होता है और प्रत्येक एक क्रिया के रूप में ही मिलता है ।

(1) पदार्थावस्था में आकार आयतन घन के रूप में रूप, समविषम मध्यस्थ क्रिया-कलाप के रूप में गुण, संगठन-विघटन के रूप में स्वभाव, अस्तित्व सहज रूप में धर्म स्पष्ट है । पूर्णता को इंगित करने कराने के अर्थ में प्रयोग किया गया भाषा एवं परिभाषा है ।

(2) प्राणावस्था में आकार आयतन घन के रूप में रूप सम-विषम मध्यस्थ के रूप में, गुण सारक-मारक के रूप में स्वभाव और अस्तित्व सहज पुष्टि रूप में धर्म होना समझ में आता है ।

(3) जीवावस्था में आकार आयतन घन रूप, सम विषम मध्यस्थ गुण, क्रूर-अक्रूर स्वभाव, और अस्तित्व पुष्टि सहित आशा के रूप में धर्म पहचानने में आता है ।

(4) ज्ञानावस्था में मानव आकार आयतन घन के रूप में रूप, सम विषम मध्यस्थ के रूप में गुण; धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा, स्वभाव; अस्तित्व पुष्टि, आशा सुख के रूप में धर्म समझ में आता है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि स्वभाव धर्म ही प्रत्येक अवस्था की मौलिक पहचान है और क्रम से पदार्थावस्था में रूप, प्राणावस्था में रूप गुण, जीवावस्था के रूप गुण स्वभाव, ज्ञानावस्था में मानव रूप गुण स्वभाव धर्म, प्रधान पहचान सार्वभौम होना पाया जाता है ।

मानव परम्परा में सार्वभौमता एक अपेक्षा है । सार्वभौमता को नित्य निरंतर बनाये रखने के क्रम में अथवा परम्परा के रूप में निर्वाह करने के क्रम में श्रुति सहज आवश्यकता; उसकी निरंतता के लिए निश्चयन और पारंगत होने की विधि मानव परम्परा में, से, के लिए सार्थक होना पाया जाता है ।

उक्त जिज्ञासा सार्थकता के योगफल सहज विधि से भाषाओं का निर्देष्ट अर्थ प्रसवन सहज उपलब्धि को पाने के लिए विविध देश काल में अथक परिश्रम किया गया है । भाषाएं मानव को आज की स्थिति में सहज सुलभ हुई ही है । भाषा सहज विकास उसका अर्थ सहज प्रभाव प्रक्रिया के अर्थ में ही शब्द और वाक्य, शब्द वाक्य संगत, सूत्र, वाक्य संगत परिभाषा सूत्र संगत गद्य पद्य, प्रबंध निबंध रूपों में सभी भाषावादियों विदों के समुन्नत परिष्कृत निश्चित रूप प्रदान करने का कार्य अदम्य रूप में किया । इस को क्रमागत विधि सम्मत भाषाओं को मूल्यांकित किया जाना सहज है आवश्यक भी है ।

मानव परम्परा में पीढ़ी से पीढ़ी भाषापूर्वक शुभ, धर्म, सत्य, जागृति, भक्ति, विरक्ति, जीवन, जीवजगत, वस्तुओं का नामकरण, क्रियाओं का नामकरण, देशकाल, दिशा का नामकरण उपलब्ध हुआ। ये सब श्रुति के रूप में ही गण्य होता है । इतना ही नहीं सत्य, परम सत्य, उद्धार, सार्थक, स्वर्ग, नरक, पाप, पुण्य, भक्ति, विरक्ति, बंधन, मोक्ष हर देवी-देवताओं को निश्चित रूप में इंगित, बोध कराने के आशय से भाषाओं में अथक प्रयास हुआ । सर्वाधिक सम्मान जनक भाषाओं को मानव परंपराओं के लिए विगत के मनीषियों ने प्रदान किया है । जबकि मानव भाषा कारण गुण गणित के अविभाज्य रूप में है । जिससे ही परम सत्य रूपी सह-अस्तित्व भासाभास पूर्वक प्रतीति सहज बोध, सार्थक होना पाया गया। फलतः अनुभव होना सिद्ध हुआ ।

भाषा के रूप में भाषा अपने गति में व्यापार भाषा, यांत्रिक भाषा, व्यवसाय भाषा, व्यवस्थात्मक भाषा, राजनैतिक भाषा, दार्शनिक भाषा, शास्त्रीय भाषा, साहित्य भाषा, सांकेतिक भाषाओं के वर्गीकृत रूप को भी प्रस्तुत करने का प्रयास देखने को मिला है । इन सब प्रयासों के प्रति वर्तमान पीढ़ी कृतज्ञ है ही । पीढ़ी से पीढ़ी श्रुति की सार्थकता को पहचानने की कोशिश किया गया । अभी भी शोध प्रयास जारी है। इन्हीं शोध प्रयास के चिन्ह रूप में अनेकानेक धर्म, समुदाय, मत, जाति, वेश, पंथों को पहचानना बना ही है । अभी भी सम्पूर्ण धरती पर उचित संप्रेषित जितने भी प्रकार की श्रुतियाँ है उन सबके साथ विविधि प्रकार से किये गये शोध के उपरान्त भी सार्वभौम प्रयोजन लोक व्यापीकरण होना संभव नहीं हो पाया । यह विकल्प के लिए प्रेरक रहा है ।

उक्त विधि से निरूपण यथार्थता, सत्यता, वास्तविकता की जिज्ञासा वश ही अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन, मानव के लिए समीचीन हुई । इसमें परम्परागत भाषा अथवा शब्दों को कारण गुण गणित के अर्थ में प्रयोग किया है । जहाँ जहाँ परम्परागत विधि से मान्य अर्थ है या अर्थ सूचक है उसे परिभाषा विधि से सह-अस्तित्व तथ्यों और प्रयोजन सहज तथ्यों को इंगित कराने की प्रणाली

अपनाया हुआ है । इसी के साथ तथ्यों की धारक वाहकता के रूप में मानव को निश्चित ध्रुव के रूप में पहचान चुके हैं । इस प्रकार से धारक वाहकता एक ध्रुव, सह-अस्तित्व एक ध्रुव, मानव प्रयोजन, जीवन प्रयोजन एक-एक ध्रुव, के रूप में पहचान चुके हैं । संदर्भानुसार इन्हीं किन्हीं दो ध्रुवों के साथ संयोजित रूप हर अध्ययनशील मेधावियों को सहज सुलभ होने की कामना से मध्यस्थ दर्शन सह-अस्तित्ववाद को प्रस्तुत किया है । इसी के अंगभूत मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान शास्त्र प्रस्तुत है ।

भाषा मर्यादा के साथ व्यवहार, व्यवस्था और मूल्यांकन मर्यादाओं को सार्थकता के अर्थ में प्रयोजित करने का उद्देश्य समाहित है । इसमें हमारी निष्ठा बनी हुई है । **जागृत मानव सार्थक श्रुति परम्परा का स्वागत कर स्वीकार करता है ।** श्रुति सहज श्रवण से पूर्णता, संपूर्णता, सार्थकता, बोध होता है, स्वयं स्फूर्त सम्प्रेषणाएं पूर्णता को प्रकाशित संप्रेषित करती है, प्रमाणित करने में तत्परता बनी ही रहती है । ऐसी पूर्णता ''त्व'' सहित व्यवस्था के रूप में ही प्रमाणित हो पाता है और समग्र व्यवस्था के रूप में परम्परा हो पाती है । मानव में, से, के लिए, सहज रूप में परम्परा, मानवत्व सहित परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था, स्वानुशासन के रूप में ही है। मानव-परम्परा का जागृति सहज परम्परा होना समीचीन है । इस प्रकार श्रुति का प्रयोजन जागृति के अर्थ में सहज सार्थक सार्वभौम रूप में होना स्पष्ट हो जाता है । अस्तु, मनुष्य के संदर्भ में यही तथ्य है। सुनने व सुनाने के उद्देश्यों में जागृति ही प्रधान है यही उभर कर आता है कि प्रत्येक मनुष्य अपने में विश्वास कर सके, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान कर सके, प्रतिभा व व्यक्तित्व में संतुलन को अनुभव कर सके; परिवार मूलक स्वराज्य को पहचान सके, उनमें भागीदार हो सके अखंड समाज को पहचान सके व उसका निर्वाह कर सके, स्वानुशासन को पहचान सके व निर्वाह कर सके ।

स्वयं के प्रति विश्वास : श्रेष्ठता के प्रति सम्मान - यह मानव में, से, के लिए सहज समीचीन है । **समझदारी जीवन का स्वत्व है ।** ईमानदारी, पहचानने व निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित

होती है । जिम्मेंदारी, व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी सम्बंध होते हैं । यह मानव सहज अध्ययन का आधार है । जागृत जीवन सहज 10 क्रियाएं शरीर यात्रा पर्यन्त अक्षुण्ण रूप में वर्तमान रहती ही है । इन 10 क्रियाओं में से जब विश्लेषण व तुलन की बात आती है तब तुलन में पहचान में आने वाली प्रिय, हित, लाभ, न्याय, धर्म, सत्य में संयत हो जाती है। जैसे शरीर के साथ न्याय, स्वास्थ्य के साथ संयमरूप में सार्थक होता है । प्रिय रूपी इन्द्रिय सन्निकर्ष क्रियाकलाप व्यवहार न्याय के साथ, लोक न्याय के साथ संयत हो जाते हैं । लाभ प्रवृत्ति उत्पादन और विनिमय न्याय के साथ सम्पन्न होते हुए समृद्धि के साथ, संयत होना पाया जाता है । समृद्धि एक मानव लक्ष्य है। उक्त सभी तथ्यों को समझने वाला मानव, समझाने वाला मानव है । समझने समझाने के कार्य प्रणाली में से श्रुति एक समर्थ और न्याय, धर्म का सत्योन्मुखी प्रयोजन पूर्ण होना जागृत मानव परंपरा में ही प्रमाणित होता । इसके प्रमाण के लिए मनुष्य ही धारक वाहक वस्तु है । मानव सहज अध्ययन के लिए मनुष्य ही वस्तु है । जागृत मानव नियति सहज व्यवस्था है और विकास पूर्वक व्यवस्था है ।

इस विधि से मनुष्य शरीर द्वारा जीवन जागृति सहित अपने सम्पूर्ण स्वरूप को, सम्पूर्ण रूप में संप्रेषित और प्रमाणित करना चाहता है । संप्रेषणा ही श्रुति है । यही मानव परम्परा का वरदान है यही इसका मूल तत्व अर्थात प्रयोजन है । सार्थक कर्म-स्वतंत्रता रूपी और स्वानुशासन और सार्थक कल्पनाशीलता रूपी स्वराज्य सहज संप्रेषणा अभिव्यक्ति है । इस प्रकार (जीवन) अपने को प्रमाणित करने के क्रम में जीवन जागृति एक अपरिहार्य स्थिति है । इसे सफल बनाने के क्रम में सहअस्तित्व परस्परता में मानव परम्परा में संप्रेषित होना ही एक मात्र सूत्र है। यह मानव परम्परा में समझदारी के साथ ही ईमानदारी पूर्वक जिम्मेंदारी सहित सार्थक होना पाया जाता है । इसे स्वराज्य और स्वतंत्रता पूर्वक सार्थक परम्परा रूप देने के लिए श्रुति सहज अनिवार्यता सदा-सदा समीचीन है । इसे हर जागृत मानव को पहचानना, स्वीकृत करना सहज है ।

मानव का अध्ययन ही जागृत मानव परम्परा के लिए प्रमुख कार्य है। **अस्तित्व में जागृत मनुष्य ही द्रष्टा पद में है । जागृत मनुष्य अपने जीवन के रूप में द्रष्टा है । शरीर के रूप में मानव परम्परा है।** साथ ही परम्परा की संपूर्णता, मानवीय शिक्षा संस्कार, मानवीय संविधान और मानवीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था है, यह दृष्टा पद के आधार पर ही सार्थक होता है । यही अध्ययन, अवधारणा, अनुभव योजना, कार्य योजना का फलन है । इसके लिए सार्थक श्रुति आवश्यक है ही । मानव कुल की अखंडता, सार्वभौमता व अक्षुण्णता नियति सहज विधि से समीचीन है, क्योंकि अस्तित्व में विकास और जागृति प्रसिद्ध है । प्रसिद्धता का तात्पर्य मानव समझ चुके है । लोकव्यापीकरण हो चुका है । परम्परा बन चुकी है अथवा समझ सकते है । लोक व्यापीकरण कर सकते है । परम्परा बना सकते है । वैभवित हो सकता है । इस क्रम में नियति अर्थात् अस्तित्व सहज विकास क्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति ध्रुवों के आधार पर स्पष्ट है । जागृति मानव का गम्य स्थली है, तब तक मानव जागृति क्रम में ही गण्य हो जाता है । जागृति क्रम में निश्चयन श्रृंखला, जागृति श्रृंखला की प्यास ही रह पाता है, परिणामस्वरूप गम्य स्थली के लिए बाध्यता निर्मित होता ही है।

सह-अस्तित्व सहज विधि से मानव के सम्मुख विविध मानव मानस और नैसर्गिक अनमेल की पीड़ा से पीड़ित हो चुकी है और नैसर्गिक परिस्थितियाँ मानव को जागृत होने के लिए, चेतने के लिए, परिवर्तित होने के लिए समझने के लिए अनुकूल परिस्थितियों को निर्मित किये जा रहा है । जबकि नैसर्गिकता और मानव प्राकृतिक स्रोत मानव की अभिलाषा के बीच विसंगतियाँ है । यही विसंगतियाँ उक्त प्रकार के सभी अंतरणों के लिए अनुकूल परिस्थिति बन चुकी हैं। पुनःश्च हवा, पानी, धरती के रखरखाव वश इन सब में विसंगतियाँ सोचने समझने जागृत होने के लिए निर्देशित कर रहा है । यह भी इसी के साथ निश्चित होता है कि मानव इस धरती पर जागृति पूर्वक ही जी सकता है अन्यथा सह-अस्तित्व सहज नैसर्गिकता अपने आप मानव प्रजाति को स्वर ताल भंगिमा में प्रस्तुत होना आरंभ कर

दिया है । अतएव मानव प्रजाति को जागृति पूर्वक जीने की विधि, कला, उपक्रम, उपाय, शोध कार्यों को अपनाना ही होगा । इसी क्रम में अभ्युदय सहज सार्थकता को बोध कराने के उद्देश्य से ही यह श्रुति रूपी वांड्गमय मानव के लिए प्रस्तुत है ।

मानव संचेतना अपने आप में जागृत जीवन-सहज रूप में सम्पन्न होने वाली जानने, मानने, पहचानने निर्वाह करने वाली (का) संयुक्त क्रिया कलाप है । जानने व मानने के बीच तृप्ति बिन्दु स्वयं अनुभव होने के कारण अनुभव मूलक विधि से मानव अपनी जागृति सहज प्रमाणों को हर आयाम, दिशा, कोण परिप्रेक्ष्यों में प्रमाणित करता है । यह सार्वभौमता अखंडता, अक्षुणता के अर्थ में इंगित संप्रेषित होना सार्थक पाया जाता है । यह सर्व मानव की अपेक्षा आकांक्षा भी है समीचीन भी है अतएव सह-अस्तित्व सहज परम सत्य को संप्रेषित अभिव्यक्त करने योग्य श्रुति को पहचानना भी एक आवश्यकता है ।

जागृत मानव सहज स्वराज्य और स्वतंत्रता पूर्वक सम्पूर्ण प्रमाणों को प्रस्तुत करना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है । स्वराज्य कार्य-कलाप में प्रमाणित होने के क्रम में स्वाभाविक रूप में हर मुद्दे, हर परिस्थिति संयोग योग वियोगों में सार्थकता को अनुभव करने योग्य हो जाता है । नियति सहज घटना क्रम में मंजिल अपने आप में विकास और जागृति ही है । मानव सहज अध्ययन क्रम में यह हमें समझ में आया है कि जीवन विकसित वस्तु है शरीर विकासशील वस्तु है । जीवन विकास के अनंतर जागृति मंजिल को पाना ही एक मात्र उद्देश्य नियति विधि से स्पष्ट है । जागृति सहज आवश्यकता मानव में सदा सदा निहित है ही । यही संस्कारानुषंगीयता का संभावना सहज सूत्र है । इसी सूत्र के अनुरूप शोध और अनुसंधान मानव के द्वारा ही संपादित करना नियति है । यही रहस्य मुक्त प्रणाली बद्ध निश्चित प्रक्रिया है । यह यांत्रिकता से भी मुक्त है । इसे संप्रेषित अभिव्यक्त करने के क्रम में श्रुति अपने महत्व को स्पष्ट करता ही है जैसे यह वांङमय अपने में एक मिसाल है ही । सह-अस्तित्ववादी श्रुति के अनुसार अस्तित्व सहज स्थिरता से बोध सुलभ हो जाता है।

जैसे सत्ता में संपृक्त प्रकृति ।

सह-अस्तित्व सहज का मूल रूप यही है । यह बोध सुलभ होना आवश्यकता और समीचीनता है ही । श्रुति संयोजन पूर्वक यह बोध सुलभ होता हुआ अनेकानेक नर-नारियों के साथ अध्ययन विधि को प्रयोग कर चुके है यह सहज ही बोध होना पाया गया है। मानव जितना अधिकाधिक सार्थक विचार शैली के लिए जिज्ञासु बन चुका रहता है निरर्थकता का समीक्षा बन चुकी रहती है । ऐसे मनः पटल पर यह सह-अस्तित्व वादी मूल रूप तत्काल ही जानने-मानने में होता हुआ देखा गया है । देखा गया का तात्पर्य समझा गया है। इस तथ्य के आधार पर आगे और भी सफल कार्य गवाहित हुए है। इसे प्राथमिक शिक्षा के रूप में श्रुति बद्ध किया गया, प्रयोग किया गया है । यह हर मानव संतान में स्वीकृत होना, इंगित होना पाया गया है । आगे और भी प्रयोग श्रृंखला शिक्षा विद्या में संपन्न करने का उद्देश्य है ही यह मानव संचेतना वादी मनोविज्ञान रूपी श्रुति भी जागृत मानव शिक्षा संस्कार की कड़ी के रूप में सार्थक होने का उद्देश्य निहित है।

सम्पूर्ण श्रुति सहज सार्थकता अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व को बोध कराने, जीवन सहज जागृति को बोध कराने, प्रत्येक एक अपने त्व सहित व्यवस्था सहज अभिव्यक्त होने, मानव परम्परा में सार्वभौम व्यवस्था अखंड समाज पूर्वक सार्थक सहज तथ्यों को बोध कराने और सह-अस्तित्व सहज नियम नियंत्रण, संतुलन के तथ्यों को बोध कराने के रूप में है । इसी के साथ प्रत्येक एक रूप, गुण, स्वभाव, धर्म सहज अविभाज्यता सहित समग्र व्यवस्था करने कराने के अर्थ में सार्थक होना पाया जाता है ।

व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी के लिए जितनी भी भाषा है, वह सब श्रुति है । मूल्य और मूल्यांकन के लिए जितनी भी भाषा है, वह सब श्रुति है । सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह करने की जितनी भी भाषा है वह सब श्रुति है । तन-मन-धन रूपी अर्थ का सदुपयोग व सुरक्षा के लिए जितनी भी भाषा है, वह सब श्रुति है । परिवारीय आवश्यकता से अधिक उत्पादन तथा लाभ

हानि मुक्त विनिमय के लिए जो भी भाषा है वह सब श्रुति है । जीवन-जागृति, प्रामाणिकता, सर्वतोमुखी समाधान और स्वानुशासन के लिए जितनी भी भाषा है, वह सब श्रुति है ।

अस्तित्व, अस्तित्व में सह-अस्तित्व, सह-अस्तित्व में विकास, जीवन, जीवन-जागृति, रासायनिक-भौतिक रचना विरचना और इनके अंतर्संबन्धों व प्रयोजनों को जानने मानने की जितनी भी भाषा है, वह सब श्रुति है । इस प्रकार मानव कुल के लिए स्वयं स्फूर्त रूप में श्रुति की कितनी आवश्यकता, अनिवार्यता, अपरिहार्यता है, इसे मानव सहज रूप में समझ सकता है। प्रयोग कर सकता है ।

स्वयं में विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान, जीवन-विद्या को विधिवत समझने से सार्थक हो जाता है । मानवीयता पूर्ण आचरण जो स्वधन, स्वनारी/स्वपुरूष तथा दया पूर्ण कार्य व्यवहार, तन-मन-धन रूपी अर्थ की सुरक्षा व सदुपयोग, सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह, की संयुक्त अभिव्यक्ति ही है । जिसे प्रत्येक व्यक्ति आचरण करना चाहता है ।

कुछ लोग, जो जागृत हो चुके है, आचरण अभी भी कर रहे हैं । ऐसे मनुष्यों का मूल्यांकन होना, व्यवस्था की पहचान का तात्पर्य है । अर्थात संविधान में मानवीयता पूर्ण आचरण, सहज पहचान होना एक आवश्यकता है । उसके सर्वप्रथम प्रस्ताव निम्न प्रकार से श्रुतिबद्ध है ।

मानवीय संविधान प्रस्ताव ऐसा हर जागृत मनुष्य किसी न किसी परिवार में प्रमाणित होते हैं परिवार में हर व्यक्ति उनको उनके संपूर्णता के साथ पहचान करने योग्य होते हैं ।

(1) सम्पूर्ण समझदारी श्रुति स्मृति पूर्वक मानव से मानव को, पीढ़ी से पीढ़ी को संप्रेषित होता है जिसमें से बोध होने पर्यन्त श्रुति है बोध में अपने में जानने मानने का स्वरूप है । इसका तृप्ति बिंदु अनुभव है । इसे प्रमाणित करने के क्रम में श्रुति, स्मृतिपूर्वक बोध कराया जाना पाया जाता है । प्रत्येक

मनुष्य की संपूर्णता अपने में भाषा, भाव, भंगिमा, मुद्रा, अंगहार सहित ही सार्थकता को पहचाना जाता है । श्रुति, स्मृति पूर्वक मूल्यांकन करते है।

(2) जागृत मानव परिवार में हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेंदारी को पहचान पाता है । श्रुति स्मृति पूर्वक मूल्यांकन कर पाते है।

(3) आहार, विहार, विचार प्रवृत्तियों को व्यवस्था सूत्र के आधार पर प्रयोजनों के रूप में पहचानता है यह मूल्यांकन का आधार है । यह श्रुति स्मृति पूर्वक होता है ।

(4) मनुष्य का सम्बंध परस्परता में सम्बंध, मूल्य, मूल्यांकन, उभयतृप्ति विधि से पहचान होता है । यह सार्थकता के अर्थ में स्वीकार होना पाया जाता है ।

(5) परिवार में परस्पर प्रवृत्तियों को, कर्तव्य दायित्वों को आवश्यकता से अधिक उत्पादन कार्य में एक दूसरे को पहचानते है । इसकी आवश्यकता बना ही रहता है ।

(6) हर जागृत परिवार में परस्पर मूल्यांकन तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा के आधार पर पहचानते है श्रुति पूर्वक मूल्यांकन करते है ।

(7) परिवार में परस्पर स्वास्थ्य संयम विधा में मूल्यांकन करते है। यह व्यवस्था में भागीदारी के क्रम में अति आवश्यक है इसका स्मृति श्रुति पूर्वक मूल्यांकन होता ही है ।

(8) हर जागृत परिवार में हर मानव परस्परता में न्याय सहज निर्णयों को स्वीकार किये जाने, परस्पर आचरण में प्रमाणित करने के अर्थ में पहचानते है स्मृति श्रुति पूर्वक मूल्यांकन करते है इसकी आवश्यकता बना ही रहता है।

(9) परिवार में भागीदारी करता हुआ/समझदार मानव परस्परता के सम्बंध मूल्य, मूल्यांकन, उभय तृप्ति, स्मृति, श्रुति पूर्वक

मूल्यांकन करते है। इसकी अपेक्षा बना ही रहता है ।

(10) हर जागृत परिवार में परस्पर मानव (नर-नारी) स्वीकृतियों अर्थात् समझदारियों कर्तव्यों के साथ स्मृति श्रुति पूर्वक मूल्यांकन करते है। यह हर मानव परिवार की आवश्यकता है।

(11) हर जागृत मानव परिवार में शिक्षा संस्कार प्रयोजन प्रयोग, प्रमाणों को स्मृति श्रुति पूर्वक मूल्यांकित किया करता है यह परिवार संतुष्टि के लिए अति आवश्यक प्रक्रिया है ।

(12) हर जागृत परिवार में कार्यरत नर-नारी मानवीय शिक्षा, मानवीयता को स्वीकार करने के रूप में संस्कारों को परीक्षण निरीक्षण किया करते है फलस्वरूप हर मानव संतान माननवीयता पूर्ण होने का अथवा जागृति पूर्ण होने का साक्ष्य प्रमाणित हो जाता है ।

(13) हर जागृत मानव परिवार समाधान, समृद्धिता के फलस्वरूप उपकार कार्यों में प्रवृत्त होने के तथ्य को परिवार में मूल्यांकन होता है, स्वीकृत होता है और परस्पर परिवार में स्मृति, श्रुति पूर्वक मूल्यांकन और स्वीकृति और स्वीकृति होना पाया जाता है ।

(14) हर जागृत मानव परिवार की परस्परता के परिवार में सुख, शांति, संतोष का मूल्यांकन तन, मन, धन रूपी अर्थ समृद्धि सदुपयोग सुरक्षा के अर्थ में स्मृति, श्रुति पूर्वक मूल्यांकित करते है । इन प्रमाणों के साथ अखंड समाज सूत्र विकसित होना पाया जाता है ।

(15) हर जागृत परिवार में व्यक्तित्व का मूल्यांकन समाधान और समृद्धि के अर्थ में स्मृति श्रुति पूर्वक मूल्यांकित होता है । परस्पर परिवार में वर्तमान में विश्वास का स्मृति, श्रुति पूर्वक मूल्यांकन होता है ।

(16) हर जागृत परिवार में व्यवस्था में भागीदारी उपकार की सार्थकता, उत्सवित होने के क्रम में समग्र व्यवस्था में भागीदारी स्मृति, श्रुति पूर्वक मूल्यांकन होता है । फलस्वरूप समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व का स्मृति, श्रुति पूर्वक मूल्यांकन होता है ।

(17) हर जागृत परिवार में नैसर्गिक सम्बंधों की पहचान बनी ही रहती है इसकी सार्थकता पूरकता ज्ञानावस्था के लिए और नैसर्गिकता के लिए सार्थक संतुलित नियंत्रित, समाधानित होने का स्मृति, श्रुति पूर्वक मूल्यांकन होता है । यह सार्वभौम व्यवस्था अखंड समाज सूत्र के लिए एक आवश्यकीय कार्य है।

(18) हर जागृत परिवार एक परिवार समूह की प्रकृति प्रणाली, नीति और निर्णयों को स्मृति, श्रुति पूर्वक मूल्यांकित करते है। यह समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व के अर्थ में सार्थक होने के परिणामों के अर्थ में हर परिवार संतुष्ट होता है । परिवार समूह के प्रति विश्वास वर्तमान होता है इसकी निरंतरता होती है ।

(19) हर परिवार समूह अपने कार्य व्यवहार प्रवृत्ति प्रयोजनों को स्मृति, श्रुति पूर्वक मूल्यांकित करता है और ग्राम परिवार का स्मृति, श्रुति पूर्वक मूल्यांकन करता है ।

(20) हर ग्राम परिवार समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व सार्थक होने की स्थिति में ग्राम परिवार समूह पर वर्तमान में विश्वास सुदृढ़ होता है, अक्षुण्ण होता है फलस्वरूप ग्राम परिवार मानसिकता के साथ सम्मिलित रहता है उत्सवित रहता है ।

(21) हर ग्राम परिवार समूह, क्षेत्र, परिवार की प्रवृत्ति, कार्यकलाप, निष्ठा को श्रुति पूर्वक मूल्यांकित करता है । समाधान, समृद्धि, अभय, सह- अस्तित्व और व्यवस्था के पांचों आयाम उसकी गति और सार्थकता का स्मृति, श्रुति

पूर्वक मल्यांकित करता है उसके प्रवृत्ति की सार्वभौमता, सहज मानसिकता सूत्र, व्याख्या, फल, परिणामों के आधार पर वर्तमान पर विश्वास करता है और उसे अक्षुण बनाये रखने के लिए निर्णय लेता है ।

(22) हर जागृत क्षेत्र परिवार अपने आपको और मंडल परिवार को स्मृति, श्रुतिपूर्वक मूल्यांकित करता है, उसकी प्रवृत्ति की सार्वभौमता प्रणाली पद्धति, नीति, फल, परिणाम, सहज सार्वभौमता के आधार पर विश्वास को सुदृढ़ बनाता है उसे अक्षुण बनाये रखने के लिये निर्णय लेता है ।

(23) हर मंडल परिवार अपने मंडल समूह का स्मृति, श्रुति पूर्वक मूल्यांकन करता है, मंडल समूह की प्रवृत्ति कार्यप्रणाली, नीतिया, क्रियान्वयन किया रहता है इन सबको सार्थकता के अर्थ में यथा समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व, सुख, शांति, संतोष के अर्थ में स्मृति श्रुति पूर्वक मूल्यांकित करता है । इन सबके सार्वभौमता पर विश्वास करता है, फलस्वरूप उसकी अक्षुणता के लिए तत्पर हो जाता है ।

(24) हर मंडल समूह अपने को अपने कार्य-कलाप नियति प्रयोजन फल के साक्षियों के आधार पर स्मृति श्रुति पूर्वक मूल्यांकन करता है और मुख्य राज्य परिवार को इन्हीं तथ्यों के आधार पर स्मृति श्रुति पूर्वक मूल्यांकित करता है । उसकी सार्वभौमता के आधार पर वर्तमान में विश्वास करता है उसको अक्षुण बनाये रखने के लिए निर्णय लेता है और निष्ठापूर्वक तत्पर हो जाता है ।

(25) हर मुख्य राज्य परिवार एक प्रधान राज्य परिवार को उसके कार्य-कलाप सार्वभौमता स्पष्टता मानव प्रयोजन, जीवन प्रयोजन और कार्य सुलभता, सुगमता के आधार पर और स्वयं को, स्वयं की सफलता के आधार पर स्मृति, श्रुति पूर्वक मूल्यांकन करता है । सार्थकता के आधार पर विश्वास करता है उसे अक्षुण बनाये रखता है ।

(26) हर प्रधान राज्य परिवार एक, विश्व राज्य परिवार को पहचानता है । उसके सार्थकता को व्यवस्था के पांचों आयाम मानव सहज उभय लक्ष्य और गति का स्मृति, श्रुति पूर्वक मूल्यांकन करता है और स्वयं के यथास्थिति को भी स्मृति श्रुति पूर्वक मूल्यांकन करता है फलस्वरूप सार्वभौमिता सार्थक हो जाता है । इस क्रम से विश्व परिवार राज्य तक अंतर्संबंध व्यवहार सम्बंध निष्कर्ष, जागृति और सार्थकता में भागीदारी हर परिवार संपन्न करता है । इसके अनंतर क्रम से इसके पहले भी, इसके विलोम विधि से श्रुति पूर्वक मूल्यांकन होना पाया जाता है । जैसे परिवार, परिवार के हर सदस्यों का, परिवार समूह हर परिवार का, ग्राम परिवार सभी परिवार समूह का, ग्राम समूह सभी 10 ग्राम परिवार का, हर श्रुति परिवार 10 ग्राम समूह परिवार का, हर मंडल परिवार 10 क्षेत्र परिवार का, हर मंडल समूह परिवार 10 मंडल परिवार का, हर मुख्य राज्य परिवार 10 मंडल समूह परिवार का, हर प्रधान राज्य परिवार 10 मुख्य राज्य परिवार का, विश्व राज्य परिवार सभी प्रधान राज्य परिवारों का मूल्यांकन करता ही है। समझदारी सार्थकता विधि पर स्मृति, श्रुति पूर्वक मूल्यांकित करता है ।

सर्वमानव जागृत रहने की स्मृति से ऊपर चिन्हित किये गये परिवारों के स्वरूप में होता । ऐसा परिवार, व्यवस्था में भागीदारी कर पाता है । इसलिए गांव या मोहल्ला में, कम से कम 100 परिवार, व्यवस्था के रूप में प्रमाणित होने की स्थिति में, ग्राम परिवार या मोहल्ला परिवार की व्यवस्था साकार होना सहज है । व्यवस्था के साकार होने का तात्पर्य, न्याय सुलभता व विनियम-सुलभता व उत्पादन सुलभता स्वास्थ्य संयम सुलभता, मानवीय शिक्षा संस्कार सुलभता होने से है । इस प्रकार स्वराज्य व्यवस्था के पांचों अवयव परस्पर पूरक और गति है । इसके विशद अध्ययन के लिए समाधानात्मक भौतिकवाद, व्यवहारात्मक जनवाद और अनुभवात्मक अध्यात्मवाद, मानव के लिए अर्पित है । ये तीनों वाद विज्ञान सम्मत

विवेक, विवेक सम्मत विज्ञान विधि से, तर्क प्रणाली पहचान सकते हैं । उसी विधि से तीनों वादों को अर्पित किया है । इसी के साथ मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान शास्त्र, आवर्तनशील अर्थशास्त्र एवं व्यवहारवादी समाजशास्त्र अर्पित है । जागृति सह-अस्तित्व स्वयं न्याय, धर्म व सत्य के रूप में व्यक्त है, इस कारण अस्तित्व में मनुष्य ही दृष्टा है इसलिए न्याय, धर्म, सत्य की पहचान, मनुष्य के लिए समीचीन है । इसी आधार पर भौतिकता, समाधान क्रम में स्पष्ट होती है । न्याय मानव की परस्परता में है । सह-अस्तित्व ही परम सत्य के रूप में है । अस्तित्व में अनुभव के आधार पर, ''सत्य'' मानव परम्परा में निरंतर अभिव्यक्ति के लिए वस्तु है । इससे यह भी पता लगता है कि सत्य, धर्म, न्याय और नियमों को भाषा पूर्वक व्यक्त करना श्रुति है । इस प्रकार श्रुति का मूल रूप, ''सत्य'' है । सत्य का स्वरूप नित्य वर्तमान ही है । वर्तमान स्वयं अस्तित्व है । इसलिए अस्तित्व ही परम सत्य है । अस्तित्व में, से, के लिए निभ्रमवादी सम्पूर्ण भाषा श्रुति है, यह प्रमाणित होता है ।

सत्य ही श्रुति का मूल रूप है । सम्पूर्ण आयाम, दिशा, कोण, **परिप्रेक्ष्य, काल,** देश, स्थिति, व गतियों में सामरस्यता को बनाए रखने के लिए श्रुति, स्मृति बोध अनुभव की आवश्यकता है । श्रुति को पहचानने के उपरान्त अथवा सत्य समझ में आने के उपरान्त आवश्यकतानुसार बारम्बार संप्रेषित, प्रकाशित व अभिव्यक्त करने के लिए प्रकाशोदय क्रिया, स्मृति के नाम से जानी जाती है । इस प्रकार सत्य ही, स्मृति का आधार है, यह पाया जाता है । सत्य ही, नियम, न्याय व धर्म के रूप में परिप्रेक्ष्यानुसार समझ में आता है अथवा अवधारणा व अनुभव मूलक क्रम में प्रमाणित होता है । अनुभव मूलक विधि से सम्पूर्ण संप्रेषण कार्य (जो शिक्षा, संस्कार, सम्बन्ध मूल्य- मूल्यांकन, व्यवस्था-व्यवस्था में भागीदारी) प्रधानतः स्मृति का वैभव है। सम्पूर्ण श्रुति को संप्रेषण रूप देना, स्मृति का ही कार्य है । इसका प्रयोजन यह है कि मानव जीने की कला में सत्य सहज अर्थ समाहित रहता है । प्रत्येक परिस्थिति में नियमों का अनुभव मूलक संप्रेषणा श्रुति है । उसे समय-समय पर आवश्यकीय

परिप्रेक्ष्यों में प्रयोजनशील बना लेना, जीने की कला है । यह स्मृति का वैभव है । न्याय, अनुभव मूल स्मृति सहित श्रुति है। विविध सम्बन्धों के साथ मूल्यों को मूल्यांकित करना व निर्वाह करना, यह जीने की कला है । यह अनुभव मूलक स्मृति सहित श्रुति का वैभव है । व्यवस्था व व्यवस्था में भागीदारी, जो स्वयं मानव धर्म है, यही सर्वतोमुखी समाधान है । इसको विभिन्न विधाओं में, सफलताओं को अनुभव मूलक विधि से संप्रेषणीय सार्थक बना देना स्मृति का वैभव है । यही जीने की कला है । **सत्य निरंतर वर्तमान है ।** वर्तमान में अनुभव, उसकी निरंतरता और उसकी अभिव्यक्ति संप्रेषणा श्रुति स्मृति है । उसे जीने की कला में, विभिन्न विधाओं, आयामों, कोणों व दिशाओं में सार्थक बना लेना स्मृति, श्रुति है । वर्तमान में अस्तित्व सहज वैभव होना, मानव अस्तित्व में अविभाज्य होना, इसका अनुभव सहज अभिव्यक्ति स्वयं में श्रुति, स्मृति है । इसे अभिव्यक्ति सहज संप्रेषणा व जीने की कला में प्रमाणित कर पाना स्मृति एवं श्रुति है। अस्तित्व स्वयं सह-अस्तित्व है, यह अभिव्यक्ति संप्रेषित होना श्रुति है अर्थात् अस्तित्व स्वयं सह-अस्तित्व के रूप में वर्तमान रहना, सह-अस्तित्व में स्वयं को अविभाज्य रूप में अनुभव व प्रमाणित करना, यह श्रुति, स्मृति है। यही परम जागृति है । इसे जीने की कला में, विविध परिस्थितियों के साथ व्यवहृत कर लेना, यह श्रुति स्मृति है । सह-अस्तित्व में परमाणु में विकास एक सहज प्रक्रिया है । इसके प्रति जागृति, विकास को एक दृश्य के रूप में देख लेना जागृति है। देख लेने का तात्पर्य समझ लेना ही है, जिसको प्रमाणित करना श्रुति स्मृति है । उसे शिक्षा संस्कार व्यवस्था में सम्बद्ध करना, जीने की कला श्रुति व स्मृति है । जैसे विकास के क्रम में, उन उन के ''त्व'' सहित व्यवस्था के रूप में, जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना, उस विकास के क्रम में पूरकता नियमों को अनुभव करना, प्रमाणित करना श्रुति स्मृति है और जीने की कला में पूरकता को व्यवहार रूप देना श्रुति स्मृति है ।

परमाणु में विकास रूपी, गठन पूर्ण परमाणु को चैतन्य इकाई के रूप में जीवन पद में पहचानना, जानना, मानना, जीवन सहज

कार्य को प्रमाणित करना श्रुति स्मृति है । उसे व्यवहार में सम्बन्धों को पहचानना, मूल्यों का निर्वाह करना मूल्यांकन उभय तृप्ति अनुभव है । इसे संप्रेषित करना स्मृति श्रुति है । जीवन-जागृति पूर्वक ही, वर्तमान सहज सत्य को प्रमाणित करना, श्रुति स्मृति है । उसे व्यवहार में सार्थकता देना यह जीने की कला, श्रुति स्मृति है। जैसे पूरकता नियम सहज उत्पादन, न्यायपूर्ण व्यवहार, समाधान मूलक सम्पूर्ण व्यवस्था, यह जीने की कला, यही श्रुति व स्मृति है । **सह-अस्तित्व में अनुभव मूलक विधि से सम्पूर्ण स्मृतियों का श्रुति-मूलक होना ही मानव परम्परा का नित्य शुभ है ।**

3. मेधा - 4. कला

परिभाषा : मेधा :- (1) स्मृति में धारक वाहक क्रिया । (2) कला को साक्षात्कार करने वाली चिंतन क्रिया ।

कला :- उपयोगिता एवं कला की संयुक्त उपलब्धि (प्रकाशन) एवं योग्यता मेंधा अपने में, जीवन क्रियाओं में, से विज्ञान व विवेक सम्मत साक्षात्कार सहित स्वीकार सहज क्रिया है । विवेक अपने में प्रयोजनों को जानने मानने, पहचानने, निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित है । मानव में, से, के लिए प्रयोजन-सूत्र अथवा जागृत विवेक सूत्र यह है :- (1) जीवन का अमरत्व, शरीर का नश्वरत्व, व्यवहार के नियम साक्षात्कार पूर्वक स्वीकृति ही विवेक है। विज्ञान विधि से काल सहज स्वीकृति क्रिया सहज स्वीकृति निर्णय सहज स्वीकृत प्रमाणित करने की विधियां । इसकी प्रक्रिया विश्लेषणात्मक है। विश्लेषण प्रणाली से, भाग-विभागों से रचित रचनाओं के रूप में पहचानने का क्रिया कलाप है । जबकि विवेक पूर्णता और संपूर्णता के साक्षात्कार सहित न्याय, धर्म, सत्य के आधार पर सम्पूर्ण प्रयोजनों को पहचानने की क्रिया है जो निर्वाह करने की मूल प्रकृति है । प्रयोजन सम्मत विश्लेषण सार्थक होता है और विश्लेषण सम्मत प्रयोजन, सार्थक होता है । सत्य, समाधान, न्याय सम्मत विश्लेषण की स्थिति में, विज्ञान विवेक सम्मत होना पाया गया है फलस्वरूप व्यवहार में प्रमाणित होता है ।

विवेक की रौशनी में विज्ञान को मूल्यांकन करने की स्थिति में अभी तक जो भी विज्ञान का बरवान है वह मानवता विरोधी होना पाया जाता है क्योंकि विज्ञान सूक्ष्मतम अध्ययन के पश्चात अस्तित्व में जो कुछ है भी है पूर्णतः अनिश्चित, अस्थिर बताया जाता है । जबकि अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित विधि से विवेक पूर्वक परिशीलन करने पर पता चला है अस्तित्व स्थिर है विकास और जागृति निश्चित है । अतएव विज्ञान, विवेक सम्मत होने की आवश्यकता विधि में, व्यवहार प्रमाणों में प्रमाणित होना आवश्यक है ।

ऐसा विकास प्रकारान्तर से आशा आकांक्षा के रूप में व्यक्त होते रहा है व जागृति विधि, सत्य, धर्म, न्याय, दृष्टि से संप्रेषित प्रमाण सम्पन्न होना पाया जाता है । इनका लोकव्यापीकरण कार्य में दूरसंचार कला सहायक सार्थक होता है। आशा आकांक्षाएं प्रमाण का आधार न होने के आधार पर प्रयोजनों का सूत्र सम्मत नहीं हो पाया यही रिक्तता अनेकानेक भ्रम मूलक दुष्कर्म, दुष्ट कर्म को गतित करने के लिए विज्ञान सहायक हो गया जबकि वांछनीयता रही कि सत्कार्य सत्य सहज प्रयोजनों को पोषण और संरक्षण करने के लिए गति की आवश्यकता रही । सम्पूर्ण विज्ञान विधि से सकारात्मक पक्ष में दूर संचार उपलब्धि है । आहार, आवास, अलंकार सामग्रियों में संयोजन क्रियान्वयन कार्यकलाप में भी गति प्रमाणित हुई है । जैसे स्वचालित यंत्रों से उत्पादन । अतएव विज्ञान विवेक सम्मत होने की स्थिति में सम्पूर्ण दूरसंचार मानवीयता के पोषण संरक्षण में होना पाया जाता है । सर्व मानव में मानवीयता स्वीकार है । उपभोक्ता संस्कृति विधि से मनुष्य के संस्कार को आकलन करने का उद्देश्य संघर्ष का आधार बनाया गया इससे मानव, मानवत्व सहज दिशा से वंचित ही रह गया । अस्तु, मानवीयता, मानवीयता पूर्ण संस्कार, जागृति, जागृति पूर्ण प्रमाण प्रस्तुत करना समीचीन हो गई है। इसी का नाम है मध्यस्थ दर्शनवाद, शास्त्र, योजनाएँ ।

तन, मन, धन का सदुपयोग विधि से वस्तु का उपयोग विधि से वस्तु का मूल्यांकन विनिमय के लिए सुलभ होते हुए परिवार में

उपयोग समाज में सदुपयोग, व्यवस्था में प्रयोजनशील होने की दिशा स्पष्ट हो गयी है । इसका स्पष्टीकरण पहले भी किया जा चुका है ।

(1) समझदारी पूर्वक तन, मन, धन रूपी अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी निश्चित ध्रुवों के साथ दिशा निर्धारित होना स्पष्ट हुई है । इसलिए सर्वप्रथम समझदारी उसके अनंतर कार्यविधि के रूप में दिशा, उसका फल परिणाम ।

(2) समझदारी की पुष्टि में होना पाया गया है । ऐसा निश्चित करना मेंधा का कार्य है यह निश्चय के रूप में चिन्हित होता है । इसे जीवन में चरितार्थ करने के लिए क्रिया प्रणाली को अपनाते है । यही निश्चित दिशा के रूप में कार्य गति; विचार गति का होना पाया जाता है फलस्वरूप इसकी सफलता मानव कुल में प्रमाणित होती है ।

इन वास्तविकताओं को हर व्यक्ति या सर्वाधिक व्यक्ति स्वीकारता ही है । इसके लिए आवश्यकीय समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेंदारी में पारंगत होने की आवश्यकता है । ऐसी समझदारी जीवन ज्ञान अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण के रूप में स्पष्ट है । उल्लेखनीय तथ्य यही है कि मानव की आकांक्षा अथवा शुभाकांक्षा समीचीनता के बीच मानव परम्परा ही प्रमुख सार्थक स्थिति और गति है । इसका तात्पर्य यही हुआ कि मानव सहज परम्परा बहुआयामी होना स्पष्ट किया जा चुका है । ऐसे सभी आयामों में लक्ष्य दिशा सार्थकता का निर्धारण विज्ञान और विवेक संगत विधि से ही संपन्न हो पाना पाया गया है । सत्य मूलक, समाधान मूलक, स्मृतियां, न्याय और नियम मूलक स्मृतियां, अनुभव मूलक विधि मानव में, से, के लिए प्रमाणित होना पाया जाता है । शुभाकांक्षाएं जीवन सहज कल्पना में होता ही है । उसकी सार्थकता प्रमाण रूप में परम्परा में प्रमाणित होना तभी होता है जब परम्परा स्वयं, सार्थक ज्ञान, सार्थक दर्शन और सार्थक आचरण को जाने, माने, पहचाने, निर्वाह करे । यह सर्वमानव में, से, के लिये अथवा लोकव्यापीकरण के लिए

अथवा सर्वसुलभ होने के लिए मानवीय शिक्षा संस्कार ही एक मात्र शरण है । यही जागृत शिक्षा है । इसी में अस्तित्व सहज सह-अस्तित्व का अध्ययन, सूत्रों, व्याख्या और निष्कर्षों की निष्पति है । सार्थकता के अर्थ में सुनियोजित होना पाया जाता है । इसलिए सुनिश्चित भी होता है।

सम्बंधों का स्वीकार सहित जीने का क्रम मानवीय शिक्षा संस्कार पूर्वक ही स्पष्ट और स्वीकार हो पाता है फलतः निष्ठा होना स्वाभाविक प्रक्रिया है । मानव परम्परा की जागृति का पहला स्वरूप शिक्षा संस्कार ही है। यह विज्ञान क्रम विधि उपक्रम पूर्वक, जड़ चैतन्य प्रकृति का अध्ययन करना आवश्यक है। प्रधानतः चैतन्य प्रकृति का अध्ययन करना विज्ञान संसार में रिक्त रहा है। अभी इसको सुगम रूप में अपना लेना बनता है । परमाणु सहज ज्ञानार्जन अथवा भाषा विज्ञान संसार दावा के रूप में प्रस्तुत करता ही है । इसलिए विज्ञानियों को गठनपूर्ण परमाणु को स्वीकारने में कोई बाधा दिखाई नहीं पड़ती । बाधा न बाधा एक ही है कि दुष्ट सामरिकता के लिए तरफदारी जिसके आधार पर आजीविका बिताता हुआ अनेकानेक विज्ञानी कहलाने वाले मेघावियों को तकलीफ हो सकता है क्योंकि गठनपूर्ण परमाणु के आधार पर जागृति तूल पकड़ना आता ही है और परमाणु सहज वैभव सम्पूर्ण जड़ चैतन्य प्रकृति सहज व्यवस्था का मूलरूप होना प्रतिपादित हो जाता है ।

सबसे बड़ा संकट यही है कि इसको पकड़ कर अर्थात जीवन परमाणु को पकड़ कर विघटित कर देखने के इरादे निष्फल इसलिए होते हैं कि परमाणु को पकड़ धकड़ कर उनमें निहित अंशों को घटा बढ़ा कर कुछ नई विपदाओं को पैदा करते हैं । यह हविश जीवन परमाणु के साथ पूरी नहीं होगी क्योंकि अभी तक जितने भी पकड़ धकड़ वाले है जीवन सहज अक्षय कल्पना के आधार पर ही किये है। यही सबसे बड़ा संकट है, इसे दोहराया गया ।

व्यवस्था सहज विधियों को, निश्चयन सहज विधियों को,

स्थिर सहज विधियों को आवश्यकता के रूप में स्वीकारने की स्थिति में विज्ञानी, सामाजिक चेतना में और जीवन जागृति और उसके प्रमाणीकरण क्रियाकलाप में विधिवत भागीदारी कर सकते है । काल क्रम संयोग प्रकृति जहां भी विज्ञान मानसिकता अपने को अतिमहत्वपूर्ण मानता है उसमें से दूरसंचार कार्य, कार्य योजना, तकनीकी मानव कुल के लिए सार्थक है अन्य सभी निरर्थक सिद्ध हो चुका है । जैसे बीजगुणन, इसकी स्थिरता होती नहीं है । नस्ल सुधार जिसकी स्थिरता होती नहीं है । कृत्रिम स्वाद, धरती को बर्बाद, विषाक्त करता है कीटनाशक खाद्य को विषाक्त बनाता है । खनिज तेल और कोयला धरती के वातावरण को क्षतिग्रस्त कर चुका है ।

अस्तु, सामाजिक ज्ञान विवेक व्यवहार तंत्र जागृति प्रमाण सूत्रित होने के लिए आवश्यकता महसूस होने की स्थिति में चैतन्य पक्ष को समझने की आवश्यकता समीचीन है ही क्योंकि शरीर रचना विधि क्रम में मानव विश्लेषित नहीं हो पाया । इसलिए जीव मानसिकता के सदृश्य ज्ञान गलियारा सर्वाधिक सहायता किये रहा ।

अस्तित्व मूलक, मानव-केन्द्रित चिंतन ज्ञान के अनुसार अस्तित्व में, विकास क्रम में, रासायनिक भौतिक रचनाएं-विरचनाएं स्पष्ट होती है। परमाणु विकास पूर्ण (गठनपूर्ण) होने के उपरान्त, चैतन्य पद में संक्रमित होता है यह समझ में आता है । ऐसी चैतन्य इकाई का जीवन पद में होना, समृद्ध मेधस युक्त शरीर को संचालित करना तथा मानव शरीर व जीवन के संयोग से जागृति को प्रमाणित करना ही, उद्देश्य है । इसी क्रम में मानव विकल्पात्मक विश्व-दृष्टि को विकसित करना, आवश्यक रहा । इसी तथ्यवश, अस्तित्व मूलक, मानव केन्द्रित विश्व दृष्टि का, लोक व्यापीकरण विधि से विवेक और विज्ञान का मानव व्यवहार में प्रमाणित होना ही विकल्प का प्रयोजन है ।

मानव व्यवहार का तात्पर्य और प्रमाण है अखंड समाज और सार्वभौम व्यवस्था का वर्तमानित होना । ''जीवन-विद्या'' का लक्ष्य

स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता के प्रति सम्मान है । जीवन-विद्या में पारंगत अधिकांश व्यक्तियों में इस प्रभाव को देखा गया है ।

दूसरे चरण में मानववाद है जो अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था को, लोक व्यापीकरण करने के कार्यक्रम को प्रस्तुत करता है । इसके अध्ययन से मानव संस्कार सुलभ होता है । इसके अवगाहन से, मानवीय संस्कार से, देव-मानव व दिव्य मानव कोटि का संस्कार, स्वयं स्फूर्त होता है ।

इसकी पुष्टि के लिए, जीवन सहज कार्य-कलापों को, परस्पर परीक्षण, निरीक्षण पूर्वक जागृत होने की विधि को सर्व सुलभ करता है। जिससे निःश्रेयस की, आदिकालीन वांछा रही है, वह भ्रम-मुक्ति के रूप में सुलभ हो गया है । जिसका लोकव्यापीकरण करना शुरु किया है ।

अभ्युदय ही सर्वतोमुखी समाधान के रूप में, सार्वभौम व्यवस्था के रूप में व्यवहारान्वित होता है । ऐसा सर्वतोमुखी समाधान सर्वसुलभ होने के लिए विवेक व विज्ञान का सम्मिलित रूप में मानवीय शिक्षा संस्कार के रूप में प्रमाणीकरण की आवश्यकता है ।

विवेक व विज्ञान में सामरस्यता ही सर्वतोमुखी समाधान और न्याय सुलभता का सहज स्रोत है । यह प्रत्येक व्यक्ति में समीचीन है। जन जीवन में जागृति रूप देने के लिए विज्ञान व विवेक सम्मत शिक्षा क्रिया का लोकव्यापीकरण आवश्यक है । और न्याय, धर्म, सत्य को स्वीकार करने वाली क्रिया के रूप में, मेंधा जीवन सहज रूप में सार्थक होता है (यह प्रत्येक व्यक्ति में समीचीन है) ।

कला का तात्पर्य है, सार्वभौमता, अखंडता के, लोकव्यापीकरण करने का क्रिया कलाप । यही प्रत्येक मनुष्य को मानवीय आचरण पूर्वक, मानव परिवार में भागीदार होने, ग्राम परिवार व विश्व परिवार में भागीदार होने का सूत्र और व्याख्या है । ग्राम व विश्व परिवार में व्यवस्था सूत्र ही सार्वभौमता को प्रमाणित करता

है। यही मानव परम्परा की जीने की कला है। ऐसी कला का लोकव्यापीकरण करना ही कला का तात्पर्य है । यह हमारा संकल्प है ।

5. कान्ति - 6. रूप

परिभाषा : कान्ति :- कांति का तात्पर्य प्रकाश से है ।

रूप :- आकार, आयतन, घन ।

कांति का तात्पर्य जीवन-प्रकाश से है । अस्तित्व ही रूप है, इसलिए जीवन प्रकाश में सम्पूर्ण रूप दिखते हैं हर रूप में प्रकाश मानता रहता है । अस्तित्व सीमित असीमित रूप ही वर्तमान है । सत्ता व्यापक (असीमित) रूप में है । सत्ता में संपृक्त सम्पूर्ण प्रकृति सभी ओर से सीमित रूप में दिखती है । देखने का मतलब समझने से है । सभी ओर से सीमित प्रकृति एक-एक के रूप में है । इसका रूप, गुण, स्वभाव, धर्म सहज अविभाज्य होना पाया जाता है । यह जीवन प्रकाश में ही मानव को समझ में आता है। जबकि हर एक-एक अपने स्वरूप में प्रकाशित रहता ही है ।

जीवन प्रकाश का परावर्तन, विशालता और प्रभावशील है । इसका तात्पर्य मनुष्य जितनी विशालता तक निर्भ्रम है, वहां तक परावर्तन का प्रभाव रहता है । जागृत होने का तात्पर्य, जानने मानने से है और जानने मानने का तात्पर्य अनुभव से है । अनुभव मूलतः जानने मानने का तृप्ति बिंदु है, **जीवन प्रकाश में अस्तित्व ही, सम्पूर्ण वस्तु रूप है । अस्तित्व में ही सम्पूर्ण वस्तु अविभाज्य है ।** जीवन जागृति की महिमा ही जीवन प्रकाश है। व्यापक व अनंत अस्तित्व ही, जीवन में दृश्य के रूप में स्पष्ट होता है । जागृत मानव ज्ञान, विज्ञान व विवेक विधि से, क्यों, कैसे, कितना का द्रष्टा होता है जिससे उसकी विवेचना व विश्लेषण सहज होता है । अस्तित्व में अनुभव मूलक प्रणाली ही सहज रूप में, अनुभव, चिंतन व विश्लेषण जागृति की प्रक्रिया है । फलतः अस्तित्व कैसा है ? यह समझ में आता है। यह व्यापक में संपृक्त अनंत, सहज सह-अस्तित्व है । यही पदार्थ, प्राण जीव व ज्ञानावस्था सूत्रित व्याख्यायित

है ।

मानव, जीवन और शरीर के संयुक्त साकार रूप में है । सम्पूर्ण शरीरों का जीवन्तता पूर्वक कार्य व्यवहार करना पाया जाता है । जीवन, शरीर को जीवंतता प्रदान करने का फल ही है । मानव परम्परा में जीवन जागृति प्रमाणित होता है । जीवन ही इंद्रियों का द्रष्टा है । यह प्रत्येक मनुष्य में प्रमाणित है । यह प्रमाण परस्परता में भी प्रमाणित है। प्रत्येक मनुष्य जीवंतता पूर्वक जीता हुआ और निर्जीवन्तता पूर्वक, मरा हुआ शरीर के रूप में पहचाना जाता है, तदनुसार मनुष्य, निर्वाह भी करता है । जैसे जीवन, मनुष्य के जीते रहने के अधिकार को, परस्पर प्रकारान्तर से स्वीकारता है । यही जीने देने का प्रधान सूत्र है। जीता हुआ आदमी जीना चाहता ही है । जीवित आदमी को देखने वाला आदमी भी, जीवित रहता है । इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य जीवंतता पूर्वक, जीवित मनुष्य को सहज ही पहचानता है । यह कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों में परावर्तित जीवन का वैभव है । यह परावर्तन विधि, सह-अस्तित्व सहज है । समृद्ध मेधस युक्त रचना के उपरान्त ही (अथवा समृद्ध मेधस युक्त शरीर को) जीवन, सहज ही जीवन्तता प्रदान करता है। जीवंतता प्रदान करने की प्रक्रिया यह है कि जीवन अपने जीने की आशा सहज प्रभाव से, मेधस को प्रभावित करता है ।

मेधस के द्वारा ज्ञानवाही विधि से, सम्पूर्ण शरीर में जीवंतता का प्रभाव क्षेत्र बना ही रहता है। मेधस पर जीवन का, संकेतों के रूप में जो प्रभाव प्रभावित रहता है, वही सर्वाधिक पांचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा, कार्यशील प्रवर्तनशील देखने को मिलता है । **जीवन अपने में गठन पूर्ण परमाणु है, चैतन्य पद में संक्रमित इकाई है ।** यही जीवन प्रतिष्ठा के रूप में वैभवित है। जागृति पूर्वक जीवन अपने द्रष्टा पद का प्रयोग करता है और अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन करता हुआ, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों का द्रष्टा है । यही शरीर के साथ संज्ञानशीलता का भी तात्पर्य है । इच्छानुसार इंद्रिय कार्य करना ही इन्द्रिय व्यापार है । (अथवा इंद्रिय कार्यकलाप है) । इस प्रकार जागृत मनुष्य अपने ही स्वरूप को, जीवन वैभव को, शरीर

कार्यकलाप के साथ द्रष्टा पद के वैभव को मूल्यांकन कर सकता है। **मूल्यांकन क्रम ही, जीवन प्रकाश की कांति है ।** इस रूप में जागृति सहज प्रभाव क्षेत्र प्रमाणित होता है । इसका तात्पर्य यह है कि जीवन का प्रभाव क्षेत्र ही कांति के नाम से इंगित होता है ।

अस्तित्व में प्रत्येक ''एक'' का प्रभाव क्षेत्र उससे अधिक होता है । जैसे एक परमाणु जितना भी अपनी लम्बाई, चौड़ाई व ऊंचाई सहित है उससे अधिक क्षेत्र में वह कार्य प्रभाव रहते हुए देखने को मिलता है क्योंकि एक दूसरे के बीच में रिक्त स्थली रहता है । यह इस बात का प्रमाण है कि परमाणु में अपना प्रभाव क्षेत्र परमाणु में निहित अथवा कार्यरत सम्पूर्ण अंशों का जितना घन होता है, उससे अधिक अवकाश में, अपना कार्य प्रभाव क्षेत्र बनाए रखता है । इसी का दूसरा प्रमाण, परमाणु में निहित प्रत्येक अंश, परस्पर एक निश्चित दूरी में रहते हुए, निश्चित व्यवस्था को व्यक्त करते हैं । ऐसे परमाणुओं से भौतिक और रासायनिक अणु और रचनाएं देखने को मिलती हैं । परमाणु विकसित होकर गठन पूर्ण होता है । चैतन्य इकाई ही जीवन पद है । ऐसे जीवन ही जागृति पूर्वक क्रिया पूर्णता, आचरण पूर्णता को विश्राम और प्रमाणिकता के रूप में प्रभावित करते है । यही परमाणु विकास और जागृति वैभव है । अर्थात जीवन का मूल रूप भी गठन पूर्ण परमाणु है । इन सब घटनाओं महिमाओं का द्रष्टा जीवन ही है । जीवन का अद्‌भुत वैभव, उसी का कार्य क्षेत्र और प्रभाव क्षेत्र है । चैतन्य प्रकृति रूपी जीवन, अक्षय बल व अक्षय शक्ति सम्पन्न होने के कारण आशा, विचार, इच्छा, संकल्प व प्रामाणिकता के रूप में, अपने प्रभाव क्षेत्र को बनाए रखना हर व्यक्ति में प्रमाणित है ।

यह तथ्य स्पष्ट हो चुका है कि अस्तित्व में भौतिक, रासायनिक और जीवन क्रिया ही सम्पूर्ण क्रिया का मूल रूप है । इनमें से भौतिक क्रियाकलाप के मूल में परमाणुओं का कार्यरत रहना, रासायनिक क्रियाकलाप के मूल में परमाणु का कार्यरत रहना और जीवन क्रियाकलाप में भी मूलतः गठन पूर्ण परमाणु का होना स्पष्ट है यह स्पष्ट क्रियाकलाप बच्चे, युवा, बुढ़े, सभी को समझ में

आता है । परमाणु भले सबको समझ में आये या न आये । भौतिक क्रियाकलाप अलग, रासायनिक क्रियाकलाप अलग, जीवन क्रियाकलाप अलग स्पष्ट हो जाता है । यद्यपि इन सब क्रियाकलाप को पहचानने वाला जीवन ही है । ये सब अलग-अलग रहते हुए साथ-साथ होना ही सह-अस्तित्व का साक्षी है ।

जीवन जागृति पूर्वक ही सूक्ष्म व सूक्ष्मतम कांति को अर्थात् प्रकाशन को पहचानता है । यह सबको समझ में आता है कि जड़-चैतन्य प्रकृति व्यापक वस्तु में नित्य वर्तमान और प्रकाशमान है । व्यापक वस्तु सहज प्रकाश मानता, पारगामी, पारदर्शिता के रूप में समझ में आता है । यह पारदर्शिता, पारगम्यता स्वयं में अतुल्य महिमा है । यह व्यापक वस्तु सहज कांति है । व्यापकता का कोई आयाम नहीं हो पाता क्योंकि व्यापक वस्तु कितना लंबा चौड़ा है इसको मानव निर्मित किसी भी मापदंड, धन, ऋणात्मक गणित विधि से अर्थात् जोड़ घटाने की संख्यात्मक रूप में निर्धारित नहीं कर सकते यह अवश्य अनुभव किया गया है कि जितने भी अनुभव क्षेत्र में, कल्पना क्षेत्र में है उससे अधिक व्यापक वस्तु है ही । कल्पना भी हम वर्षो करें और-और विधि से, अंततोगत्वा कल्पना के विस्तार से अधिक होने की गवाही कल्पना को भी मिलती है अनुभव को भी मिलती है मापदंड से भी मिलती है, कार्य व्यवहार पहुँच में सब को जितने भी पहुंच दौड़ हो पाता है वह कल्पना क्षेत्र के एक छोटे भाग में सिमटा रहता है । हमारी कल्पना और अनुभव सर्वाधिक विशाल, सर्वाधिक गति के रूप में पहचाना गया है । मनुष्य का कार्यगति, कार्य की सीमा सदा गणितीय गति से कम होता ही है ।

जैसे प्रकाश की गति, विद्युत गति के बारे में गणित अपने निष्कर्षों को निकालता है । इसी प्रकार धरती गति, परमाणु की गति भी निष्कर्ष गणित द्वारा निकाल लेते है । प्रकाश गति का दृष्ट प्रमाण संख्या क्रम में स्पष्ट होना अभी भी विचाराधीन है ही । प्रकाशगति के आधार पर अथवा प्रकाश गति के अनुरूप किसी वस्तु का गति होने पर वह वस्तु अक्षय होने का दावा है । यदि यह सच्चाई है तब प्रकाशगति निरंतर स्वयं निरंतर विद्यमान, गतिमान

रहना ही था । ऐसा कुछ देखने को आसार मिला नहीं । जो कुछ भी मिला है वह यह कि हर वस्तु विद्यमान है, गतिमान है और इसी के साथ प्रकाशमानता सह-अस्तित्व सहज वैभव है ।

हर वस्तु अपने स्वरूप में सीमित होना विद्यामानता का द्योतक है । हर वस्तु अपने ही अनंत कोणों की समसम्मुखता में दूसरे इकाई के साथ साथ दूसरे इकाई पर प्रतिबिंबित रहना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है । इसी क्रम में सौर व्यूह एक दूसरे ग्रह गोलों पर ससम्मुखता विधि से प्रतिबिंबित रहना, उन-उन के प्रकाशमानता का साक्षी है । इसी प्रकार अंनत सौर व्यूह अनेक आकाशगंगा के नाम से ग्रह गोल नक्षत्रों को पहचान पाते है । जिसको हम पहचान भी नहीं पाये हैं ये सब अपने अपने स्थिति में प्रकाशमानता प्रतिबिंब सहज वैभव के रूप में है ही । होने का अर्थ ही अस्तित्व है । अस्तित्व का ही दूसरा नाम स्थिति है । हर वस्तु अपने स्थिति गति के साथ ही प्रतिबिंबित रहते है । प्रत्येक एक-एक में स्थितिगति अविभाज्य है ।

यहाँ इस मार्मिक मुद्दे को स्मरण दिलाने का तात्पर्य यही है कि छोटे से छोटे परमाणु अंश पहचानते है इसका साक्ष्य निश्चित संख्यात्मक परमाणु अंशों से गठित अथवा सम्मिलित कार्य रूप को परमाणु नाम से इंगित किया जा रहा है। सभी परमाणु इसी स्वरूप में विद्यमान गतिमान प्रकाशमान है । परमाणु के मूल वस्तु, परमाणु अंश एक दूसरे को पहचानने के आधार पर ही निश्चित कार्य को करने में प्रवृत्त निष्ठा उसकी निरंतरता का होना समझ में आता है । ये स्वयं परमाणु अंशों की प्रकाशमानता के साथ ही एक दूसरे के व्यवस्था के रूप में निश्चित आचरण को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति उन उन परमाणु अंशों में ही निहित रहना स्वाभाविक है । इन परमाणुओं का अद्भुत तथ्य यह भी है कि ये नित्य प्रकाशमान है ।

परमाणुओं के रूप में कार्यरत परमाणु अंशों के संख्या भेद से उन-उन का आचरण भिन्न-भिन्न होता हुआ भी समझ में आता है क्योंकि लोहा में लोहत्व के रूप में जो आचरण है उसका मूल स्रोत उस लोहा के रूप में कार्यरत परमाणु ही है । लोहा के रूप में

जितना द्रव्य है उन सब के मूल में निश्चित एक जाति परमाणुओं का होना पाया जाता है क्योंकि परमाणु की अणु के रूप में अणु अणुपिंड के रूप में रहना पाया जाता है । इसी प्रकार प्रत्येक प्रजाति के पिंडों में निश्चित प्रजाति के परमाणु समाहित रहना स्पष्ट हो जाता है । इसी स्पष्टता के साथ एक दूसरे को पहचानने वाला क्रम वैभव परमाणु अंशों से ही स्रोत रूप में निहित रहना भी जागृत मानव को समझ में आता है । इसी के साथ यह भी समझ में आता है हर परमाणु अंश में ही व्यवस्था के रूप में कार्यरत रहने की प्रवृत्ति समायी रही है । इस विधि से छोटी से छोटी मात्रा जो निश्चित मात्रा है, परमाणु अशं का उसी मात्रा के स्वरूप में व्यवस्था के रूप में प्रकाशित होने का सूत्र समायी है इसका प्रमाण हर परमाणु व्यवस्था के रूप में होना ही है । यह समग्र व्यवस्था में भागीदारी करता है ।

अर्थात हर परमाणु व्यवस्था होते हुए अपने प्रजाति के परमाणुओं के साथ अणु, अणुओं से रचित पिंड के रूप में होना दृष्टव्य है । यही चरित्र और आचरण प्रवृत्ति प्रत्येक प्रजाति सहज परमाणु, अणु, अणुरचित पिंडों के रूप में भौतिक वस्तुएँ उपलब्ध है। इस प्रमाण से समग्र व्यवस्था में भागीदारी का सूत्र समझ में आता है । इसके आगे हर एक प्रजाति के रचना अपने अपने समूह के रूप में सहवास जैसे धातु समूह, पाषाण समूह, मिट्टी समूह, मणि समूह ।

ऐसे प्रत्येक समूह में अनेक प्रजाति के धातु मणि, पत्थर, मिट्टी होना पाया जाता है ये सब सहवासी विधि से भी साथ में होना पाया जाता है । जैसे मिट्टी पत्थर धातु का सहवास में होना जैसे एक प्रजाति के पत्थर के साथ एक प्रजाति के धातु दूसरे प्रजाति के धातु के साथ, एक प्रजाति के मणि दूसरे प्रजाति के मणि के साथ होना दृष्टव्य है यह एक सहवास विधि है ।

दूसरा सहवास विधि मिट्टी पत्थर, मणि पत्थर, धातु पत्थर में भी सहवास में होना दृष्टव्य है । ये सब जितने भी व्यवस्था प्रवृत्ति से लेकर सहवास तक सभी वस्तुएं व्यवस्था के अर्थ में ही होते है ये

सब प्रकाशमानता के साथ ही एक दूसरे को पहचाने रहते है । यह प्रकाशमानता मूलतः कांति है । इसी प्रकार रासायनिक संसार में भी एक दूसरे वस्तु की मात्रा पहचान में आने के आधार पर ही रासायनिक क्रिया उर्मि होना पाया जाता है ।

रासायनिक उर्मि का तात्पर्य रासायनिक क्रिया कलाप में प्रवृत्ति है । यह भौतिक क्रियाकलाप प्रवृत्ति से भिन्न पहचानना आरंभ कर विभिन्न रसायनों के योग, संयोग, वियोग, रचना-विरचना क्रियाओं के साथ-साथ व्यवस्था को प्रमाणित करते है । यह परस्परता में पहचान, अस्तित्व सहज है। इसी रसायन क्रियाकलाप के उन्नत प्रकाशन, जीव शरीर और मनुष्य शरीर के रूप में प्रकाशन है। इसका परस्पर पहचान, प्रकाशन पूर्वक हो पाना प्रमाणित है । ये सब व्यवस्था के अर्थ में ही है । हर रचना एक व्यवस्था को प्रकाशित करता है । हर विरचना एक दूसरे रचना के लिए सूत्र बना ही रहता है । इस प्रकार रचना-विरचना भी प्रकाशमानता, प्रतिबिंब और रचना प्राण सूत्र और रचना विधि क्रम में संपन्न होना रासायनिक संसार का नित्य कार्यकलाप है । इनका भी कांति विधि से ही पहचान होना पाया जाता है ।

मानव परम्परा में परस्पर कांति का अनुभव पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्थाओं में, प्राकृतिक, छटा, सौंदर्य के रूप में अनुभव किया जाता है । यह प्रकाशमानता का ही अनुभव है । प्रकाशमानता सभी अवस्था, पदों में रूप सहज विधि से ही सम्पन्न होना पाया जाता है । हर रूप के सात सौंदर्य कांति के रूप में गण्य होता है । सौंदर्य का सत्यापन करने वाला इकाई मानव ही है । उसमें भी व्यवस्थात्मक सौंदर्य को सत्यापित करने वाला मानव ही है। मुख्य मुद्दा व्यवस्थात्मक सौंदर्य ही कांति है । इसे जागृति पूर्वक ही हर मानव पहचानता है । यही कांति का वैभव है जागृत मानव में व्यवस्था सहज विधि से सुख पाना बन जाता है ।

कांति का दूसरा नाम **''छवि''** है **छवि का तात्पर्य** अपने

सौंदर्य को अथवा स्वसौंदर्य को ससम्मुखता में प्रतिबिंबित करने के अर्थ में सार्थक होना पाया जाता है । मनुष्येत्तर तीनों अवस्थाओं, में व्यवस्था के रूप में सौंदर्य विद्यमान है ही । व्यवस्थात्मक कांति को, सौंदर्य को, प्रभाव को, जागृत मानव ही मूल्यांकित कर पाता है । मूल्यांकित करने का क्रिया स्वयं सुख का स्रोत हो पाता है । इसी विधि से कांति का प्रयोजन हर रूप, हर अवस्था, हर पद के साथ मूल्यांकित होना पाया जाता है अस्तु, यह निष्कर्ष निकलता है रूप और कांति अविभाज्य है व्यवस्था के रूप में वैभव हैं । सह-अस्तित्व प्रयोजन है त्व सहित व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी अक्षुण है। इस प्रकार रूप और कांति का प्रयोजन विदित होता है ।

7. निरीक्षण 8. गुण

परिभाषा - निरीक्षण :- (1) अनुभवमूलक दर्शन एवं उसके प्रकटन की संयुक्त चिंतन-चित्रण क्रिया ।

गुण :- (1) सापेक्ष शक्तियां । (2) सम-विषम - मध्यस्थ गतियाँ। विषम गुण = आवेशित गति । समगुण = स्वभाव गति । मध्यस्थ गुण = व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदारी रूपी गति (स्वभाव गति की निरंतरता) । (3) स्वभाव गति अथवा अपेक्षित गति का प्रकाशन ।

इच्छाएं अपने आप में रूचि मूलक, मूल्य मूलक व लक्ष्य मूलक प्रणाली से, स्वयं प्रकाशित प्रमाणित होती हैं । इच्छाएं, ईक्षण सहित छवि की महिमा के अर्थ में, मानव के क्रियाकलापों में सार्थक अथवा चरितार्थ होती हैं । इंन्द्रियों का दृष्टा है जीवन ! जीवन, भ्रमित होने के कारण इंन्द्रिय सन्निकर्षात्मक क्रिया कलाप में जीवन अपने द्रष्टा पद को जीने की आशा, आस्वादनापेक्षा के आधार पर सम्मोहन और आवेश पूर्वक इन्द्रिय सन्निकर्ष में तद्रुप स्वीकार लेता है। तद्रुपता का तात्पर्य मैं स्वयं इन्द्रिय हूँ । इस प्रकार की स्वीकृति में स्वयं स्वअस्तित्व भुलावा हो जाने से है । अस्तु, जीवन ही जीवन को जीवन से, जीवन के लिये बेहोशी में सुख पाने की स्वीकृति

अर्थ में स्वयं की विस्मृति स्वीकृत होना पाया जाता है । परिणामस्वरूप जीवन भ्रमित रहना पाया जाता है। इस प्रकार जीवन आस्वादनापेक्षा और इन्द्रिय सन्निकर्ष में सीमित हो जाता है। यही पशुवत जीने का आधार और प्रवृति है। जबकि जागृति पूर्वक जीवन इंद्रिय सन्निकर्ष का दृष्टा होता ही है । न्याय, धर्म, सत्यपूर्वक इन्द्रिय सन्निकर्षों को उपयोग सदुपयोग प्रयोजनशील विधि से प्रमाणित करने का कार्यक्रम स्वयं स्फूर्त विधि से होता ही है इस तथ्य को पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है ।

व्यवस्था ही वर्तमान में विश्वास है जो अभय का सकारात्मक रूप है । अस्तित्व नित्य व्यवस्था व वर्तमान होने के कारण, अस्तित्व में मानव अविभाज्य होने के कारण, मानव में, से, के लिए व्यवस्था नित्य समीचीन है। जीवन सहज व्यवस्था को जानने-मानने पहचानने-निर्वाह करने के लिए उन्मुख रहता है अर्थात प्रवर्तित रहता है ।

व्यवस्था का आधार, मूल्य मूलक, लक्ष्य मूलक विधि है। यह सह-अस्तित्व सहज है । सह-अस्तित्व नित्य प्रभावी है । अस्तित्व ही सह-अस्तित्व है, यही मूल्य मूलक, लक्ष्य मूलक, प्रवर्तन कार्य व्यवहार आचरण व्यवस्था का आधार है । मूल्य, सम्बन्धों के आधार पर हैं। सम्बन्ध, सह-अस्तित्व के आधार पर स्पष्ट हैं । सत्ता में प्रकृति का, संपृक्त, अविभाज्य सामरस्यरत होना, सार्वभौमता व अखंडता का आधार है। साथ ही विकास में निश्चयता है और अस्तित्व की नित्य वर्तमानवश स्थिरता वर्तमान है । इसलिए मानव का अपनी ही जागृति सहज परम्परा के रूप में अखंड समाज, सार्वभौम व्यवस्था को प्रमाणित करना नित्य समीचीन है । मानव सहज **निरीक्षण** यही है । अस्तु, सार्वभौम व्यवस्था में भागीदारी को, सर्वतोमुखी समाधान के रूप में अखंड समाज में भागीदारी को सह-अस्तित्व में मानवीयता पूर्ण आचरण को, वर्तमान में विश्वास को, परिवारगत उत्पादन को आवश्यकता से अधिक उत्पादन करने से समृद्धि को मानव प्रमाणित करता है । यही जागृत मानव का प्रमाण और

वैभव है ।

9. संतोष - 10. श्री

परिभाषा - संतोष :- (1) अभाव का अभाव (2) आवश्यकता से अधिक उत्पादन सहित, विवेक सम्मत विज्ञान, विज्ञान सम्मत विवेक रूपी पूर्ण विचार शैली में परिपक्वता और योजना और कार्ययोजना में प्रमाणित होने के लिए तत्परता । (3) विचार सहज आवश्यकता से अधिक समझ, आचरण के रूप में प्रमाणित करने से अधिक विचार, व्यवस्था में भागीदारी करने से अधिक आचरण, जागृत मानव का तृप्ति सहज स्रोत और इसकी अक्षुणता । (4) संकल्प और चित्रण की पूर्ण सामरस्यता और चिंतन तथा चित्रण की पूर्ण सामरस्यता, सार्थक इच्छाओं के रूप में होना प्रमाणित होता है ।

श्री :- समृद्धि या समृद्धि की निरन्तरता का स्वीकृति ।

संतोष जीवन मूल्यों में से एक सहज प्रामाणिक अभिव्यक्ति है। जीवन मूल्य अपने में सुख, शांति, संतोष, आनंद हैं । जिसमें से **संतोष, चित्त में होने वाली संतुष्टि का नाम हैं ।** चिंतन, जीवन सहज प्रयोजनों को प्रतिपादित व मूल्यांकित करने की क्रिया है । मनुष्य ही प्रकारान्तर से मूल्यांकन करने योग्य इकाई है, यह प्रमाणित होता है। लक्ष्य मूलक प्रणाली में प्रवर्तित रहना ही संतोष सहज अभिव्यक्ति है । ऐसी अभिव्यक्ति में समृद्धि समझ, विचार, लक्ष्य, निर्णय, कार्य, दिशा के विधाओं में होना पाया जाता है । सभी समृद्धियों को पहले स्पष्ट किया जा चुका है, इनका धारक वाहक मानव ही है ।

संतोष, जागृत जीवन में नित्य भाव व सर्वभाव सहज अक्षुण्णता को जानने, मानने, पहचानने, निर्वाह करने के क्रम में प्रयोजन सहित सार्थकता है। जीवन में जानने, मानने के फलस्वरूप अवधारणा का, अनुभव क्रम में, चित्त में साक्षात्कार और चित्रण के रूप में होना सहज है । यही अभाव का अभाव, सर्वतोमुखी सहज

समृद्धि है । इसका तात्पर्य नित्य भाव अथवा सर्वभाव की सहज सुलभता से है । संतोष, प्रत्येक मनुष्य का जीवन सहज अपेक्षा, जीवन सहज कामना व जागृति पूर्वक अभिव्यक्ति है ।

संतोष, मानव सहज नित्य भाव, नियम, नियंत्रण, न्याय, सम्बन्ध, समाधान की अभिव्यक्ति, संप्रेषणा व प्रकाशन है । यह जीवन विद्या (ज्ञान) के आधार पर मनुष्य में स्पष्ट होता है । इसी क्रम में मानव सतत प्रयासशील रहा है। 'श्री' संपन्न होना, प्रत्येक मनुष्य में एक अपेक्षा है । 'श्री' संपन्न होने का तात्पर्य यशस्वी होने से है । यशस्वी होने का तात्पर्य - स्वतंत्रता और स्वराज्य में प्रमाणित होने से है । यश अक्षुणता के रूप में सार्थक होना पाया जाता है । अक्षुणता अपने में समझदारी, सह-अस्तित्व, समाधान, समृद्धि, वर्तमान में विश्वास ही है । इसी को एक वाक्य में कहना बनता है कि सह-अस्तित्व ही नित्य वर्तमान अक्षुण है, होने के लिए मनुष्य को, मानवीयता से जागृत होकर देव मानव पद में होना सहज है । मानवीयता पूर्ण मनुष्य में, यशस्वी होने का प्रवर्तन सहज है । ऐसे प्रवर्तन क्रम में, सम्बन्धों की पहचान, मूल्यों का निर्वाह सहज रूप में सम्पन्न होता है और सम्बन्धों में ही न्याय का प्रमाण, वर्तमान होता है यही यश का आरंभिक स्वरूप है । न्याय की विशालता मानव सम्बन्ध व नैसर्गिक सम्बन्ध के रूप में वर्तमान है । स्वराज्य विधि में नैसर्गिक संतुलन अनिवार्य स्थिति है । जिसमें से नैसर्गिक सम्बन्धों को नियंत्रण व सन्तुलन के अर्थ में नियमों को पहचानना व निर्वाह करना - के रूप में सार्थक होता है । जीवन की यह अभिव्यक्ति, सार्थकता व जागृति का प्रमाण है ।

''जीवन-विद्या ज्ञान'' मनुष्य सहज है अर्थात अस्तित्व में जैसा मानव है, उसका स्पष्ट अध्ययन है । अस्तित्व में मानव एक इकाई के रूप में दृष्टव्य है । मनुष्य, जीवन और शरीर के संयुक्त साकार रूप में है । जीवन, शरीर को संचालित करता है, इसका साक्ष्य सम्पूर्ण शरीर को जीवंत रखने के रूप में है । जीवन्त रहने का साक्ष्य ज्ञानेन्द्रियों के क्रियाकलापों में स्पष्ट होने से है ।

इसी के साथ जीवन का क्रियाकलाप, जानने, मानने, पहचानने व निर्वाह करने के रूप में प्रत्येक व्यक्ति में प्रमाणित है । इन्हीं चारों क्रियाओं का संयुक्त नाम जीवन संचेतना है । **संचेतना का तात्पर्य है - पूर्णता के अर्थ में, जानना, मानना, पहचानना व निर्वाह करना ।**

इसलिए सर्वतोमुखी समाधान क्रम में मानवीयता पूर्ण संस्कृति सभ्यता उदितोदित होता है । उदितोदित होने का तात्पर्य हर परिस्थितियों में मानवीय संस्कृति सभ्यता के प्रमाणित होने से हैं । फलस्वरूप सुख, सुंदर, समाधान, समृद्धि अभय सह-अस्तित्व पूर्वक जीना प्रमाणित होता ही रहता है । फलतः प्रमाण सहज सुख अक्षुण हो जाता है । यह अक्षुणता हर मानव में स्वागतीय रहता है । इसी विधि से जागृत परम्परा की अक्षुणता मानव कुल में वैभवित होना स्वाभाविक है ।

मानव परंपरा में संतोष, सर्वतोमुखी समाधान और उसकी निरंतरता अभिव्यक्ति है । यही सभी विधाओं में समृद्धि, उसकी अभिव्यक्ति तथा यशस्वी होने का स्रोत है । यह जीवन जागृति पूर्वक सार्थक होता है । यह जीवन में यशस्वी, समाधानित और प्रामाणिक होने की अभीप्सा सतत सार्थक होते रहते है। मानव प्रयास विविध प्रकार से यशस्वी होने के क्रम सार्थक होना पाया जाता है यह जागृति का ही वैभव है । सर्वतोमुखी समाधान को अभ्युदय के रूप में मानव मानस सदा सदा जागृति मूलक विधि से हर क्रियाकलाप में सार्थक होना पाया जाता है । सर्वतोमुखी समाधान सुख के रूप में नित्य सुलभ रहता ही है । प्रयास के लिए समझदारी ही स्वंय सूत्र है ।

यह अस्तित्व में, मानव केन्द्रित चिंतन पूर्वक सफल हो पाता है । प्रत्येक मनुष्य में जीवंतता (अर्थात जीवन) वर्तमान है । इन्हीं के अध्ययन क्रम में जीवनगत संतुष्टि बिंदु, स्वतंत्रता और स्वराज्य है । स्वराज्य व्यवस्था में सर्वतोमुखी समाधान सहज है और स्वतंत्रता में प्रामाणिकता की अभिव्यक्ति सहज है । इस प्रकार परिवार मानव के

सामाजिक होने, स्वयं एक व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदार होने के क्रम में सर्वतोमुखी समाधान समीचीन है ।

व्यवस्था व व्यवस्था में भागीदारी, मानव परम्परा की सार्वभौमता है और उसकी निरंतरता का नित्य स्रोत है । यह जागृत जीवन सहज अभिव्यक्ति है । प्रत्येक मनुष्य में जीवन, अक्षय बल व शक्ति सम्पन्नता के रूप में विद्यमान है । इसका अभिव्यक्ति क्रम, संप्रेषणा क्रम क्रमशः अनुभव बल, विचार शैली व जीने की कला के रूप में प्रमाणित होना ही मानव परम्परा की सफलता व उसकी निरंतरता है । यही जागृति का प्रमाण है । ऐसी मानव परम्परा में ही, संतोष और 'श्री' के लोकव्यापीकरण होने की संभावना समीचीन है ।

मानव के लिए सहज रूप में संतुष्टि कल्पनाशीलता व कर्म स्वतंत्रता की तृप्ति के रूप में होती है । अस्तु, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था व व्यवस्था में भागीदारी 'संतोष' का प्रमाण है और परिवार, ग्राम परिवार व विश्व परिवार, अखंड समाज में भागीदारी यशस्वी होने का सहज मार्ग है । यश श्री के रूप में जीवन संतुष्टि ही संतोष के रूप में, वैभवित होता है ।

11. प्रेम - 12. अनन्यता

परिभाषा - प्रेम :- पूर्णानुभूति । दया, कृपा, करूणा की संयुक्त अभिव्यक्ति । पूर्णता में रति व उसकी निरंतरता ।

अनन्यता :- मनुष्य की परस्परता व नैसर्गिकता में पूरक क्रियाकलाप । प्रमाणिकता व समाधान में निरंतरता । अविकसित के विकास में सहायक क्रिया । जागृति पूर्ण पहचान ।

प्रेम ही जीवन में पूर्ण मूल्य है । अनन्यता ही प्रधान शिष्टता है, जो प्रेम को अभिव्यंजित करने में समर्थ है । प्रेममयता ही विवेक सम्पन्न एवं अभयता का अनुभव है । यह संबोधन क्रम से स्थापित सम्बंधों को ज्ञान कराता है । प्रत्येक सम्बंध में, स्थापित मूल्य प्रसिद्ध है । प्रत्येक सम्बंधों की चरितार्थता केवल वर्तमान में

विश्वास एवं सम्पूर्ण सम्बंधों की पहचान मूल्यों का निर्वाह ही है - जो जीवन का लक्ष्य और कार्यक्रम है । प्रत्येक चैतन्य इकाई जीवन पद में है, जीवन जागृति पूर्वक प्रेम और अनन्यता की दया, कृपा, करुणा के संयुक्त रूप में प्रमाणित करता है ।

प्रेमानुभूति स्वयं स्वतंत्रता स्वानुशासन के रूप में प्रमाणित होता है । अस्तित्व में अनुभूति पूर्वक ही प्रेमानुभुति और अभिभूति प्रमाणित होता है । स्वतंत्रता जीवन का लक्ष्य है । अभिभूति ही नियम नियंत्रण, संतुलन न्याय, धर्म सत्य सहज विधि से पूरक होने का प्रमाण है । पूरक होने का प्रमाण मानव सम्बंधों के नैसर्गिक सम्बंधों में सार्थक होना पाया जाता है । मानव सहज मानव संचेतना का प्रमाण सहजता के आधार पर स्वानुशासन सहज ही सार्थक होना पाया जाता है । **प्रेमानुभूति का प्रधान लक्षण अनन्यता है।** प्रत्येक मनुष्य, अपने से विकसित के साथ अनन्यता को स्थापित करता है । यह जागृति परम्परा की महिमा है ।

विकसित इकाई द्वारा अविकसित के साथ वात्सल्यादि मूल्यानुभूति सहित, शिष्ट मूल्यों की अभिव्यक्ति ही उसका स्वभाव है। श्रद्धा एवं विश्वास में अनुभूति, प्रेमानुभूति योग्य क्षमता को प्रदान करती है । मानवीयतापूर्ण जीवन में प्रत्येक जागृत मनुष्य में, से, के लिए विश्वास का अनुभव करने योग्य क्षमता प्रमाणित होती है । मानवीयता पूर्ण जीवन में सर्वप्रथम अनुभव में आने वाला स्थापित मूल्य विश्वास ही है । **द्वितीय मूल्य श्रद्धा है ।** इन दोनों का योगफल ही क्रम से, प्रेमानुभूति पर्यन्त क्षमता का निर्माण करता है । यही गुणात्मक विकास है । **स्थापित मूल्यानुभूति क्रम में ही प्रेमानुभूति है, यह क्रम से ममता, स्नेह, विश्वास, कृतज्ञता, वात्सल्य, सम्मान, गौरव, श्रद्धा एवं प्रेम है ।** सामाजिकता में परिपूर्णता ही प्रेमानुभूति योग्य क्षमता है। स्वतंत्रता पूर्वक, सामाजिकता का आचरण ही सामाजिकता की परिपक्वता है । **स्वतंत्रता ही प्रेमानुभूति का प्रधान लक्षण है ।** प्रेमानुभूति में सहजता और प्रमाणिकता वर्तमान रहता है । अन्य सभी स्थापित मूल्य, प्रेमानुभूति में, से, के लिए सोपान है । व्यवसाय मूल्य एवं शिष्ट मूल्य, स्थापित

मूल्य में समर्पित होने के लिए बाध्य हैं । अनुभव का तात्पर्य क्रम पूर्वक प्राप्तोत्पत्ति ही है । मनुष्य में क्रमानुभूति केवल मूल्य-त्रय (स्थापित शिष्ट, व्यवसाय एवं कला मूल्य) ही है । व्यवसाय मूल्य से शिष्ट मूल्य वरीय है । शिष्ट मूल्य से स्थापित मूल्य अति वरीय है। स्थापित मूल्य में, से, प्रेम पूर्ण मूल्य है । इसी सत्यता से स्पष्ट परिज्ञान होता है कि प्रेमानुभूति के अनंतर ही वास्तविकताएं स्पष्ट होती हैं । प्रकृति सहज विधि से वास्तविकताएं होती हैं । **प्रेममयता की अनुभूति ही परम उपलब्धि है, परम आनंद है और कुछ पाना शेष न हो, यही प्रेमानुभूति है । प्रेमानुभूति की निरंतरता होती है ।**

गुणात्मक परिवर्तन के संदर्भ में, से, के लिए ही दायित्व एवं कर्तव्य प्रमाणित होते हैं । अनुभव क्षमता से सम्पन्न होने पर्यन्त दायित्व एवं कर्तव्यबोध का मूल्यांकन होता है । उसके अनंतर वह स्वभावगत होता है । अमानवीयता से मानवीयता में अनुगमन करने के लिए नियंत्रण पूर्वक, दायित्व एवं कर्तव्य प्रमाणित होता है । मानवीयता से अतिमानवीयता में अनुगमन करने के लिए छः प्रकार के स्वभाव से कर्तव्य एवं दायित्व को प्रमाणित करते हैं । **धीरता से परिपूर्ण होना ही, वीरता का होना है । वीरता से परिपूर्ण होना ही उदारता का होना है । उदारता से परिपूर्ण होना ही दया का होना है । दया से परिपूर्ण होना ही कृपा का होना है तथा कृपा से परिपूर्ण होना ही करुणा का होना प्रमाणित है । दया, कृपा, करुणा की संयुक्त अभिव्यक्ति ही प्रेम है ।**

व्यक्तित्व और प्रतिभा की चरमोत्कर्षता में ही प्रेम अनुभूति होती है । प्रेम अतिव्याप्ति, अनाव्याप्ति एवं अव्याप्ति के दोष से मुक्त है। प्रेमानुभूति यथार्थता, वास्तविकता सत्यता सहज प्रमाण है । प्रेमानुभूति में तन्मयता एवं अनन्यता स्वाभाविक अभिव्यक्ति है । अनन्यता ही अखंड सामाजिकता का धारक-वाहकता और प्रेरकता है। सामाजिकता की वास्तविकता ही अखंडता है । प्रेमानुभूतिमयता में ही जीवन-चरितार्थता एवं अभयता सिद्ध होती है ।

मनुष्य ही प्रेमी एवं प्रेमास्पद होने के अर्ह (योग्य) है । मनुष्य

ही प्रेम और जागृति ही प्रेमास्पद है । मनुष्य ही मनुष्य के लिए प्रेमानुभूति का सुलभ सहज परस्परता है । प्रेम अनुभूति योग्य क्षमता में, सामाजिकता का प्रकट होना स्वाभाविक है। प्रेम सहज स्वभाव ही मानव सहज मौलिकता है । सामाजिकता मानव का वांछित वैभव है । प्रेमानुभूति सहज विधि से अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था अक्षुण रूप में मानव कुल में वैभवित होता ही है । प्रेमानुभूति पूर्ण मनुष्य की स्वतंत्रता पूर्वक सामाजिकता की अभिव्यक्ति ही समाज के लिए उसकी उपादेयता है । प्रेमानुभूतिमयता की अभिव्यक्ति शिष्टता में अर्थात आचरण में इंगित होती है । इंगित होना ही व्यंजना है । व्यंजना ही क्रम से भास, आभास, प्रतीति, अवधारणा एवं अनुभूति है । प्रेमानुभूति हर मनुष्य में प्रकट होता ही है ।

अनुभव सहज प्रकटन मानव परस्परता में पूर्ण विश्वास का स्रोत प्रभाव और प्रक्रिया है । प्रेमानुभूतिपूर्वक हर मानव अपने ही स्वयं स्फूर्त विधि से भाव भंगिमा, मुद्रा, अंगहार कार्य-व्यवहार और निश्चय तथा निरंतरता सहित प्रकट व्यक्त सार्थक होना पाया जाता है। प्रेम और अनन्यता सहज रूप में ही जागृति पूर्ण व्यक्ति में अर्थात् दया, कृपा, करुणा को हर आयाम, कोण, दिशा, परिप्रेक्ष्यों में सार्थक रूप में संप्रेषणापूर्वक प्रकाशित, व्यवहारित होता हुआ हर जागृत मानव सर्वाधिक उपकारी होना पाया जाता है क्योंकि वह स्वयं ही दया, कृपा, करुणा का संयुक्त स्रोत है और प्रेमानुभूति संपन्न रहता ही है । साथ ही स्वायत्त, स्वतंत्र, समृद्ध, समाधानित रहते हुए ही दया, कृपा, करुणा का प्रयोजन नियोजन प्रमाणित होना देखा गया है । अतएव दया, कृपा, करुणा का धारक, वाहक प्रेमी पद में प्रतिष्ठा पाना स्वाभाविक है । हर प्रेमास्पद उपकारों को ग्रहण करने वाले व्यक्ति के रूप में ही और समान अर्थात पूर्ण जागृत व्यक्ति परस्परता में समानता के अर्थ में होते है यह भी प्रेमास्पद होते है । हर मानव प्रेमास्पद योग्य रहने का नजरिया हर प्रेमी के मन में होता ही है । इतना ही नही नैसर्गिकता सहित प्राकृतिक संतुलन के लिए भी हर अस्तित्व प्रेमी, विकास प्रेमी, जागृत प्रेमी, जागृति सहज प्रेमी अपने जीवन शक्तियों को नियोजित करता ही है । अतएव

मानव प्रेम पूर्वक सर्वाधिक उपयोगी, सदुपयोगी प्रयोजनकारी हो जाता है । यही नित्य उत्सव का आधार है । यही अनन्यता की गरिमा है । अनन्यता कार्य-व्यवहार रूप में में दृश्य होते हुए दया, कृपा, करुणा के सहज सूत्रों को प्रेममयता को व्यंजित कराती है । व्यंजना का तात्पर्य समझने समझाने से है । जैसे-अनुभव समझ में आता है इसलिए समझाने योग्य होता है । इसी आधार पर प्रमाण एवं परम्परा है । प्रेममयता ही जागृत मनुष्य में अनन्यता सहित प्रत्यक्ष रहता है । ऐसी प्रेममयता के लिए मूलतः समझदारी, ईमानदारी और जिम्मेंदारी पूर्वक प्रमाणित होना पाया जाता है । इसे स्वयं में निरीक्षण परीक्षण करना ही नित्य निरंतर सार्थक अभ्यास है । जो पूर्णतः सामाजिक एवं व्यावहारिक है ।

सामाजिकता एवं व्यावहारिकता में ही मानव की यथार्थता एवं वास्तविकता स्पष्ट होती है इसलिए प्रेम ही सुख, शांति, संतोष, आनंद का नित्य स्वरूप है । अस्तु, यही स्वर्ग है यही मुक्ति है । स्वर्गीयता का प्रत्यक्ष रूप ही अनन्यता है । परस्पर जागृत मनुष्य में अनन्यता ही अखंडता है । मानव में अखंडता नैसर्गिकता संतुलन सहित स्वर्ग है । प्रेमानुभूति में ही, सर्वोच्च प्रकार की सामाजिकता प्रकट होती है । सामाजिकता में ही, स्वर्गानुभूति होती है । सामाजिकता, स्थापित मूल्यानुभूति एवं उसकी निरंतरता ही स्वर्ग, समाधान एवं सफलता है ।

प्रेममयता की अनुभूति जीवन में जागृति पूर्णता है । यही पूर्ण प्रयोजन का प्रमाण है । आचरण पूर्णता ही जीवन का गंतव्य है। संज्ञानशीलता का यही लक्ष्य है । प्रेमानुभूति में ही अभाव और भाव की विषमताओं का तिरोभाव होता है।

व्यवहार आनुषांगिक ही स्थापित मूल्यों का अनुभव होना प्रसिद्ध है। अनुभव मूलक अभिव्यक्ति परम है इसी की अक्षुणता होती है । सम्पूर्ण मूल्यों को स्पष्ट किया जा चुका है । स्थापित मूल्यानुभूति क्षमता में प्रेमानुभूति होना, स्वाभाविक है । ऐसी क्षमता का सर्वसुलभ होना ही लोकमंगल है ।

सर्वमंगलमयता प्रेमानुभूति उसका प्रमाणीकरण प्रवृत्ति में ही है । बौद्धिक समाधान, भौतिक अभय, सह-अस्तित्व प्रमाण समृद्धि, ही सर्व मंगलमयता का प्रत्यक्ष रूप है । प्रेमानुभूति में तन, मन, धन का सुदपयोग, सुरक्षा होती ही है । मानव संचेतना सहज कार्य प्रणाली में ही अर्थ का सदुपयोग सुरक्षा, चरित्र, मूल्य सार्थक होना देखा गया है । मानवीयता अपने संक्रमित पद में है यही जागृति पद का साक्षी है, जागृति पद में ही मानवीयता पूर्ण आचरण प्रमाणित होता है । मानवीयता सहज परमता में ही प्रेमानुभूति पाया गया है । मानव संचेतना पूर्ण व्यवहाराभ्यास सहज परिपूर्णता में ही प्रेमानुभूति है । प्रेमानुभूति सहित सम्पूर्ण कार्य व्यवहार में सत्य सहज संप्रेषणा मानव परम्परा में प्रमाणित होता है । प्रेमानुभूति व्यवहारिक एवं सामाजिक, व्यवस्थात्मक, प्रामाणिक, अक्षुण वैभव है। प्रेमानुभूति योग्य क्षमता-सम्पन्न होने के लिए (शुचिता एवं गुणात्मक परिवर्तन में अनुशीलन, अनिवार्य साधना है। सम्यकता की ओर गतिशीलता अर्थात गुणात्मक परिवर्तन हेतु) आचरण, व्यवहार एवं उत्पादन, उपकार, उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता उसकी निरंतरता ही उत्सव है । शारीरिक-स्वस्थता एवं शिष्टता का योगफल ही **शुचिता** है । प्रमाण परम्परा में अनुगमन ही **अनुशीलन** है । प्रमाण-त्रय पूर्वक जीवन **तृप्ति** है । **प्रमाण ही परम्परा है।**

मनुष्य के चारों आयामों की पूर्ण जागृति ही, प्रेमानुभूति योग्य क्षमता का सर्वसुलभ होना है । यही ऐतिहासिक उपलब्धि मानव में प्रतीक्षित है । यही मानव सहज इतिहास और गति है । **ऐसी क्षमता से सम्पन्न व्यक्तियों के निर्माण योग्य कार्यक्रम ही अभ्युदय है ।** वह धार्मिक, आर्थिक, एवं राजनैतिक कार्यक्रम ही है। ऐसे अविभाज्य कार्यक्रम में निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य सहित मानव जीवन-दर्शन सहज शिक्षा, जो सह-अस्तित्व विधि से प्रमाणित होता है यही पाण्डित्य है । इसका लोकव्यापीकरण होना ही मानवता सहज प्रमाण है । यही अभ्युदय है । अभ्युदय सहज प्रमाण ही प्रेमानुभूति है। यह सर्व मंगल कार्यक्रम है ।

प्रेमानुभूति योग्य जन-मानस का निर्माण करने के लिए मानवीय

शिक्षा संरकार की भूमिका अति महत्वपूर्ण है । शिक्षा ही जीवन विश्लेषण पूर्वक, यथार्थताओं वास्तविकताओं पर आधारित, जीवन के कार्यक्रम को स्पष्ट करती है । यही प्रत्येक मनुष्य में पाई जाने वाली कामना एवं उसकी आवश्यकता है। यही शिक्षा का दायित्व है। शिक्षा ही जीवन में गुणात्मक परिवर्तन का स्रोत है चरितार्थ होने का आधार है । अंततोगत्वा यही अनुभव के लिए प्रेरणा है । वरिष्ठ अनुभूति, प्रेमानुभूति ही है । यही पूर्णतया सामाजिक एवं व्यवहारिक है ।

जागृति पूर्णता से सम्पन्न जीवन की आकांक्षा मानव में प्रसिद्ध है अथवा प्रसिद्ध होने योग्य है । उसके योग्य वातावरण निर्माण करना ही सामाजिक कार्यक्रम है । यही सर्वमंगल कार्यक्रम है । यही समाधान, विश्राम एवं स्वर्ग है । सम्पूर्ण प्रकार के संयम, प्रमाण, और प्रमाणिकता का संप्रेषण और अभिव्यक्ति है । यही अखंडता सार्वभौमता, अक्षुणता सहज स्रोत और गति है यही जागृति परम्परा है । प्रेमानुभूति की चरितार्थता है । मानवीय शिक्षा संस्कार, समझदारी, सार्वभौम व्यवस्था, अखण्ड समाज, संस्कृति सभ्यता, विधि, मूल्यांकन, निरीक्षण, परीक्षण, संप्रेषणा, प्रकाशन, संगीत, स्वर, लय, श्रुति, उत्सव, मानव सम्बंध और नैसर्गिक सम्बंधों में जीने की कला, स्थिति, गति समुच्चय प्रेमानुभूति सहज है । समझदारी सहित जागृत मानव सहज किया गया प्रत्येक क्रिया प्रक्रिया एवं कार्यक्रम के फलन में मानव लक्ष्य, जीवन लक्ष्य सार्थक होता है ।

प्रेमानुभूति लोकव्यापीकरण होने के अर्थ में सम्पूर्ण कार्यक्रम सम्पन्न होना ही मानव कुल में उसकी जागृति सहज चरितार्थता है । जागृत मानव कुल में चरितार्थता, सफलता एवं उज्जवलता सहज समाधान, समृद्धि अभयता एवं सह-अस्तित्व ही है । सदुपयोग सुरक्षा के अर्थ में सुविधाओं की तारतम्यता उसकी व्यवहारिकता सार्थकता को प्रमाणित कर देता है । स्थापित मूल्य सहित सम्पूर्ण मूल्यों का मूल्यांकन योग्य कार्यक्रम, मानवीयता सहज विधि से चरितार्थ होता है, सार्थक होता है । यही जागृति का प्रमाण है । ऐसी जागृत परम्परा को स्थापित, प्रस्थापित, गतित, सार्थक करना ही सम्पूर्ण

शिक्षा, शिक्षण, राष्ट्र, राज्य, समाज, समाज सेवी, धर्म, कर्म, प्रायश्चित उद्धारकारी, प्रौद्योगिकी और व्यापार संस्थाओं तथा व्यक्तियों का सहज कर्तव्य है । ऐसे कर्तव्य को पहचानने के लिए ऐसी सभी संस्थाओं और सभी व्यक्तियों को जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण सहज समझदारी में पारंगत होना अपरिहार्य स्थिति है । ऐसे सार्वभौम समझदारी को 'हम' पा चुके है । 'हम' का तात्पर्य हम जितने नर-नारी जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण में पारंगत हो चुके है, से है । हमारी प्रतिज्ञा ही है कि समझदारी को लोकव्यापीकरण करना । यही प्रेममय अभिव्यक्ति का साक्षी भी है । अस्तु, मानव कुल प्रेम और अनन्यता सहज विधि से कार्य, व्यवहार विन्यास, सर्वमानव सुलभ हो, ऐसी कामना है । इसे सार्थक बनाने का कार्यक्रम है ।

॥ नित्यम् यातु शुभोदयम् ॥

13. वात्सल्य - 14. सहजता

परिभाषा - वात्सल्य :- (1) अभ्युदय के अर्थ में पोषण, संरक्षण, की निरंतरता।

सहजता :- (1)स्पष्टता एवं प्रामाणिकता । (2) व्यवहार, रीति, विचार एवं अनुभव की एकसूत्रता।

वत्स (पुत्र-पुत्री) रूपी सम्बन्ध बोध के साथ ही वात्सल्य रूपी मूल्य का प्रकाशन होता है । यह वात्सल्य संतान व संतानवत् सम्बंधों का बोध सहित प्रत्येक परिवार मानव में देखने को मिलता है। सन्तान का रूप बोध होना, लोक व्यापीकृत है । सन्तान का अर्थ बोध होना अपरिहार्य है । परिवार मानव को सन्तान में, पारिवारिक अर्थ बोध होना सहज है ।

वात्सल्य सम्बंध बड़े बुजुर्गों के साथ माता-पिता के साथ गुरू-आचार्यवत् व्यक्तियों के साथ वात्सल्य सम्बंध स्वीकृत होना पाया जाता है । संतानवत स्वीकारने का महत्वपूर्ण तथ्य इतना ही है कि तन, मन, धन का ऐसे वात्सल्य सम्बंध को निर्वाह करता हुआ

व्यक्ति, नियोजित करता हुआ देखने को मिलता है । जैसे कोई भी सामान्य सज्जन परिवार में संतान होता है । उनके लिये उस सम्बंध के साथ उपलब्ध तन, मन रूपी अर्थ का नियोजन करते है । मूलतः मानव अपेक्षा हर सम्बंधों की अक्षुणता के अर्थ में आरंभ होता है ।

मानव जब जागृत परम्परा में होता है तब सम्पूर्ण सम्बंध और उसमें निहित मूल्यों की अक्षुणता बनी ही रहती है । फलतः परिवार में अक्षुणता, समाज में अक्षुणता, का प्रमाण बना ही रहता है । इससे यह पता चलता है कि जीवन जागृति पूर्वक हम मानव सम्बंध और मूल्यों की अक्षुणता को बनाये रख पाते है । सम्बंध और मूल्य कभी भी समाप्त नहीं होता है यह भी तथ्य सामान्य लोगों को पता है । मूल्य यथावत बना ही रहता है सम्बंध भी बना ही रहता है, निर्वाह होता ही है ।

सम्पूर्ण सम्बंध मानव की जिज्ञासा के अनुसार सम्बंधों का संबोधन प्रचालित है । इन सभी सम्बंधों में शुभेच्छा ही सर्वाधिक लोगों में आकलित होता है । मानव सहज प्रयोजनों के अर्थ में सम्बंधों की दृढ़ता में निरंतरता रहता ही है । ऐसी दृढ़ता के आधार पर ही जागृति पूर्वक निष्ठा सहज स्वीकार होना पाया जाता है । सम्पूर्ण निष्ठा में मानव अपने दायित्व कर्तव्यों को स्वीकारने की स्थिरता होना पाया जाता है फलस्वरूप व्यवस्था और व्यस्था में भागीदारी सहज हो जाता है । वात्सल्य सहज सम्बंधों का निर्वाह प्रमाणिकता के आधार पर ही सफल होना पाया गया है । हर बड़े बुजुर्ग, आचार्य, गुरू, मित्र, परिवार, समाज व्यवस्था सम्बंधों के साथ अपेक्षाएं श्रेष्ठता के अर्थ में ही बना रहता है। इसी प्रकार बड़े बुजुर्ग, आचार्य अभिभावक भी वात्सल्य प्रेरित मानव संतान को भावी श्रेष्ठ स्वरूप के अर्थ में ही अपेक्षा बनाये रखते है । ये उभयपक्षी अपेक्षाएं सार्थक होने का जहाँ तक प्रमाण बिंदु है वहाँ तक पहुँचने में बड़े बुजुर्ग, आचार्य अभिभावकों का ही दायित्व प्रधान रहता है । इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर आते है कि परम्परा ही आगे पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक है । लक्ष्योन्मुखी प्रवृत्ति के लिए दायित्व पीछे पीढ़ी के साथ जुड़ा रहता है । अतएव परम्परा जागृति होने के बाद ही परम्परा अपने

सभी आयामों में जागृत होने के उपरांत ही भविष्य की पीढ़ियां जागृत होना और प्रमाणित होना पाया जाता है ।

अब, मनुष्य के वात्सल्य और सहजता को लोकव्यापीकरण प्रणाली में संबद्ध करने के लिए मानवीयता-मानवीय आचरण, व्यवहार व व्यवस्था को निरंतर बनाये रखना है यह जागृत परम्परा में स्वभाविक रूप में निर्वाह होना पाया जाता है । इस क्रम में वात्सल्य निरंतर सफल रहता है । साथ ही सभी मूल्य सार्थक होते है । मानवीयता पूर्ण मानव परम्परा में, स्थापित मूल्यों में से एक वात्सल्य है । जो सम्बन्ध को पहचानने के फलस्वरूप होने वाला वैभव है । इसका आचरण में सहज होना पाया जाता है । हर मूल्य का अनुभव मुद्रा, भंगिमा, भाव, अंगहार सहित सम्बंधों में व्यक्त होना पाया जाता है । वात्सल्य के साथ जैसे भाषा को पीछे रखकर भाव प्रभावित हो जाता है, फलतः बाल्य भाषा में ही अभिभावक माता पिता बात करने लग जाते हैं । यह भाव वस्तु है । हर संबोधन संभाषण में शिशु की मुद्रा भंगिमा अंगहार की व्याख्या भी होती रहती है । इसे तोतली भाषा भी कहते हैं । यह बारम्बार देखने को मिलता है। विश्वास, वात्सल्य के साथ वर्तमान रहता ही है । इसे अर्थात वात्सल्य सम्बंध के साथ परम सरलता वर्तते हुए विश्वास का होना पाया जाता है । प्रत्येक जागृत मनुष्य अपने को ऐसी स्थिति में निरीक्षण परीक्षण कर सकता है ।

हर अभिभावक, माता-पिता के, सर्वेक्षण करने पर यह पता चलता है कि वात्सल्य से ओतप्रोत रहने तक परम सरलता की स्थिति मनुष्य की रहती है। सरलता का तात्पर्य यही है कि जागृति पूर्वक सम्बंधों को पहचानने के क्रम में मुद्रा, भंगिमा, अंगहार भाषा भाव सहित अर्थ की सदुपयोग सुरक्षा से करते हुए प्रस्तुत होने से है। हर संतान के साथ अर्थ का सदुपयोग करना संतान को सुविधाजनक विधि से पालन पोषण संरक्षण करता हुआ अभिभावक को देखा जाता है । हर अभिभावक जागृति के अनंतर संतान जागृति के लिए उपक्रमों को बनाये रखना सहज है । संतान शिष्य में जागृति ही प्रधान लक्ष्य बना रहता है । क्योंकि स्वयं जागृत मानव परम्परा में

गुरू और अभिभावक जागृत पद में होना पाया जाता है यह एक स्वभाविक समीचीन स्थिति है । परम्परा बहुआयामी विधि से प्रभावित रहता ही है । हर अभिभावक, गुरू, आचार्य, संतान और विद्यार्थियों के प्रति जागृति सहज लक्ष्य दिशा प्रयोजनों को प्रमाणित करने के क्रम में ये स्वयं प्रमाणित रहना आवश्यकता बना ही रहता है । गुरू, आचार्य प्रमाणिकता के आधार पर शिष्य शिक्षा ग्रहण करने लिए सहज रूप में ही सुलभ हो जाता है और सार्थक होता है ।

वात्सल्यता अपने आप में भावी पीढ़ी में जागृति को सार्थक बनाने में निश्चयन के साथ उत्सवित रहने का उद्गार ही वात्सल्य कहलाता है । हर सम्बंधों के साथ उत्सव के साथ ही उद्गार होना देखा गया है । ऐसे उद्गार स्वयं भाषा के रूप में शब्द के रूप में स्वयं स्फूर्त होना पाया जाता है। हर मानव भाषा भाव भंगिमा, अंगहार समेत ही प्रस्तुत होता है इससे पता लगता है कि मानव परम्परा में भाषा भावों का संप्रेषित करने का एक सहज स्रोत है । भाव ही मौलिकता और मूल्य है । प्रमाणों में जितने भी तथ्य आये रहते है उसका भाषा तो बना ही रहता है जो आये नहीं रहते है उसके सम्बंध में पहले से भी भाषा बना ही रहता है यही मानव परम्परा का अत्यंत चमत्कारी अथवा अग्रिम गतिकारी अभिव्यक्ति है। सर्वाधिक विद्याओं में अनुसंधान न होने के पहले से ही अनुसंधान होने वाले वस्तु का नामकरण परम्परा में होना पाया जाता है जैसे अस्तित्व, सह-अस्तित्व, सत्य, धर्म, न्याय, समाधान, नियम ये सब शब्द हर भाषा में प्रकारान्तर से परंपराओं में प्रचलित है ही ।

क्योंकि सह-अस्तित्व को परम सत्य के रूप में समझना सम्बंध मूल्य मूल्यांकन उभय तृप्ति संतुलन को न्याय के रूप में, व्यवस्था में भागीदारी को समाधान के रूप में सह-अस्तित्व, जीवन और मानवीयता पूर्ण आचरण को समझदारी के मूल तत्व के रूप में, मानव जाति को अखंड समाज के अर्थ में, मानवीयता पूर्ण व्यवस्था को सार्वभौम व्यवस्था के रूप, मानवीयता पूर्ण शिक्षा संस्कार को संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था के रूप में, मानव लक्ष्य को समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व के रूप में, मानव सहज लक्ष्य पूर्ति के लिए दिशा को

व्यवस्था और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में समझा गया है। इसे समझाने की व्यवस्था भी प्राप्त कर ली है । इसलिए अब हमें यह भरोसा है कि मानव संतान में, से, के लिए मानव परम्परा को जागृति पूर्वक लक्ष्य और दिशा के रूप में पहचानना संभव हो गया है । इन्हीं आधारों पर अथवा प्रामाणिक आधारों पर यह मनोविज्ञान अध्ययन के लिए प्रस्तुत हुआ है ।

जागृत मानव परम्परा सहज विधि से हर संतान जागृति की ओर उन्मुख होने के लिए अभिभावकों में पर्याप्त उपक्रम बना ही रहेगा और गुरू आचार्य जागृति का प्रमाण के रूप में स्वाभाविक रहता ही है इसलिए हर संतान जागृत होने का लक्ष्य और दिशा सुस्पष्ट होना स्वाभाविक है । यही जागृति परम्परा का देन है । इसकी निरंतरता के लिए मानव परम्परा का, मानवीयता पूर्ण पद्धति व प्रणालीबद्ध होना अनिवार्य है । स्थापित व शिष्ट मूल्यों को आचरण में पाने के लिए, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को अपनाना आवश्यक है । प्रत्येक जागृत मानव, परिवार मानव है । जागृत परिवार में ही वात्सल्य वर्तमान एवं अक्षुण है । इसलिए जागृत मानव, जागृत मानव परिवार, अंखड समाज और सार्वभौम व्यवस्था को पहचानने की आवश्यकता है । क्योंकि मूल्यों की निर्वाह और अभिव्यक्ति क्रम में ही मानव का उत्सवित होना पाया जाता है । उत्सव मनुष्य की अपेक्षा है।

अस्तु, परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था संपन्न, मानव परम्परा में ही, वात्सल्यादि सभी मूल्य सम्बंध सहज ही होना पाया जाता है। क्योंकि परिवार और विश्व परिवार सभी व्यवस्था पूर्वक नैसर्गिक और मानव सम्बंधों और मूल्यों का निर्वाह होना जागृत परम्परा की सहज गति है । इसकी आवश्यकता, अनिवार्यता, उपलब्धता निरंतर पूरक विधि से प्रभावशील रहता ही है । यही नियति है । नियति सहज क्रिया-प्रणाली पद्धति लक्ष्य और दिशा, प्रयोजन और सार्थकता सहज यर्थाथता, वास्ताविकता, सत्यता में जागृत रहने और जागृत करने के क्रम में ही मानव सहज जागृति वात्सल्य और सहजता सार्थक होना पाया जाता है ।

15. श्रद्धा - 16. पूज्यता

परिभाषा - श्रद्धा :- (1) श्रेय की ओर गतिशीलता अर्थात आचरण पूर्णता की ओर गुणात्मक परिवर्तन । (2) जागृति और प्रमाणिकता की ओर गति व उसकी निरंतरता ।

पूज्यता :- गुणात्मक विकास और जागृति के लिए सक्रियता।

जीवन वैभव क्रम में अथवा जागृति क्रम में जो प्रेरणा, प्रमाण, कर्माभ्यास, व्यवहारभ्यास व चिंतनाभ्यास है, उसके लिए प्राप्त सूत्र, व्याख्या, प्रेरणा, लक्ष्य और दिशा निर्देशन एवं स्वीकृतियां जीवन सहज है । इन सबका प्रयोग जीवन जागृति के लिए ही है । ऐसी प्रेरणा एवं निर्देशों को पाने के पहले से ही जीवन जागृति अथवा मोक्ष के प्रति तीव्र जिज्ञासा का होना देखा जाता है मोक्ष का तात्पर्य भ्रम मुक्ति से है। भ्रम मुक्ति जागृति से ही है। जागृत परम्परा में हर मानव को जागृति पूर्वक भ्रममुक्ति सहज है । नियति क्रम में भ्रम मुक्ति अथवा जीवन जागृति निश्चित है । जीवन ही जागृति पर्यन्त जिज्ञासु रहना जागृति सहज आवश्यकता को महसूस करता पाया जाता है । जीवन जागृति और प्रामाणिकता के योगफल में श्रेय पद है क्योंकि इसी पद में सम्पूर्ण समझदारी चरितार्थ रूप में प्रमाणित रहता है । समझदारी की चरितार्थता अर्थात् व्यवहार रूप अभ्यदुय है । इसका विस्तार रूप सार्वभौम व्यवस्था अखंड समाज ही है । अतएव हर मानव जीवन जागृति पूर्वक ही श्रेय पद में अभ्युदय पूर्वक प्रमाणित होगा । फलस्वरूप पूज्यता के अर्ह (योग्य) होना स्वाभाविक है । पूज्यता का व्यवहार रूप अभ्युदय पूर्वक श्रेय पद प्रतिष्ठा को पाता है । अभ्युदय प्रतिष्ठा ही पूजा योग्य पद है । पूजा का लक्ष्य भी अग्रिम पद और प्रमाण प्रतिष्ठा है । श्रेय पद ही सम्पूर्ण मानव के लिये परम पद है । मुक्ति पद है । निरंतर अभ्युदय अर्थात समाधानकारी अभिव्यक्ति संप्रेषणा कार्य व्यवहार प्रमाणित होता ही रहता है । ऐसी सार्थकता वश पूज्यता कृतज्ञता सहित जीवन जागृति पद में प्रतिष्ठित होने के लिए ही समझदार जागृत और प्रमाणित मानव के सान्निध्य में स्वाभाविक रूप में पूज्यता पूर्वक

जिज्ञासा सहित प्रस्तुत होना पाया जाता है । ऐसी स्थिति में **प्रेरणाओं को पाकर जो गति निर्मित होती है अर्थात चिंतन प्रधान गति पहचान में आती है उसी का नाम श्रद्धा है ।** दूसरी भाषा में यही तथ्य इंगित होता है, वह है श्रेय की ओर दिशा गतिशीलता । ऐसी गतिशीलता के लिए प्राप्त सभी प्रेरणाओं से ऐसा जागृत प्रेरणाशील जागृत मानव के प्रति परम पूज्यता का प्रकाशन होता ही है । इस प्रकार श्रेय की ओर गतिशीलता श्रद्धा है और उसके लिए प्राप्त दिशा दर्शन लक्ष्य सहज स्पष्टता और स्वीकार पूर्वक ही प्रेरक के प्रति पूज्यता का प्रकाशन सहज होना पाया जाता है ।

मानवीयता पूर्ण परम्परा में, से, के लिए श्रेय नित्य वर्तमान के रूप में समीचीन रहता है । समीचीनता का तात्पर्य सहज सुलभ समीप में होने से है । समीप का तात्पर्य जहाँ जो रहता है, उसका वहीं समीप में होना प्रमाणित होता है क्योंकि :-

(1) प्रत्येक मनुष्य जीवन व शरीर के संयुक्त रूप में प्रकाशमान है।

(2) प्रत्येक जागृत मनुष्य सही कार्य व्यवहार करता है ।

(3) प्रत्येक मनुष्य जागृति पूर्वक ही न्याय प्रदायी क्षमता को प्रमाणित करता है ।

(4) प्रत्येक परिवार मानव स्वयं एक व्यवस्था है, समग्र व्यवस्था में भागीदारी को प्रमाणित करता है ।

(5) प्रत्येक जागृत मानव प्रामाणिकता को प्रमाणित करता है औरों को जागृत करना चाहता है ।

(6) प्रत्येक जागृत मानव प्रामाणिकता पूर्वक ही वर्तमान रहता है।

अस्तु, जागृति पद ही श्रेय पद है । श्रेय की ओर ही अर्थात समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी सहित प्रमाणित होने की लक्ष्य और दिशा स्पष्ट करने के रूप में होना पाया जाता है । जागृति, जीवन में

ही होती है, स्वस्थ शरीर को संचालित करता हुआ जीवन, जीवन जागृति और प्रमाणिकता को प्रमाणित करता है । शरीर स्वस्थता और जीवन जागृति के संयोग पूर्वक मानव परम्परा सार्थक है ।

इसका तात्पर्य है कि प्रत्येक जागृत परिवार मानव के लिए अपने में स्वस्थता और समग्र व्यवस्था में भागीदारी के क्रम में, प्रमाणिकता का मार्ग प्रशस्त हो जाता है । यही सार्थकता का तात्पर्य है। हर मानव सार्थक बनना ही चाहता है । यह विकास और जागृति सहज स्वर है। जागृत मानव परम्परा का सार्वभौम व्यवस्था, अखंड समाज के रूप में अभिव्यक्ति संप्रेषित प्रकाशित होना परम्परा का गौरव है । ऐसी गौरवमय परम्परा को पाने के क्रम में सर्वमानव में, से, के लिए कर्तव्य दायित्व समीचीन है । उसके लिए मानवत्व को पहचानना एक अनिवार्य स्थिति है । यही सर्वमानव परम्परा में मौलिक बिंदु है । इसे लोकव्यापीकरण करने के लिए मानव को अस्तित्व मूलक, मानव केन्द्रित चिंतन ज्ञान को हृदयंगम करना होगा ।

श्रेय की ओर गतिशीलता सहज मानव में जागृति पूर्ण सम्पूर्ण मानव का अस्तित्व पूजनीय होना पाया जाता है । अस्तित्व में जागृति पूर्ण गुरूजनों, मनीषियों के प्रति पूज्यता होना सहज है । मनुष्येत्तर प्रकृति, जलवायु, धरती, वनस्पति, नदी, समुद्र, पहाड़, मनुष्येत्तर जीव प्रपंच के साथ नैसर्गिकता के रूप में परस्पर पूरक होना पाया जाता है। यह जागृति सबका स्वयं के प्रति पूरक होना समझ में आने का प्रमाण है ।

मानव जागृति पूर्वक मूल्यांकन करता है । मूल्यांकन क्रम में परस्पर पूरकता का भी मूल्यांकन होता ही है । सह-अस्तित्व ही मूल सूत्र है । पूरकता ही प्रक्रिया है । अतएव मानव मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ पूरक होना ही स्वयं स्फूर्त सार्थकता है इसका स्वरूप मनुष्येतर प्रकृति को नियंत्रित, नियमित संतुलित रहने के लिए जागृत मानव पूरक होना मूल्यांकन का प्रमाण है ।

यह प्रक्रिया परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्थापूर्वक ही भरपाई

होना स्पष्ट हुआ है और समझ में आया है। पूरकता व विकास परस्पर ध्रुव होने के कारण इसके योगफल में ही भौतिक, रासायनिक और गुणात्मक परिणाम, क्रियात्मक परिणाम फलन के रूप में घटित होना पाया जाता है । संतुलन नियंत्रण प्राकृतिक नियमों को जागृति पूर्वक मानव पालन करता है । फलस्वरूप मानव सहज पूरकता मनुष्येत्तर प्रकृति में प्रमाणित हो जाता है ।

इसका कार्य रूप अर्थात मानव मनुष्येत्तर प्रकृति के साथ पूरक होने का कार्य रूप के आधार में यह धरती, धरती पर पाये जाने वाले सम्पूर्ण वैभव के साथ है । इसी का नाम जीव प्रकृति, वनस्पति प्रकृति, खनिज प्रकृति के नाम से जाना जाता है । यह धरती अपनी स्वस्थता को सौंदर्य को, उत्सव को ऋतु संतुलन के रूप में ही प्रकाशित करता है । ऐसी यथास्थिति में मानव पूरक होना जागृत मानव सहज प्रमाण है। इसका क्रियान्वयन विधि संतुलित प्रकृति सहज वैभव के यथास्थिति को बनाये रखना लक्ष्य है । इसके लिए यह समझदारी जागृत मानव में ही होना पाया जाता है कि धरती का संतुलन के मूल में निश्चित मात्रा में खनिज और वनस्पति ही कारक तत्व और सार्थक तत्व है । यह एक ध्रुव है ऋतु संतुलन दूसरा ध्रुव है । इन दोनों के बीच में जो प्रक्रिया है वह संतुलन के अनुपात में खनिज और वनस्पति का संतुलन बनाये रखना जागृत मानव सहज पूरकता है और ऐसी संतुलन की अक्षुणता के लिए सहायक होना पूरकता है ।

प्राकृतिक संतुलन के लिए आर्वतनशीलता भी आवश्यक प्रणाली है और धरती के ऊपरी सतह में जो कुछ भी वस्तुएं है उनका अनुपाती अर्थात प्राकृतिक संतुलन के साथ आहार, आवास, अलंकार, दूरश्रवण, दूरगमन, दूरदर्शन वस्तुओं का उत्पादन उपयोग सदुपयोग करना, प्रकृति के साथ मानव का पूरकता संपन्न होता हुआ प्रमाणित होता है । यह परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था विश्व परिवार के रूप में जागृत होने के उपरांत ही सार्थक सुलभ होना प्रमाणित होता है ।

ऐसी परम स्थिति को पाने के लिए परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था को एक ग्राम या मुहल्ले में प्रमाणित करना ही शुभारंभ है इसके लिए हम कटिबद्ध है प्रयत्नशील है । परिवार से ग्राम परिवार के साथ ही नैसर्गिक और मानव सम्बंध का पहचान और निर्वाह आरंभ होता और विश्व परिवार सभा तक विस्तृत होता है इसी क्रम में मानव तथा नैसर्गिक सम्बंधों का निर्वाह और पूर्ण तृप्ति और संतुलन सर्वसुलभ होता है । जागृति पूर्वक ही परम्परा में जागृति की ओर मानवीय शिक्षा संस्कार पूर्वक लक्ष्य और दिशा निर्धारित और स्वीकृत हो जाता है फलस्वरूप इसका प्रमाण जागृति के रूप में हर पीढ़ी से पीढ़ी में सहज होता है । हर मानव शिक्षा संस्कारपूर्वक ही जीवन जागृत होता है, प्रमाणित होता है यही परम्परा है । उसी के साथ यथार्थता, वास्तविकता, व सत्यताओं को जानने, मानने, पहचानने व निर्वाह करने की अर्हता बना ही रहता है । जागृत जीवन सदा ही अक्षय बल, अक्षय शक्ति सम्पन्नता को जानता है, मानता है और पहचान लेता है । निर्वाह करने के लिए तत्पर रहता है । ऐसा होते हुए जीवन शक्तियों का दूर दूर तक फैलने बहने की क्रिया-कलापों के साथ, प्रवर्तन व्यवस्था जीवन में समाई रहती है ।

जीवन जागृति ही, मानव का परम लक्ष्य है । दूसरा लक्ष्य स्वयं व्यवस्था और व्यवस्था में भागीदार होना है । तीसरा लक्ष्य स्वयं समाजिक होना तथा अखंड समाज में भागीदारी का निर्वाह करना है। चौथा लक्ष्य समाधान, समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व को प्रमाणित करना है । परिवार की आवश्यकता से अधिक उत्पादन करना समृद्धि का स्वरूप है । इन लक्ष्यों को पाने के लिए मानवीय शिक्षा संस्कारों को पाना (अथवा उसका सर्वसुलभ होना) और स्वास्थ्य संयम को बनाए रखना है ।

स्वास्थ्य = शरीर को जागृत जीवन मानव परम्परा में प्रमाणिक करने के अनुरूप कार्य करने योग्य बनाए रखना । इसका संतुलन जागृत परम्परा में सार्थक होता है । संयमता का तात्पर्य जागृत जीवन के संतुलन से है । जीवन जब श्रेय के लिए तत्पर होता है

तब वह जीवन, संतुलन के लिए उत्सुक है ।

किसी भी देश, काल, स्थिति में जीवन के संतुलित होने का यही प्रणाली और पद्धति है । इसके आधार पर अर्थात जीवन संतुलन के आधार पर, मनुष्य का श्रेय की ओर गतिशील होना और जागृत और प्रमाणित मानवों के प्रति पूज्यता का अभिव्यक्त होना स्वयंस्फूर्त व्यवहार सहज और नियति सहज है । नियति सहज का तात्पर्य, नियंत्रणपूर्वक अर्थात स्वभाव गति पूर्वक तत्परता से है। वह मानव में जागृति की ओर ही दिशा है । इस क्रम में मानव का, श्रेय की ओर ही गतिशील, जागृत, प्रमाणित होने की संभावना, सहज समीचीन है ।

।। नित्यम् यातु शुभोदयम् ।।

<u>जागृति जीवन के एक सौ बाइस आचरण</u>

पृष्ठ सं.

जीवन में अविभाज्य रूप में क्रियारत

बुद्धि सहज चार क्रियाएं

1. आनन्द - 2. धी

परिभाषा - आनन्द :- (1) अंतर्विहीन (बिना रुकावट के) उत्सव क्रिया। (2) नित्य उत्सव क्रिया ।

धी :- उत्सवशीलता का प्रवर्तन क्रिया (परावर्तन के लिए तत्परता) ।

अनुभव मूलतः आत्मा में सम्पन्न होने वाली क्रिया है । ऐसी अनुभव मूलक विधि से बुद्धि पर प्रमाणिकता का पूर्ण प्रभाव होता है, यही आनन्द के नाम से जाना जाता है । अनुभव मूलक अवधारणाएं, जानने-मानने का तृप्ति सहित स्वीकृतियाँ है । ऐसा संतुलन सहज अवधारणा अनुभव मूलक विधि से ही, संपन्न होना पाया गया।

यहां आनन्द और धी का अध्ययन है । इस क्रम में, अनुभव के उपरान्त ही प्रत्येक स्थिति में आनन्द का कार्य स्पष्ट हुआ करता है।

आनन्द अपने में दृढ़ता का द्योतक है क्योंकि अनुभव ही परम जागृति है । **जागृति सहज स्थिति और गति की स्वीकृति क्रिया परमता ही आनन्द और धी के नाम से जाना जाता है ।**

शब्दों में जो कुछ भी कहा जाता है वह किसी स्थिति, गति और उसका फल परिणाम, सम्बंधी स्थितियों का नाम है । इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आनन्द अपने क्रिया में पूर्णता की स्वीकृति और उसकी निरंतरता है। सम्पूर्ण नाम का अर्थ इंगित वस्तु, क्रिया, स्थिति, गति सहज नित्य अभिव्यक्ति अस्तित्व में है, यही सार्थक रूप में पाया जाता है । हर वस्तु का अस्तित्व में ही अनुभव होना पाया जाता है क्योंकि सम्पूर्ण वस्तुएं अस्तित्व में ही नित्य वर्तमान हैं ।

न्याय, धर्म, सत्य ही, अस्तित्व सहज वैभव है जिसकी समझ अवधारणाएं हैं । यह जीवन से सार्थक होने वाली वैभव है । सह-अस्तित्व ही परम सत्य के रूप में वर्तमान मानव कुल में है । अस्तित्व में ही सम्पूर्ण रूप, गुण, स्वभाव, धर्म, स्थितियां, गतियां अवधारणा में होना पाई जाती हैं। अवधारणाएं, अनुभव मूलक प्रमाण हैं । अस्तित्व, सत्ता में संपृक्त प्रकृति का नित्य वर्तमान और जागृत जीवन सहज रूप में नित्य अनुभूत होना पाया जाता है । फलस्वरूप अस्तित्व ही, सह-अस्तित्व के रूप में, अवधारणा में होता है ।

अस्तित्व में चारों अवस्थाओं का सहज स्वभाव और धर्म का अवधारणा में होना अनुभव का ही प्रमाण है । इससे अस्तित्व मूलक विधि से, जानने मानने की तृप्ति निरंतर आनन्द के रूप में है । धी उसमें परावर्तन दृढ़ता सहज कार्यरूप है ।

जीवन सहज रूप में ही, जीवन को जीवन के लिये जानता है, मानता है । इसको जाना गया है, माना गया है । इस जानने मानने के क्रियाकलाप को, इस विधि से समझा जा सकता है कि आत्मा को जानने, मानने का क्रियाकलाप बुद्धि में ही हो पाती है और बुद्धि को प्रमाणित करने का क्रियाकलाप, आत्मा सहज रूप में मूल्यांकन सम्पन्न होता है । बुद्धि को पहचानने की क्रिया, चित्त में संपन्न होती है यही ''साक्षात्कार क्रिया'' है । बुद्धि में संपन्न हुई आनन्द, धी, धृति, अस्तित्व का साक्षात्कार अर्थात स्थिति, गति, रूप, गुण, स्वभाव, धर्म, जैसा है, वैसे ही स्वीकार होता है । ऐसी स्वीकृत हुई वस्तु में रूप, गुण का चित्रण, चित्त में ही सम्पन्न होता है । चिंतन, चित्त में सम्पन्न होते हुए जीवन में चित्त अविभाज्य क्रिया है । जबकि, रूप और गुण का, स्वभाव और धर्म से अविभाज्य रहना पाया जाता है यह चित्त सहज क्रिया में, प्रमाणित होता है । जैसे विश्वास, एक स्वभाव का ही साक्षात्कार है, स्वभाव का तात्पर्य मौलिकता और मूल्य से है । जबकि विश्वास चिंतन क्रियाकलाप में पहचानने के रूप में साक्षात्कार हो पाता है । इसी प्रकार सभी मूल्यों का चित्त में साक्षात्कार पूर्वक सम्पूर्ण चित्रण होता है । यह भी समझने के अर्थ में है । इसी के साथ बोध और अनुभव भी समझने

के अर्थ में है सम्पूर्ण चिंतन देश, दिशा, काल मुक्त होना पाया जाता है । अस्तु अनुभव बोध सहज आनन्द और धी का वैभव जागृत मानव में समझ में आता ही है। जागृत मानव का सम्पूर्ण समझ अध्ययन के लिए वस्तु होना पाया जाता है। अस्तु आनन्द और धी का प्रमाणिकता क्रम में सार्थकता स्वरूप को, कार्य को, लक्ष्य को स्पष्ट किया गया है । हमारा विश्वास है कि यह अध्ययन विधि से आनन्द और धी, की सार्थकता अवश्य ही बोध सुलभ होता ही रहेगा ।

अस्तित्व नित्य वर्तमान है और प्रमाण है । नित्यता और प्रमाण ही, अक्षुण्ण अभिव्यक्ति के रूप में, त्रिकालाबाध विधि से, सर्वदेश, सर्वकाल, सर्व दिशा में प्रमाणित है । अस्तित्व में अविभाज्य मनुष्य ही, ऐसे नित्य वर्तमान और नित्य प्रमाणों को प्रमाणित करता है - करने के लिए इच्छुक है ही । इस प्रकार सम्पूर्ण अवधारणाएं, आनन्द और धी के रूप में होने वाले सम्पूर्ण क्रियाकलाप, जागृति का ही साक्षी है । इस तथ्य के आधार पर प्रत्येक मनुष्य प्रमाणों का आधार है । मानव का आधार सह-अस्तित्व में अनुभव ही है । इसका व्यवहार, सहज व्यवस्था का प्रमाण होना सदा-सदा समीचीन है ।

3. अस्तित्व - 4. धृति

परिभाषा - अस्तित्व :- (1) स्थिति, गति, विकास, जागृति और वर्तमान सहज निर्भ्रम स्वीकृति। (2) अध्ययन मूलक विधि से प्राप्त ज्ञान (जाना, माना, स्वीकार किया) = (जानना, मानना) (3) अस्तित्व = सह-अस्तित्व ।

धृति :- (1) सम्पूर्ण सह-अस्तित्व सहज सत्य में निष्ठा और परावर्तित करने के लिए प्रवृत्ति । (2) सत्य या सत्यता का बोध सहज परावर्तन में निष्ठा ।

अस्तित्व और धृति, बुद्धि सहज क्रिया है । बुद्धि में ही अध्ययन मूलक एवं अनुभव मूलक विधि से कार्य कलापों का सम्पन्न होना पाया जाता है । मनुष्य में अध्ययन विधि का सूत्र,

कल्पनाशीलता, प्रधान वस्तु है । इसका स्रोत जीवन सहज आशा, विचार, इच्छा का संयुक्त रूप में तत्पर रहना है । अध्ययन पूर्ण होने पर्यन्त कल्पनाशीलता की तृप्ति संभव न होने के कारण पुनःअध्ययन का कार्य मानव सहज है । मनुष्य ही अध्ययन करने वाली इकाई है यह स्पष्ट हो चुका है। अध्ययन की परिभाषा ही है - अधिष्ठान सहज, अनुभव के साक्षी में स्मरण पूर्वक की गयी क्रिया-प्रक्रिया व प्रयास । इसका प्रमाण है, प्रत्येक मनुष्य ही, मनुष्य को अनुभव मूलक विधि से प्रमाणित करता है। इस विधि से अनुभव के लिए अध्ययन एक अनिवार्य प्रक्रिया है ।

शरीर संचेतना अथवा इंद्रिय सन्निकर्षात्मक प्रभावों को भी अनुभव कहना, प्रचलन में रहा है । जीवन संचेतना ही, शरीर जीवन्त रहने पर्यन्त प्रमाणित रहती है । जीवंतता का स्रोत जीवन ही है । जीवन द्वारा अपनी आशा विचार, इच्छा रूपी अक्षय शक्तियों का प्रभावन कार्य के आधार पर, शरीर को जीवंत बनाए रखना, एक सहज प्रक्रिया है । इस प्रक्रिया के आधार पर ही प्रत्येक मनुष्य, शरीर और जीवन में सह-अस्तित्व प्रतिष्ठा स्थापित होने, क्रियाशील रहने, शरीर यात्रा को सहज सुगम बनाए रखने और जीवन सहज उद्देश्यों को प्रमाणित करने का कार्य देखने को मिलता है ।

इसका दृष्ट प्रमाण, शरीर का जीवंत रहना अथवा न रहना ही प्रधान घटना है । ऐसी घटना प्रत्येक मनुष्य के साथ और प्रत्येक मनुष्य में प्रमाणित होती है, यह सर्वविदित तथ्य है । ऐसी घटना, को, एक रासायनिक ऊर्मि के रूप में भी बुद्धिजीवी मानव ने दिखाने का प्रयत्न किया और कुछ मेघावियों ने आत्मा के नाम से इस घटना का विश्लेषण करने का प्रयास किया । यह अध्ययनगम्य हो नहीं पाया ।

बोध के लिए सम्पूर्ण वस्तु सह-अस्तित्व ही है । जानने-मानने की संतुलन स्थिति का नाम है बोध । इसका तृप्ति बिंदु ही अनुभव है। यही जीवन जागृति है । अनुभव मूलक विधि से आनन्द और धी अपने आप में जागृति का ही प्रमाण है । अनुभव मूलक

बोध आनन्द में सम्पूर्ण सह-अस्तित्व स्पष्ट रहता ही है इसलिए अनुभव, प्रमाणिकता सहित आनन्द, धी सहज स्वीकृति के आधार पर अस्तित्व बोध और धृति क्रियाकलाप सुदृढ़ रूप में कार्यरत होना पाया जाता है । फलस्वरूप अनुभव मूलक सत्यता सहज चिंतन-चित्रण और तुलन-विश्लेषण समेत मूल्य, चरित्र नैतिकता पूर्ण आस्वादन चयन क्रियाकलाप ही जागृत मानव परम्परा में सार्थक क्रियाकलाप है ।

जीवन ज्ञान अस्तित्व दर्शन मानवीयतापूर्ण आचरण सहज अध्ययन विधि से जानने मानने वाली क्रिया बुद्धि में ही संपन्न होता है। जिसके तृप्ति के लिए अध्ययन क्रियाकलाप के साथ ही जीवन का दृष्टा पद साक्षी के रूप में नियोजित रहता ही है । फलतः आनन्द, धी, अस्तित्व बोध और धृति का स्वीकृति अनुभव प्रमाण के लिए स्वरित गतित रहता ही है ।

इसी विधि में आत्मा में स्वीकृति का नाम ही तृप्ति बिंदु है, यही प्रमाणिकता का सूत्र है । इसी गरिमा संपन्न अनुभव विधि से आनन्द, धी, अस्तित्व बोध और धृति के लिये अनुकंपित रहता ही है अतएव चिंतन-चित्रण, तुलन-विश्लेषण, आस्वादन और चयन सहज क्रियाकलाप संपन्न होता है । इसी का नाम अनुभव मूलक क्रियाकलाप है । अतएव अनुभव सहज विधि से जानने मानने की क्रिया संपन्न होता है ।

मानव परम्परा में अध्ययन की सम्पूर्ण वस्तु अस्तित्व, अस्तित्व ही सह-अस्तित्व, अस्तित्व में परमाणु में विकास, संक्रमण, जीवन-पद, जीवनी क्रम, जीवन-जागृति क्रम, जागृति, और रासायनिक भौतिक रचना विरचनाओं का बोध होना है । यही सार्थक अध्ययन है ।

फलस्वरूप मानव के लिए ही, जीवन ज्ञान, अस्तित्व दर्शन, मानवीयता पूर्ण आचरण सहज रूप में समझ में आता है । अध्ययन विधि से अस्तित्व बोध के अनंतर ही मानव में अनुभव पूर्वक पूर्णता और उसकी निरंतरता की आवश्यकता और प्रयोजन-बोध होता है ।

इसी के फलस्वरूप ही मानवीयता पूर्ण आचरण, प्रमाणित होता है - जो स्वयं ही समाधान समृद्धि पूर्ण परिवार, समाज तथा समाधान समृद्धि अभय, सह-अस्तित्व सहज व्यवस्था मानव परम्परा में, से, के लिए सुलभ होना समीचीन है । इसकी आवश्यकता प्रत्येक जागृत मनुष्य में होना स्पष्ट है। इसे हर मानव निरीक्षण परीक्षण पूर्वक सर्वेक्षण कर सकता है । यह सब अनुभव मूलक विधि से धृति पूर्वक ही चरितार्थ होना पाया जाता है ।

संकल्प सहज रूप में, संपूर्णता सार्थकता के अर्थ में सम्पूर्ण प्रवृत्तियों का समाधान सूत्रित नियंत्रित तथा स्वयं स्फूर्त विधि से व्यवहार प्रमाणों में प्रमाणित करना, सहज सुलभ होता है । इसी विधि से सुख, समाधान, सौंदर्य, की अविभाज्य अभिव्यक्ति, संप्रेषणा, प्रकाशन प्रत्येक मनुष्य में सफल होना पाया जाता है ।

॥ नित्यम् यातु शुभोदयम् ॥

आत्मा की 2 (दो) क्रिया

(1) अस्तित्व में अनुभव ।

(2) आनंद सहज प्रमाणिकता ।

परिभाषा - अस्तित्व :- सत्ता में संपृक्त प्रकृति के रूप में नित्य वर्तमान ।

आनन्द :- अस्तित्व में अनुभूति फलस्वरूप सत्यानुभूत जागृत जीवन इकाई में आत्मा, बुद्धि, चित्त, वृत्ति और मन अविभाज्य रूप में कार्यरत और जागृति को प्रमाणित किया करता है जागृत जीवन शरीर समेत व्यवहार में जागृति सहज प्रमाणों को प्रमाणित करता है यही जागृत मानव परम्परा सहज मौलिकता है ।

जागृत जीवन सहज सभी क्रियाकलाप, व्यवहार में प्रमाणित होने पर्यन्त, मानव में अध्ययन कार्य परम्परा है । इसी सत्यता क्रम में अनुसंधानपूर्वक ही यह मनोविज्ञान सत्यापित है । अस्तित्व ही अस्तित्व रूप में सम्पूर्ण भाव है । जीवन ही जागृति पूर्वक दृष्टा पद में होने के फलस्वरूप अस्तित्व में अनुभव सहज है । सम्पूर्ण सह-अस्तित्व चार अवस्था और चार पदों में, स्थिति, गति, रूप, गुण स्वभाव, धर्म, विकास, जागृति और रचना, विरचना के रूप में होना ज्ञातव्य है । समझना, जानने मानने, पहचानने, निर्वाह करने के रूप में प्रमाणित है। जानने-मानने की तृप्ति ही, अनुभव के रूप में ख्यात है । पहचानना, निर्वाह करना, जानने मानने के उपरान्त सहज क्रिया है । जानना मानना, प्रधानतः स्वभाव, धर्म और स्थिति के रूप में समझा गया है ।

अस्तित्व स्वयं, सह-अस्तित्व के रूप में विद्यमान और नित्य वर्तमान है। अस्तित्व सहज स्वरूप ही सत्ता में संपृक्त प्रकृति है । अस्तित्व व्यापक में अनंत सहज वैभव के रूप में है । सत्तामयता व्यापक रूप में होना समझ में आता है । प्रकृति सत्ता में अनंत एक-एक के रूप में होना समझ में आता है । सत्ता पारगामी है ।

पारदर्शी है । सत्ता में प्रकृति संपृक्त है । एक एक के रूप में प्रकृति सत्ता में संपृक्त वर्तमान है । सत्ता में अनंत इकाइयों के रूप में विद्यमान ऊर्जा, संपन्न प्रकृति, निरंतर क्रियाशील है । इसी स्थिति में सत्ता में प्रकृति संपृक्त है - का प्रमाण सम्पूर्ण प्रकृति में ऊर्जा संपन्न, बल संपन्न क्रियाशीलता ही सत्ता सहज व्यापकता किन्हीं भी दो इकाईयों के बीच में रिक्त स्थली के रूप में दिखती है । यह रिक्त स्थली अनंतानंत इकाइयों के परस्परता में भी स्थिति में होना पाया जाता है। सत्ता में संपृक्त प्रकृति सहज ऊर्जा संपन्नता सत्ता पारगामी होने का प्रमाण है । पारदर्शिता का प्रमाण है कि परस्परता में सत्ता कितनी भी विशाल हो परस्पर इकाईयों का प्रतिबिंब परस्पर इकाइयों पर रहता ही है । इन प्रमाणों के आधार पर सत्ता अखंड, व्यापक, पारदर्शी, परागामी होना सुस्पष्ट है । इसी के साथ यह भी समझ में आया है कि सत्ता स्वयं में तरंग और दबाव विहीन स्थिति पूर्ण वस्तु है। वस्तु इसीलिए कि वास्तविकता नित्य व्यक्त है । सह-अस्तित्व ही सम्पूर्ण वस्तु और क्रिया है । क्रिया के रूप में जीवन क्रिया, भौतिक क्रिया और रासायनिक क्रिया में स्पष्ट तथा प्रमाणित है । मानव ही प्रमाणों का ज्ञाता दृष्टा है । प्रमाण सहज विधि से ही मानव तृप्त होने का अभ्यासी है । प्रवर्तनशील तो है ही । अतएव सह-अस्तित्व सहज सम्पूर्ण भावों, को सम्पूर्ण क्रियाकलापों को सम्पूर्ण अवस्था को सम्पूर्ण पदों को, सम्पूर्ण स्थिति गतियों को समझने, प्रमाणित करने और तृप्ति पाने का उम्मीदवार प्रयत्नशील सफल इकाई के रूप में मानव ही का होना स्पष्ट हो चुका है । यही स्पष्टता अनुभव मूलक विधि से इस मनोविज्ञान के रूप में सत्यापित हुआ है । इसका प्रमाण व्यापक सत्ता में ही अनंत रूपी प्रकृति संपृक्त ऊर्जा संपन्न बल संपन्न क्रियाशील है । यही साम्य ऊर्जा है । यह सम्पूर्ण प्रकृति के लिए पारगामी, पारदर्शीयता सहज रूप में समान है । इसी सत्यतावश साम्य ऊर्जा नाम दिया गया है । व्यापक वस्तु मूलतः ऊर्जा स्वरूप ही है । ऊर्जा वश ही सम्पूर्ण प्रकृति ऊर्जा की पारगामीयतावश भीगा हुआ है । फलतः ऊर्जा संपन्नता का प्रमाण प्रत्येक एक अपने मूल क्रिया के रूप में ही प्रमाण है । इसका पारदर्शी होना, परस्पर इकाईयों में प्रतिबिंबन क्रिया के आधार पर

प्रमाणित है । प्रत्येक एक ऊर्जा सम्पन्न, बल सम्पन्न है । इस आधार पर सम्पूर्ण प्रकृति का सत्ता में भीगा रहना प्रमाणित है ।

यह नित्य समीचीन है । अनुभव जीवन सहज प्रक्रिया है । प्रमाण मानव सहज प्रक्रिया है । अध्ययन मानव सहज प्रक्रिया है । **बोध जीवन सहज प्रक्रिया है। बोध और अनुभव की तृप्ति ही एक मात्र उपलब्धि है ।** इसी तृप्ति के लिए जीवन यात्रा जागृति पूर्वक ही प्रमाणित करता रहता है । यह तथ्य मानव सहज मौलिकता, जीवन सहज मौलिकता को स्पष्ट करता है कि मानव कुल में ही अध्ययन विधि है यह शरीर और जीवन का संयुक्त, संगीतमय स्थिति में संपन्न होने वाली मधुरिम क्रिया-कलाप है । इसी क्रम में जीवन और शरीर को मौलिक रूप में समझना भी एक आवश्यक घटना रही । यह हमें भली प्रकार से समझ में आया है और इसे, इसके पहले भी समुचित स्थलियों में स्पष्ट किया गया है । सत्यता यही है कि जीवन और शरीर के सह-अस्तित्व में ही जीवन जागृति प्रमाणित होता है । मानव परम्परा में जागृति सहज आवश्यकता नित्य उदयशील है । हर नित्य वर्तमान में जागृति मानव में, से, के लिए आवश्यक है ही । इस आवश्यकता की आपूर्ति सहज रूप में ही अर्थात् सह-अस्तित्व सहज रूप में ही प्रमाणित होता है ।

हर मानव जागृति पूर्वक ही प्रमाण प्रस्तुत कर पाते है । प्रमाणिकता सहज गति अनुभव बल का ही परावर्तन है । अनुभव जीवन में ही होता है । अध्ययन मानव परम्परा में ही होता है । यथार्थता, वास्तविकता सत्यता संपन्न सह-अस्तित्व ही बोधपूर्ण होने की वस्तु है । बोध सहज क्रिया अध्ययन पूर्वक संपन्न होना जागृत मानव परम्परा में ही सहज सुलभ होता है । सत्यबोध सहज तथ्य उद्घाटन, अनुभव मूलक विधि से ही संपन्न होना पाया गया है । जीवन में सत्य बोध प्रतिष्ठा के उपरांत अनुभव मूलक बोध होना एक सहज क्रिया है इसे हम भली प्रकार से समझे हैं । बोध सुलभ होने के लिए परंपरा सहज अध्ययन प्रणाली पद्धति है । अनुभव मूलक अभिव्यक्ति संप्रेषणा अध्ययन के लिए वस्तु होना स्वाभाविक होता ही है । सत्य ही बोधगम्य होता है फलतः अनुभव होता है । बोध क्रिया

में आत्मा का अनुभव साक्षी निहित रहता ही है । अनुभव के साक्षी में ही अध्ययन पूर्ण होता है । पूर्ण अनुभव होने का तात्पर्य ही सर्वतोमुखी समाधान रूप में प्रसवित, संप्रेषित अभिव्यक्त होने में है । अस्तु, यह मनोविज्ञान अनुभव मूलक विधि से किया गया सत्यापन ही है ।

अनुभव सहज वैभव के लिए सह-अस्तित्व ही नित्य स्रोत है। जानने-मानने का परम तृप्ति अनुभव है । परम तृप्ति का तात्पर्य अक्षुणता से है । यही प्रमाणिकता है । जानने-मानने का स्रोत जागृत मानव परम्परा ही है। इस विधि से हर जागृत मानव प्रमाण का आधार होना स्पष्ट होता है । सह-अस्तित्व में अनुभव परम तृप्ति के अर्थ में प्रमाणित होना ही प्रमाणिकता का स्रोत है । तृप्ति का तात्पर्य अक्षुण सहज वैभव है । इस विधि से अनुभव ही जागृति सहज वैभव है । ऐसा वैभव प्रभाव सह-अस्तित्व सहज होना पाया गया है । इसी सत्यतावश तृप्तिपूर्ण, अनुभवपूर्ण, अनुभव प्रभाव जीवन सहज सम्पूर्ण क्रिया में प्रभावित होना स्वाभाविक है । जीवन शक्ति और बल अनुभव प्रभाव में अभिभूत (अभिभूत होने का तात्पर्य तृप्ति से है) होना पाया जाता है ।

अनुभव करने वाली वस्तु, जीवन में अविभाज्य आत्मा है । अनुभव के उपरान्त बुद्धि, चित्त, वृत्ति मन, अनुभव सहजता के अनुरूप अभिभूत क्रिया पूर्वक कार्य संपादित करती हैं । अभिभूति ही अनुभव का प्रभाव है । इस विधि से यह भी अध्ययनगम्य होता है कि जीवन ही आशामय, विचारमय, इच्छामय, संकल्पमय और प्रमाणमय विधियों से जीता है । यही जागृति मूलक विधि से जीने का स्वरूप है । अस्तित्व सहज यथार्थता वास्तविकता, सत्यता, स्थिति सत्य, वस्तुस्थिति सत्य, वस्तुगत सत्य के रूप में जागृत जीवन मानसिकता में अक्षुण रहता है । ऐसा प्रमाणित होने की स्थिति में प्रमाण नित्य वर्तमान ही है। इसलिए सबको अर्थात सर्वमानव में, से, के लिए जीवन ज्ञान परम ज्ञान के रूप में संप्रेषित होता है । यही प्रामणिकता पूर्ण जीवन मानसिकता का प्रमाण है । अस्तित्व दर्शन, परम दर्शन के रूप में मानवीयता पूर्ण आचरण, परम आचरण के रूप

में सबके लिए जागृत जीवन मानसिकता संप्रेषित करता है । यह जागृति पूर्ण मानव परम्परा में समीचीन है । यह अनुभव मूलक विधि से प्रमाण परम्परा में सर्वसुलभ होना सहज है ।

सह-अस्तित्व में अनुभव ही परम तृप्ति, परम तृप्ति ही प्रमाणिकता, प्रामाणिकता ही प्रमाण, प्रमाण ही अभिव्यक्ति, अभिव्यक्ति ही संप्रेषणा, संप्रेषणा ही प्रकाशन, प्रकाशन ही कार्य व्यवहार, कार्य व्यवहार ही अभ्युदय, अभ्युदय ही निःश्रेयस, निःश्रेयस ही अनुभव है । अनुभव अक्षुण है । जागृत मानव परम्परा में अनुभवगामी विधि से अध्ययन सहज वस्तु सह-अस्तित्व सहज विधि से समीचीन रहता ही है । अध्ययन सहज सार्थकता, अवधारणा के रूप में होना अथवा समझदारी के रूप में होना देखा गया है । अवधारणाओं का स्वरूप जानने-मानने के रूप में ही परखा गया है, समझा गया है । जानने-मानने का परम तृप्ति ही अनुभव स्पष्ट किया जा चुका है ।

''स्थिति सत्य'', ''वस्तु स्थिति सत्य'', ''वस्तु गत सत्य'' को जानना-मानना, अनुभव करना, **अस्तित्व-दर्शन सूत्र** है । कारण, गुण, गणितात्मक मानव भाषा को जानना, मानना, अनुभव करना यह मानवीयता पूर्ण **संप्रेषणा सूत्र** है । वास्तविकता, यथार्थता व सत्यता पूर्ण विधि से, सम्पूर्ण कायिक, वाचिक, मानसिक व कृत-कारित अनुमोदित कार्यक्रमों को परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था और प्रामाणिकता व स्वानुशासन रूपी कार्यक्रमों में जानना-मानना, अनुभव करना यह जागृति पूर्ण मानव **परम्परा सूत्र** है । निपुणता, कुशलता, पाण्डित्य पूर्ण शिक्षा संस्कार सहजता को जानना-मानना और अनुभव करना यही मानवीय **शिक्षा सूत्र** है । जीवन सहज सम्पूर्ण क्रियाकलापों को जानना-मानना और अनुभव करना जीवन **विद्या सूत्र** है और मानवीयता पूर्ण व्यवहार, स्वयं के प्रति विश्वास, श्रेष्ठता का सम्मान, प्रतिभा व व्यक्तित्व में संतुलन, को जानना-मानना **व्यवहार सूत्र** है । व्यवसाय, व्यवहार, विचार और अनुभव में सामरस्यता विधि को जानना, मानना, अनुभव करना यह मानव **परिवार सूत्र** है ।

मानवीयता पूर्ण संस्कृति, सभ्यता, विधि व्यवस्था में सामरस्यता

और परिवार, विश्व परिवार में सामरस्यता को, जानना, मानना और अनुभव करना अखंड समाज सार्वभौम **व्यवस्था सूत्र** है । जिसके फलस्वरूप समाधान समृद्धि अभय सह-अस्तित्व फलित होता है । बौद्धिक समाधान, भौतिक समृद्धि, अभय, सह-अस्तित्व सहज अखंड समाज सार्वभौम व्यवस्था को जानना-मानना अस्तित्व सहज मानव **परम्परा का सूत्र** है । प्राकृतिक, सामाजिक एवं बौद्धिक नियमों को जानना-मानना, अनुभव करना जागृति मानव **मानस सूत्र** है । मानव से देव मानव, देव मानव से दिव्य मानव, जागृति पूर्ण होने के तथ्य को जानना, मानना, अनुभव करना मानव **व्यवहार सूत्र** है ।

मात्रा का उपयोग, गुणों का सदुपयोग, स्वभाव धर्म के मूल्यांकन में जागृति सहज प्रयोजनों को जानना, मानना अनुभव करना **मानव व्यवहार सूत्र** है ।

न्याय, धर्म, सत्यपूर्ण दृष्टि व विधियों को जानना, मानना, अनुभव करना और पहचानना निर्वाह करना मानव व्यवहार सूत्र है । व्यवहार, व्यवसाय, विचार व अनुभव में सामरस्यता सूत्र-धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा पूर्ण व्यवहार व्यवस्था को जानना, मानना, अनुभव करना मानव जागृति परम्परा सहज **व्यवहार सूत्र** है । मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि और आत्मा की सामरस्यता को जानना-मानना, अनुभव करना - यह जीवन **जागृति सूत्र** है । आशा, विचार, इच्छा, संकल्प व अनुभव में सामरस्यता को जानना, मानना अनुभव करना, **जागृति सूत्र** है । सम्बंधों को पहचानना, मूल्यों का निर्वाह करना और मूल्यांकन करना, जानना, मानना, अनुभव करना व्यवहार सहज सूत्र है । विज्ञान और विवेक में सामरस्यता सहज वांङ्गमय को प्रस्तुत करना प्रमाणित रहने की विधियों को, जानना, मानना और अनुभव करना जागृत **परम्परा सूत्र** है । प्रतिभा और व्यक्तित्व में सामरस्यता सूत्र को जानना, मानना, पहचानना और निर्वाह करना **समझदारी सहज सूत्र** का प्रमाण है । परिवार सहज, आवश्यकता से अधिक उत्पादन सहित तन, मन, धन का सदुपयोग, सुरक्षात्मक तथ्यों को समाधान पूर्वक जानना, मानना, पहचानना, निर्वाह करना यह एक समझदार **सुखी परिवार सूत्र** है । सम्बंधों को

पहचानना, मूल्यों का निर्वाह करना, मूल्यांकन करना और परिवार सहज रूप में अपनाए गए उत्पादन कार्य में, परस्पर पूरक होने के तथ्य को जानना मानना, अनुभव करना और पहचानना, निर्वाह करना सुख सुन्दर समाधान पूर्ण परिवार व **विश्व परिवार सूत्र** है ।

नित्य वर्तमान सहज अस्तित्व में सम्पूर्ण भावों को जानना, मानना, अनुभव करना जीवन **जागृति सूत्र** है । प्रत्येक ''एक'' में रूप, गुण, स्वभाव धर्म की सामरस्यता को जानना, मानना, सह-अस्तित्व **सहज जागृति सूत्र** है। प्रबुद्धता, संप्रभुता और प्रभुसत्ता सहज कार्यकलापों के मूल में अस्तित्व दर्शन, जीवन ज्ञान, मानवीयता पूर्ण आचरण सहज सत्य को जानना, मानना, अनुभव करना, पहचानना और निर्वाह करना ही समाधान मूलक व्यवस्था जीवन जागृति व **अभ्युदय सूत्र** है । न्याय मूलक व्यवहार आवर्तनशील उत्पादन कार्यक्रम सहज तथ्यों को जानना, मानना, अनुभव करना पहचानना, और निर्वाह करना जागृति **मानव परम्परा सूत्र** है । मानवीय आचार संहिता रूपी, संविधान सहज, व्यवहारवादी अखंड समाज व्यवस्था रूपी तथ्य को जानना, मानना, अनुभव करना और पहचानना, निर्वाह करना अखंड समाज, **सार्वभौम व्यवस्था सूत्र** है ।

बौद्धिक समाधान, भौतिक समृद्धि, अभय (वर्तमान में विश्वास) सह-अस्तित्व सर्वमानव सहज शुभाकांक्षा है । इसे सफल सार्थक लोकव्यापीकरण सहज आशय से ''मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान प्रबंध'' मानव में, मानव से, मानव के लिए अर्पित है ।

भूमि स्वर्गताम् यातु, मनुष्यो यातु देवताम्
धर्मो सफलताम् यातु, नित्यम यातु शुभोदयम्

प्रकाशित व प्रकाशनाधीन प्रबन्ध

"अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन" बनाम 'मध्यस्थ दर्शन' सह-अस्तित्ववाद के ग्रन्थों की सूची

दर्शन

1. मानव व्यवहार एवं दर्शन (प्रकाशित)
2. मानव अनुभव दर्शन (प्रकाशित)
3. मानव अभ्यास दर्शन (प्रकाशित)
4. मानव कर्म दर्शन (प्रकाशित)

शास्त्र

1. व्यवहारवादी समाजशास्त्र (प्रकाशित)
2. आवर्तनशील अर्थचिंतन (प्रकाशित)
3. मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान (प्रकाशित)

वाद

1. समाधानात्मक भौतिकवाद (प्रकाशित)
2. व्यवहारात्मक जनवाद (प्रकाशित)
3. अनुभवात्मक अध्यात्मवाद (प्रकाशित)

योजना

1. जीवन विद्या योजना (प्रकाशनाधीन)
2. मानव संचेतनावादी शिक्षा-संस्कार योजना (प्रकाशनाधीन)
3. परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था योजना (प्रकाशित)

अन्य

1. परिभाषा संहिता (प्रकाशित)
2. जीवन विद्या - एक परिचय (प्रकाशित)
3. अस्तित्व एवं अस्तित्व में परमाणु का विकास (प्रकाशित)
4. मानवीय संविधान का प्रारुप (प्रकाशित)

★ जीवन विद्या गीत (लेखक-प्रदीप पूरक) (प्रकाशित)